THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180445

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 V64P Accession No. H·3097

Author विद्यार्थी, आरती और विद्यार्थी

Title पंखुड़ी पाँच दो।

This book should be returned on or before the date last marked below.

पाँच बेंत

लेखकों की अन्य रचनाएँ

श्रीमती भारती विद्यार्थी की रचनाएँ

१. चुनौती (उपन्यास, मलयालम से अनूदित)
२. दो सेर (उपन्यास, मलयालम से अनूदित)
३. पप्पू (उपन्यास, मलयालम से अनूदित)
४ मलयानिल (कहानी संग्रह, मलयालम से अनूदित)
५. मलयालम स्वबोधिनी (हिन्दी के माध्यम से मलयालम सीखने के लिए)

श्री देवदूत विद्यार्थी की रचनाएँ

१. कुमार हृदय का उच्छ्वास (गद्य काव्य)
२ तूणीर (गद्य काव्य)
३. दीवान बहादुर (नाटक)
४. भारतीय राष्ट्रीयता (इतिहास)
५. हिन्दी सेल्फ टॉट फॉर नॉन-हिन्दी एम-पीज
(दूसरा संस्करण 'राज-भाषा-बोधिनी' के नाम से प्रकाशित)
६. ऋषि (खलील जिब्रान के 'प्रोफेट' का अनुवाद अप्रकाशित)
७. जीवन का दर्द (संस्मरण) अप्रकाशित

विद्यार्थी दम्पति की संयुक्त रचनाएँ

१. हार या जीत ? (उपन्यास)
२. पाँच बेन (उपन्यास)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

पाँच बेंत

दक्षिण भारत के जीवन पर एक सरस, सचित्र तथा
शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास

लेखक
श्रीमती भारती विद्यार्थी
श्री देवदूत विद्यार्थी

१९५७
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य ५)

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६

प्राक्कथन

'पाँच बेंत' एक रोचक उपन्यास है, जिसमें सच्ची आत्म-कथा का-सा आनन्द मिलेगा। इसमें एक पूरे बीते युग की झाँकी एवं भारतीय इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण युग का चित्रण है। इस प्रकार इस उपन्यास के नायक चन्द्रकान्त की कहानी एक समय के नवयुवकों की पूरी पीढ़ी की कहानी है, जिनके जीवन का मूल उद्देश्य देश और समाज की सेवा करना था।

इस उपन्यास से पाठकों को दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन की बहुत कुछ जानकारी होगी। यह हिन्दी के उन विरले उपन्यासों में से है जिनकी कथावस्तु का क्षेत्र उत्तर भारत ही नहीं है। साथ ही चन्द्रकान्त की प्रेम-कहानी, उसकी आशा-निराशाओं के संघर्ष और जीवन में उसकी अदम्य आस्था ने उपन्यास को सरस और शिक्षाप्रद बना दिया है। आशा है, हिन्दी पाठकों से इसे आदर मिलेगा।

रामविलास शर्मा
एम. ए., पी-एच. डी.

क्रम

विषय			पृष्ठ
१. प्रतिक्रिया	...	...	१
२. अप्रत्याशित मोड़	...	...	२७
३. उत्तर और दक्षिण	...	...	५०
४. सुखद मिलन	...	...	८०
५. अनोखा संकल्प	...	...	१०३
६. रम्य प्रदेश में	...	...	१३५
७. हृदयोद्गार	...	...	१६५
८. ज्वार-भाटा	...	...	१८६
९. देश-दर्शन	...	...	२०९
१०. नये पथ पर	...	...	२४३

पाँच बेंत

१

प्रतिक्रिया

सटाक-सटाक-सटाक—इस तरह उसके हाथों पर पाँच बेंत पड़े। पाँच बेंत की सज़ा पाकर वह हेडमास्टर के ऑफ़िस-रूम से बाहर निकला। बेंतों के पड़ने से उसे जो चोट लगी वह उसको उतनी दुखदायी नहीं मालूम हुई जितना कि यह ख़याल कि हेडमास्टर का वह कार्य सर्वथा अन्यायपूर्ण था। सरकार का भक्त कैसा होता है, विदेशी सरकार का! ग़ुलाम किसे कहते हैं, यह बात उस हेडमास्टर के कार्य से उसकी समझ में आ गई। उसके मन में उस हेडमास्टर, उस स्कूल और विदेशी सरकार के प्रति एक घृणा और क्रोध का भाव पैदा हो गया। उसने उस स्कूल को छोड़कर आगे किसी ग़ैरसरकारी स्कूल में भर्ती होकर पढ़ने का निश्चय किया। उसका नाम चन्द्रकान्त था।

वह एक सरकारी हाईस्कूल था जिसमें चन्द्रकान्त कुछ ही हफ़्ते पहले भर्ती हुआ था। उसने अपने क्लास के दस बारह लड़कों को इकट्ठा करके सहपाठी रघुनाथ के घर में एक सभा की थी। उस सभा का उद्देश्य विद्यार्थियों की मानसिक और वाचिक उन्नति करने के लिए एक वाग्वर्धिनी सभा की स्थापना करना था। सभा के ख़त्म होने के बाद उसकी ख़बर हेडमास्टर साहब के कानों में पहुँच गई। हेडमास्टर साहब नाख़ुश हो गये। उनके स्कूल के लड़के इस तरह का काम करें और इसकी ख़बर ऊँचे

अधिकारियों तक पहुँच जाय तब उसका क्या नतीजा होगा ? यह बात उन्हें सताने लगी। हेडमास्टर साहब सज्जनता के अवतार थे लेकिन थे तो एक सरकारी नौकर ही। वह होमरूल आन्दोलन का ज़माना था। प्रथम महायुद्ध जारी था। एक तरफ़ देश में आज़ादी की भावना बढ़ रही थी तो दूसरी तरफ़ ब्रिटिश शासकों का दमन-चक्र चल रहा था। इसीलिए मोतीहारी हाईस्कूल के उस हेडमास्टर जैसे सज्जन पुरुष भी दिन-रात इस चिन्ता में रहते थे कि कहीं उनकी राजभक्ति पर उच्चाधिकारियों को कोई संदेह करने का मौक़ा न मिल जाय।

विद्यार्थियों की उस अदना-सी सभा से हेडमास्टर को अपनी राजभक्ति और अनुशासनप्रियता का प्रमाण देने का मानो एक सुअवसर प्राप्त होगया। उस सभा में जो लड़के हाज़िर थे उनकी एक सूची उन्हें मिल गई। उन्होंने उस तरह की सभा करना एक अपराध घोषित कर दिया और उस सभा में शरीक होने वाले प्रत्येक विद्यार्थी पर पाँच-पाँच रुपये का जुर्माना कर दिया। हेडमास्टर के इस कार्य ने उन विद्यार्थियों को सारे स्कूल में इस तरह प्रसिद्ध कर दिया मानो वे षड्यन्त्रकारी हों, खुदीराम बोस के अनुयायी हों।

लेकिन वे बेचारे लड़के! उन्हें क्या मालूम था कि एक डिबेटिंग क्लब बनाने का उनका यह पहला क़दम इतना क़ीमती साबित होगा। हाँ, हेडमास्टर साहब ने इतनी उदारता दिखाई कि जो जुर्माना नहीं दे सकते थे उनके लिए पाँच-पाँच बेंत की सज़ा नियत की। चन्द्रकान्त ने जुर्माना देने के बदले बेंत खाना ही पसन्द किया।

लेकिन चन्द्रकान्त को सिर्फ़ बेंत की ही सज़ा नहीं मिली। एक बात और हुई जिससे उसका स्कूल छोड़ देने का निश्चय और भी दृढ़ होगया। ज़िला स्कूल में भर्ती होते ही उसने

'फ्रीशिप' के लिए दरख़्वास्त दी थी। उसके मंजूर हो जाने में किसी को भी सन्देह नहीं था, क्योंकि शहर के बड़े और प्रतिष्ठित समझे जाने वाले लोगों में सबसे अधिक लोगों ने उसकी सिफ़ारिश की थी। उसके चाचा को इसके लिए काफ़ी दौड़-धूप करनी पड़ी थी। चन्द्रकान्त को 'फ्रीशिप' का मिलना नितान्त आवश्यक भी था। क्योंकि फ़ीस देकर पढ़ना उसके लिए टेढ़ी खीर थी। फ्री स्टूडेण्ट के तौर पर ही अबतक उसकी पढ़ाई हुई थी।

लेकिन दो-तीन महीने की प्रतीक्षा के बाद उसे मालूम हुआ कि उसकी फ़ीस माफ़ नहीं हुई है। उसे बहुत दुख हुआ। वह मोटिया कपड़ा पहनता था। स्वामी सत्यदेव के मोतीहारी आने पर उनके दर्शन के लिए चला जाता था। यह सब उस स्कूल के कुछ अध्यापकों की नजर में खटकने वाली बातें थीं। वाग्वर्धिनी सभा की स्थापना करने वालों की सूची में उसका नाम तो था ही। उस दिन की वह सभा उसी के सभापतित्व में हुई थी। अतः पाँच बेंत की सज़ा उसके लिए काफ़ी नहीं समझी गई। उस साल उसकी फ्रीशिप नामंजूर हो गई।

अब उसके सामने एक विकट समस्या खड़ी हो गई। उसके लिए पिछले महीनों की फ़ीस तुरन्त जमा कर देना आवश्यक था। आगे भी प्रति मास ठीक समय पर फ़ीस जमा कर देना ज़रूरी था। ऐसा नहीं करने का सिर्फ़ एक ही नतीजा हो सकता था और वह था रजिस्टर से उसका नाम ख़ारिज हो जाना और उसकी पढ़ाई का बन्द होजाना।

उसने अपने चाचा को इस विपत्ति की सूचना नहीं दी। उसने अन्धकार में पड़े एक यात्री की तरह आगे की बात भगवान पर छोड़ दी और स्कूल जाने का कार्यक्रम जारी रखा। जैसे-जैसे फ़ीस देने का अंतिम दिन नज़दीक आता गया उसकी व्याकुलता बढ़ती गई। उसे लगा कि उस स्कूल को तो छोड़ना ही है पर

इस तरह वार्षिक परीक्षा के पहले छोड़ना बहुत बुरा होगा। हेड-मास्टर की निर्दयता और अन्याय के ख़िलाफ़ उसके कोमल हृदय में एक आग सुलगने लगी।

एक ओर वह मानसिक चिन्ताओं से होकर गुज़र रहा था तो दूसरी ओर उसके कुछ साथी आपस में चर्चा करने लगे कि क्यों न कुछ उपाय किया जाय कि जिससे चन्द्रकान्त की फ़ीस जमा करदी जाय और उसका नाम ख़ारिज न हो। कइयों ने मिलकर यह निश्चय किया कि चन्द्रकान्त के लिए चन्दा किया जाय। इसलिए जलपान के लिए जो लड़के घर से पैसे लाते थे उनमें से एक हिस्सा बचाकर जमा कर देने की बात तय हुई। यह उपाय काम कर गया। तब तक की फीस की पूरी रकम जमा कर देने के लिए रुपये इकट्ठे हो गये। लड़कों ने अपने निश्चय को आख़िर तक निभाया और हर महीना चन्द्रकान्त की फ़ीस के लिए चन्दा दिया जाता रहा।

एक बार पहले भी चन्द्रकान्त की पढ़ाई के बन्द होजाने की नौबत आ गई थी। कई साल पहले उसके घर की स्थिति देखकर पड़ोस के एक सज्जन ने उसके चाचा को राय दी थी कि चन्द्रकान्त को सर्वे सेटलमेण्ट के दफ़्तर में काम करने के लिए भेज दिया जाय। कुछ आय भी हो जायेगी और लड़का काम सीखकर आगे तरक्की कर लेगा। वह सज्जन उसी दफ़्तर में एक पेशकार थे। उसके चाचा उस सज्जन के प्रस्ताव के बारे में सोच ही रहे थे कि चन्द्रकान्त उसे सुनकर ख़ुशी से उछल पड़ा। दफ़्तर उसके घर के पास ही था। उसमें उसके हमउम्र कितने ही लड़के दस्तावेज़ों की नकल करने का काम किया करते थे। उसके सामने सुनहला दृश्य दिखाई देने लगा कि अब वह भी कमानेवालों की गिनती में आ जायेगा। वह बड़े उत्साह से दूसरे ही दिन अपने स्कूल की तरफ़ न जाकर उस सज्जन के साथ सर्वे आफ़िस की

तरफ़ गया और उनके निर्देशानुसार एक मुहर्रिर साहब के पास काम सीखने के लिए फ़र्श पर बिछी चटाई पर जाकर बैठ गया। मुहर्रिर साहब ने कुछ काग़ज़ात उसके सामने रख दिये और सादे काग़ज़ पर उनकी नकल कर देने का काम बताया। चन्द्रकान्त को अपने क्लास में एक तेज़ विद्यार्थी होने का अभिमान था। उसे क्लास में फ़र्स्ट आने के उपलक्ष में 'स्टूडेण्टस प्रैक्टिकल इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी' पुरस्कार में मिली थी। लेकिन उस मुहर्रिर साहब की परीक्षा में पास होने की उसने आशा त्याग दी। वे दस्तावेज़ घसीट-कैथी लिपि में लिखे हुए थे जिन्हें पढ़ना और नकल करना उसे एक टेढ़ी खीर मालूम हुई। साथ-साथ क्लास के साथियों तथा हॉकी और फ़ुटबॉल, जिसका वह कैप्टेन था, आदि की याद भी उसे ज़ोरों से स्कूल की तरफ़ खींचने लगी। तीसरे ही दिन उसने वह काम छोड़कर पढ़ाई जारी रखने का निश्चय किया। माँ को इससे प्रसन्नता हुई, क्योंकि वह नहीं चाहती थीं कि चन्द्रकान्त अपनी पढ़ाई छोड़ दे। उस घटना के चार साल बाद जब फिर उसकी पढ़ाई के रास्ते में एक कठिनाई उत्पन्न होने जा रही थी तब उसके साथियों ने उसे हल कर दिया।

चन्द्रकान्त ने इसे ईश्वर के अनुग्रह का ही फल समझा। वैसे तो उसे कोई विशेष धार्मिक शिक्षा नहीं मिली थी। तो भी उसके स्वर्गीय पिता ने बचपन में उसे तुलसीदासकृतहनुमान-चालीसा के कुछ दोहे कण्ठस्थ करा दिये थे। उसके अतिरिक्त उसने अपनी माता को, जो बिल्कुल निरक्षर थीं, ब्रह्ममुहूर्त में प्रभाती-भजन गाते सुना था और पर्व-त्योहारों पर व्रत-उपवास करते देखा था। उसने देखादेखी एकाध बार कृष्ण-जन्माष्टमी और अनन्त-चतुर्दशी के दिन उपवास भी किये थे। अर्थात् रोज़ की तरह खाना न खाकर फल आदि खाकर व्रत किया था। मिडिल स्कूल की परीक्षा देने के बाद सफलता के लिए उसने अन्य

विद्यार्थियों की देखादेखी हनुमानगढ़ी और दूसरे मंदिरों में जाकर कुछ दिन तक परिक्रमा भी की थी। शिव और भगवती के कुछ श्लोक भी कण्ठस्थ कर लिये थे। बस यही कहने के लिए उसकी धार्मिक शिक्षा-निधि थी।

लेकिन ईश्वर के अनुग्रह में उसका अटूट विश्वास हो गया था। इसका आधार एक बड़ी मज़ेदार घटना थी जो एक-ही साल पहले घटी थी। गर्मी के दिनों में जब स्कूल बन्द हो गया तब उसके अधिकांश साथी शहर से बाहर चले गये। चन्द्रकान्त के मन में कहीं जाने की इच्छा हुई। बलिया ज़िले के एक गाँव में उसकी एक बुआ रहती थीं। वहीं जाने के लिए उसने अपनी माँ और चाचा की अनुमति माँगी। अनुमति मिल गई। चाचा ने उसे पाकेटमारों से और ट्रेन-चोरों से सावधान रहने की सीख दी। चन्द्रकान्त अकेले सफ़र करके बुआ के गाँव जा पहुँचा। गंगा के तट पर बसा हुआ शाहाबाद ज़िले का सुबोधपुर गाँव जो उसका पैत्रिक-स्थान था, बुआ के गाँव से २० मील की दूरी पर था। वह पैदल वहाँ भी चला गया। लोगों से भेंट-मुलाकात करने के बाद लौटते समय उसे रात का समय बलिया स्टेशन के मुसाफ़िर-खाने में काटना था। सुबोधपुर के उसके घर में जो सामान पड़े थे, उसमें से वह एक बक्स लेता आया। बक्स में अपनी धोती, और किताबें रख दी थीं। बक्सा चोरी न चला जाय, इस बात का उसे भय था। इसलिए उसने जागकर रात काटने का निश्चय किया। पर दिन भर की थकावट के कारण उसे थोड़ी देर के बाद ही नींद आ गई। लेकिन तुरन्त जग भी गया। पर उसके पहले ही उसके सिर के नीचे से उसका बक्सा ग़ायब हो गया था। वह बहुत घबड़ाया और इधर-उधर उसे ढूँढ़ने लगा। इतने में एक आदमी आया और बक्सा ढूँढ़ने में उसकी मदद करने को कहा। वह चन्द्रकान्त को लेकर मुसाफ़िरखाने से बाहर जाने लगा।

चन्द्रकान्त थोड़ी दूर जाकर यह कहता हुआ लौट आया कि मैं पुलिस को इसकी ख़बर करूँगा। रेलवे पुलिस का सिपाही घूमता हुआ जब मुसाफ़िरखाने में पहुँचा तब चन्द्रकान्त ने बक्सा चोरी हो जाने की बात उसे कह सुनाई। सिपाही लापरवाही के लिए उसे ही डाँटकर चला गया। चन्द्रकान्त के दुःख का पारावार नहीं था। अब उसे बक्सा मिलने की कुछ भी आशा दिखाई नहीं दी। वह अपनी चादर एक दूसरी जगह बिछाकर उस पर लेटे-लेटे ईश्वर का स्मरण करने लगा और प्रार्थना करने लगा कि हे ईश्वर मेरा बक्सा मिल जाय। वास्तव में उसे बक्स के खो जाने का इतना दुःख नहीं था जितना धोती और कुर्ते के खोजाने का। मोतीहारी जाने पर उसके बारे में माँ और चाचा को वह क्या उत्तर देगा, यह ख़याल उसे सताने लगा। ईश्वर के ध्यान में वह इतना तल्लीन हो गया जितना कभी नहीं हुआ था। उसी समय एक आदमी उसके पास आया और बोला, "क्यों जी, बक्स मिला?" वह वही आदमी था जिसने बक्सा खोज देने में उसकी मदद कर देने की बात कही थी। मुसाफ़िरों में से किसी ने अनुमान से कहा था कि वह मदद करने की बात कहने वाला ही चोर था। चन्द्रकान्त उठकर बैठ गया और उसका नाम पूछने लगा। इतने में उसका ध्यान उस कुर्ते पर पड़ा जिसे वह आदमी पहनकर आया था। चन्द्रकान्त ने कुर्ता पहचान लिया। वह वही था जो बक्से के साथ चोरी हो गया था। उसने झट से उस कुर्ते को पकड़ लिया। कुछ देर तक हुज्जत करने के बाद उस आदमी ने स्टेशन मास्टर के पास चलने की बात कही। चन्द्रकान्त उस आदमी का कुर्ता पकड़े प्लेटफॉर्म पर गया। मध्य रात्रि का समय होने से सब मुसाफ़िर गाढ़ी नींद में थे। प्लेटफॉर्म पर बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। वह आदमी एकाएक झटका देकर और कुर्ता छुड़ाकर भागा। चन्द्रकान्त ने 'चोर-

चोर' की आवाज़ करते हुए उसका पीछा किया। रेलवे क्वार्टरों के पास सोनेवाले लोगों के बीच से होकर वह आदमी निकल भागा। चन्द्रकान्त तब तक उसका पीछा करता रहा जब तक कि वह शहर की एक गली में घुसकर आँखों से ओझल नहीं हो गया। कोई उसे पकड़ नहीं सका, क्योंकि वह भी धीमी आवाज़ में 'चोर-चोर' कहकर भागा जा रहा था। तेज़ी से भागने के लिए वह अपनी बगल से कोई कपड़ा प्लेटफॉर्म पर गिरा गया था। लौटती बार चन्द्रकान्त उसे उठाकर मुसाफ़िरखाने में लेता आया। रोशनी में देखने पर मालूम हुआ कि वह बक्स में रखी उसकी ही धोती थी। शोरगुल के कारण सब मुसाफिर जग गये थे। पुलिस का सिपाही भी फिर आ धमका। इस बार उसने चन्द्रकान्त से पूछकर उस भागने वाले का पूरा हुलिया अपनी पाकेट-बुक में दर्ज कर लिया। दूसरे दिन ख़ूब सवेरे उस सिपाही ने उस भागने वाले को पकड़कर चन्द्रकान्त के सामने ला खड़ा किया। चन्द्रकान्त ने उसे पहचान लिया। सिपाही ने कहा कि यह यहाँ का पुराना चोर है। कई बार सजा पा चुका है। उस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में पुलिस केस हो गया। और केस ख़त्म हो जाने के बाद वह शरीफ़ सिपाही चन्द्रकान्त को धोती लौटा देने के लिए मोतीहारी गया। और यह समाचार भी सुनाया कि उस चोर को तीन महीने की सजा हो गई है।

× × ×

वे दिन मोतीहारी के लिए नूतन जागृति के दिन थे। चार-पाँच सालों से वहाँ सर्वे सेटलमेण्ट का प्रधान दफ़्तर काम कर रहा था। उसके कर्मचारियों की संख्या कई सैकड़े तक पहुँच गई थी। उन कर्मचारियों में से अनेक बाहर के लोग थे जो अपने साथ कुछ नये विचार लेकर आये थे। उन्हीं लोगों से मोतीहारी की जनता ने आर्यसमाज के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की।

चन्द्रकान्त को भी कई आर्यसमाजी सभाओं में जाने और आर्योपदेशकों और सन्यासियों के भाषण सुनने का मौका मिला। पर जिस व्यक्ति ने उसके हृदय पर एक स्थायी प्रभाव डाला वह उन आर्योपदेशकों और सन्यासियों में से नहीं था यद्यपि वह भी एक सन्यासी ही था।

एक दिन सारे शहर में खबर फैल गई कि अमेरिका से लौटे हुए एक सन्यासी का धर्मसमाज-भवन में शाम को व्याख्यान होगा। सभा शुरू होने के पहले ही धर्मसमाज का विशाल हॉल विद्यार्थियों और शहर के गण्यमान्य लोगों से खचाखच भर गया। उस सभा के विशेष आकर्षण का एक यह भी कारण था कि धर्मसमाज की एक सभा में पहले-पहल वहाँ के अंग्रेज़ पादरी साहब, जिनका नाम मिस्टर हौज था, अध्यक्षता करने वाले थे। जब वह सन्यासी अध्यक्ष के परिचयात्मक भाषण के बाद अपना भाषण देने के लिए उठा तब लोगों ने करतल-ध्वनि से उत्साहपूर्वक उसका अभिनन्दन किया। सन्यासी का विशालकाय और भव्य मुखमण्डल उसके व्यक्तित्व को आकर्षण बना रहे थे। उसने अपने प्रभावशाली व्याख्यान से श्रोताओं के दिलों को हिला दिया। उसने स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाया, अपने हाथ से श्रम करने का महत्त्व बतलाया और नौजवानों को देश-सेवा का व्रत लेने के लिए उत्प्रेरित किया। मोतीहारी के लोगों के लिए ऐसा भाषण और ऐसे विचार सुनने का वह पहला अवसर था। स्वामी जी की वक्तृत्व-कला, उनकी ओजस्विता और विद्वत्ता ग़ज़ब की थी। श्रोतागण, विशेषकर विद्यार्थीवृन्द मन्त्रमुग्ध-सा होगया। वह सन्यासी श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक थे।

पर इससे भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण घटना जो उन दिनों घटी वह गान्धीजी के मोतीहारी आने की थी। उनके मोतीहारी पहुँचते ही वहाँ के अंग्रेज़-ज़िला मजिस्ट्रेट ने चौबीस घण्टे के अन्दर-

अन्दर गान्धीजी को चम्पारन ज़िले से बाहर चले जाने का हुक्म निकाला पर गान्धी ने उस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इस बात से मोतीहारी में ही क्या बिहार की राजधानी पटना में भी सनसनी फैल गई। आख़िर मजिस्ट्रेट को अपना हुक्म रद्द करना पड़ा। अंग्रेज़ बहादुर का इस प्रकार इतनी जल्दी झुक जाना चम्पारनवालों के लिए एक अनोखी बात मालूम हुई। वे बहुत ख़ुश हुए और गान्धी जी के प्रति हठात् आकृष्ट हो गये।

गान्धी जी के चम्पारन जाने का उद्देश्य वहाँ के किसानों की स्थिति की जाँच करना था, जो नील की खेती कराने वाले अंग्रेज़ ज़मींदारों के अत्याचारों से त्राण पाना चाहते थे।

मोतीहारी में गान्धी जी वहाँ के एक प्रसिद्ध वकील के यहाँ ठहरे थे। जब चन्द्रकान्त पहले-पहल उन्हें देखने गया तो वह निराश होकर ही लौटा। वकील साहब के बरामदे में फ़र्श पर एक दरी बिछी थी। मोटिया कपड़े की धोती, कुर्ता और टोपी पहने एक दुबला-पतला छोटे कद का आदमी बीच में बैठे कुछ काग़ज़-पत्र देख रहा था। बरामदे के बाहर अहाते में काफ़ी संख्या में गाँव के किसान आकर बैठे हुए थे। वातावरण बिल्कुल शान्त था। पर किसी ने धीरे से कहा कि वही कर्मवीर गान्धी हैं। उस समय गान्धी जी को 'महात्मा' कहने की परिपाटी शुरू नहीं हुई थी। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को देखने के बाद व्यक्तितत्व में उन्हीं से मिलते-जुलते एक और महापुरुष को देखने की आशा और उत्सुकता लेकर चन्द्रकान्त वकील साहब के मकान पर गया था। गान्धी जी के वेश में न कुछ भड़कीलापन था न व्यक्तित्व में कुछ असाधारणता ही थी। लेकिन ऐसा सीधा-सादा आदमी भी एक महापुरुष हो सकता है जिसके बड़े-बड़े कार्यों के फलस्वरूप लोग उसे 'कर्मवीर' कहते हैं, यह एक नई बात उसके दिल में बैठ गई। दूसरी बार जब वह गान्धी जी को देखने गया तब

उनके चारों तरफ़ कई नये महानुभाव दिखाई पड़े। उनमें सादा कुर्ता और पजामा पहने एक अंग्रेज़ सज्जन भी थे। उन्हें लोग ऐण्ड्रूज़ साहब कहते थे।

गान्धी जी के मोतीहारी जाने के बाद और जो कुछ हुआ सो तो हुआ ही पर एक विशेष बात यह हुई कि अनेक लोग गान्धी जी की तरह मोटिये कपड़े का कुर्ता और टोपी पहनकर निकलने लगे। इसे लोगों ने स्वदेशी प्रेम का चिन्ह कहा। चन्द्रकान्त उस साल मिडल स्कूल की परीक्षा देने वाला था। एक तो ऐसे भी मिडल स्कूल के सबसे ऊँचे दर्जे में पहुँचने पर लड़कों में उन दिनों एक तरह की गम्भीरता आजाती थी और वे समझने लगते थे कि मिडल के साथ-साथ उनका बाल्य-काल भी समाप्त होगया और वे नवयुवक-वर्ग में दाखिल हो गये। दूसरे चन्द्रकान्त के मन में नये-नये अनुभवों से नये-नये विचार उत्पन्न हो रहे थे। उसने अपने भावी जीवन के बारे में कुछ सोचा और जितना सोचा उससे कहीं अधिक निश्चय किया। उसने भी मोटिया कुर्ता और गान्धी टोपी पहनना शुरू कर दिया। वह भी एक मोटिये कपड़े का झोला गले में लटकाकर स्कूल जाने-आने लगा। उन दिनों कानपुर के 'प्रताप' पत्र की एक राष्ट्रीय पत्र के तौर पर बड़ी धूम थी। मोतीहारी में उसका प्रचार बढ़ रहा था। अख़बारी दुनिया से चन्द्रकान्त का परिचय उसी पत्र से शुरू हुआ।

× × ×

ज़िला स्कूल में दाखिल होते ही उसकी एक छोटी मित्र-मण्डली बन गई। जिसमें उसके अलावा चार और छात्र थे। दो तो उसके मिडल स्कूल के पुराने साथी थे। वे दोनों सहोदर भाई थे। बड़े का नाम महेश और छोटे का नाम सुरेश था। ये दोनों और चन्द्रकान्त शिशुवर्ग से साथ-साथ पढ़े और खेले थे। मण्डली में जो दो नये थे उनमें एक का नाम रघुनाथ और दूसरे

का नाम सहदेव था। नाथ और देव मण्डली में सीनियर जैसे लगते थे। नाथ चन्द्रकान्त की ही श्रेणी का छात्र था। वह वर्ग के दूसरे सेक्शन में था। देव दो श्रेणी ऊपर का छात्र था। ये दोनों अपने को आर्यसमाजी कहते थे और सिर पर मोटी चुटिया रखा करते थे, जो नये वैदिक धर्म में दीक्षित होने का एक चिन्ह माना जाता था। ये पाँचों मित्र अवकाश का अपना समय एक साथ बिताते और ऐसे रहते मानो ये मोतीहारी की नव-जागृति के प्रतिनिधि हों। उन दिनों ज़िला स्कूल में यदुवंश बाबू नाम के एक अध्यापक थे। वे एक आदर्श अध्यापक थे। वे न केवल पढ़ाने ही में कुशल थे वरन देशभक्ति और सदाचार की शिक्षा-दीक्षा देकर विद्यार्थियों को सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले भी थे। जब वे शाम को चहलक़दमी के लिए निकलते तो अनेक विद्यार्थी उनके साथ हो लेते और देश के महापुरुषों के बारे में उनसे बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त किया करते।

जब स्थानीय साहू मन्दिर में एक विद्वान पण्डित भागवत् की कथा सुनने लगे तो यदुवंश बाबू के साथ चन्द्रकान्त भी कथा सुनने जाने लगा। पण्डित जी प्रभावशाली ढंग से श्लोक पढ़ते और प्रवचन किया करते थे। वे आर्यसमाज के कट्टर विरोधी थे। बीच-बीच में दयानन्दियों अर्थात् आर्यसमाजियों की ख़ूब ख़बर लेते थे। जब वे कह उठते, "ऐसे दयानन्दियों के सर पर—तब उस वाक्य की पूर्ति भक्त श्रोतागण की तालियों की गड़गड़ाहट से होती थी जो सिर पर जूतियों के पड़ने का द्योतक होता था। आर्यसमाज की शिक्षाओं के कारण मोतीहारी की जनता को 'गुमराह' हो जाने से बचाने के लिए सनातन-धर्मावलम्बी सेठ-साहूकारों ने पण्डित जी को विशेष रूप से निमंत्रित कर उस कथा का आयोजन किया था। चन्द्रकान्त अभी तक आर्यसमाज से दूर था। लेकिन उस दिन मन्दिर में उसने जो कुछ देखा उससे वह 'सनातन धर्म'

से निश्चित रूप से विमुख होगया। और किसी मन्दिर में पूजा या आराधना का भाव लेकर जाने का उसके लिए वह अंतिम दिन साबित हुआ। वह फिर उस पण्डित की कथा सुनने नहीं गया।

कथावाचक पण्डित के उस दिन के तरीके से चन्द्रकान्त को जो धक्का लगा उससे सदा के लिए मन्दिर छूटा तो वाग्वर्धिनी-सभा स्थापित करने से उसे जो सज़ा मिली उसके फलस्वरूप उसने उस स्कूल को भी छोड़ देने का निश्चय किया। अब वह पहले से भी अधिक अपनी पढ़ाई-लिखाई में ध्यान देने लगा। उसने खेल-कूद के मैदान में जाना करीब-करीब बन्द ही कर दिया। प्रतिदिन स्कूल के बाद शाम को वह नवस्थापित ओंकार पुस्तकालय में जाने लगा। इलाहाबाद से एक प्रकाशक ने एक जीवन-चरित्र-माला निकाली थी जिसमें देश के अनेक महापुरुषों को छोटी-छोटी जीवनियाँ प्रकाशित हुई थीं। चन्द्रकान्त ने उन सब जीवनियों को पढ़ डाला। पढ़ते-पढते उसे लेखक बनने की इच्छा हुई। मोतीहारी में एक विद्वान सज्जन थे जिन्हें लोग पाण्डे जी कहा करते थे। वे एक प्रेस के मालिक थे। चन्द्रकान्त उनके यहाँ जाने-आने लगा। उसने कुछ इधर-उधर की बातें लेकर एक लेख लिखा। वह लेख उसने पाण्डेजी को दिखाया। पाण्डेजी का पेशा ही छापने का था। उन्होंने उसे लेख को पुस्तकाकार छापने को उत्साहित किया। उन्होंने यह भी बतला दिया कि पुस्तक १२ पृष्ठ की होगी। एक हज़ार प्रतियाँ छापने में दस रुपये लगेंगे। रुपये का प्रबन्ध कैसे हो, यह सोचते हुए चन्द्रकान्त अपने घर गया और माँ को समझाया कि पुस्तक को एक हज़ार प्रतियाँ छापी जायँ और एक प्रति का दाम एक आना भी रखा जाय तो सब प्रतियों का दाम एक हज़ार आना होगा। अर्थात ६० रुपये। खर्च घटाकर ५० रुपये की आमदनी तो हो ही जायेगी। उसने माँ से अनुरोध किया कि किसी तरह १० रुपये का प्रबन्ध करदें जिससे उसकी

पुस्तक छप जाय। किताब बेचकर वह रुपये वापिस कर देगा। माँ ने रुपये दे दिये। उन्हें लेकर वह पाण्डेजी के पास पहुँचा और बड़े हर्ष के साथ उन रुपयों को उनके हाथ में देते हुए कहा कि मेरी किताब जल्द छाप देने की कृपा करें। पुस्तक का नाम रखा 'हमारा कर्तव्य' लेखक की जगह उसने अपना एक उपनाम चन्द्र 'शाहाबादी' छपवाया। किताब छप गई। चन्द्रकान्त की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन सिवाय १५-२० प्रतियों के, जिन्हें उसके हमजमातियों ने खरीदा, बाकी प्रतियाँ बिकी नहीं और न माँ को रुपये ही लौटाये गये।

'हमारा कर्तव्य' के सब बण्डल खुले भी नहीं। उन्हें खपाने के लिए चन्द्रकान्त ने काफ़ी दौड़-धूप की। एक बार मोतीहारी ज़िला स्कूल का टीम मुज़फ़रपुर फुटबॉल का मैच खेलने जाने लगा। अनेक लड़के उस टीम के साथ मुज़फ्फरपुर मैच देखने गये। चन्द्रकान्त भी 'हमारा कर्तव्य' का एक बण्डल लिये अपने साथियों के साथ मुज़फ्फरपुर गया। सोचा, थोड़ी-बहुत प्रतियाँ तो बिक ही जायेंगी, लेकिन हुआ कुछ और ही। टीम के लड़कों और दो-एक अध्यापकों के अलावा और किसी ने टिकट नहीं खरीदा था। जब सब मुज़फ्फरपुर पहुँचे तब देखा कि दर्वाज़ों और फाटकों पर पुलिस तैनात है। बिना टिकट वाले लड़के रोक लिये गये। मोतीहारी के स्टेशन मास्टर ने मुज़फ्फरपुर फोन कर दिया था कि अनेक लड़के बिना टिकट जा रहे हैं। कई बिना टिकट वाले लड़के तो स्टेशन का घेरा फाँद-फाँद कर बाहर होगये। लेकिन कुछ मोटे लड़के और कुछ अन्य बाहर नहीं जा सके। चन्द्रकान्त ने, जो घेरा फाँदकर बाहर चला गया था, बाकी लड़कों को इकट्ठा करके भीतर वालों को छोड़ देने के लिए नारा लगाना शुरू कर दिया। सब प्लेटफॉर्म के द्वार पर गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने लगे। थोड़ी देर बाद स्टेशन मास्टर निकले और

शोरोगुल बन्द करने को कहते हुए भीतर वालों को छोड़ दिया। जब भीतर वाले विद्यार्थी बाहर आ गये तब सब विजयी सिपाही की तरह अकड़ते हुए खेल के मैदान की तरफ़ बढ़े। लेकिन उस कूद-फाँद में चन्द्रकान्त का 'हमारा-कर्तव्य' का बण्डल खो गया।

× × ×

उन दिनों की एक महत्त्वपूर्ण घटना उसका पूर्णिया जाना था। पूर्णिया में बिहार स्टूडेण्ट्स कॉन्फ्रेन्स का वार्षिक जलसा होने वाला था। भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू अध्यक्षता करने वाली थीं। चन्द्रकान्त और उसकी मण्डली के बाकी चार साथी उस सम्मेलन में डेलिगेट के तौर पर गये। सरोजिनी नायडू का व्याख्यान क्या था देशभक्ति का एक ओजस्वी काव्य था। ग़ज़ब की उनकी वाग्धारा थी। सम्मेलन में कइयों के व्याख्यान हुए और कई प्रस्ताव पास हुए। चन्द्रकान्त ने कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। पर वह पूर्णिया से कुछ नयी प्रेरणा लेकर मोतीहारी लौटा।

पूर्णिया-सम्मेलन की एक विशेष बात यह थी कि प्रतिनिधियों को एक पंक्ति में बैठाकर खिलाया गया। चन्द्रकान्त की ही छोटी मण्डली में जो थे सब प्रचलित जाति-भेद और छुआछात के भाव के कारण एक दूसरे का छुआ नहीं खा सकते थे। लेकिन पूर्णिया से वे भाईचारे और एकता का एक नया भाव और एक नयी हिम्मत लेकर लौटे। पाँचों मित्रों ने मिलकर एक सहभोज करने का निश्चय किया। २-४ अन्य मित्र भी बुला लिये गये। सबों ने मिलकर चावल, दाल, सब्ज़ी अर्थात् जिसे कच्चा खाना कहा जाता है और जिसे अपने को उच्च जाति का कहने वाले दूसरों का राँधा हुआ या छुआ हुआ होने पर नहीं खाते—बनाया और बिना किसी भेद-भाव के एक-दूसरे को परसकर खाया और खिलाया। उनकी दृष्टि में वह कार्य एक क्रान्तिकारी कार्य था।

देशभक्त और सुधारक दल में प्रवेश पाने को मानों वह एक गुप्त दीक्षा हो। लेकिन चुगलखोरों से बचने का आवश्यक उपाय कर लिया गया था। वाग्वर्धिनी सभा की खबर हेडमास्टर के कानों तक पहुँच जाने की बात को वे भूले नहीं थे। इस बार गार्जियन लोगों की नाराजगी का विशेष भय था, इसलिए वह सहभोज रात के समय एक खाली घर में गुपचुप आयोजित किया गया था।

उस समय चन्द्रकान्त की उम्र पन्द्रह साल की थी। उसने जूते पहनना छोड़ दिया था। वह सिर पर लम्बे बाल रखता था और मोटिया कुर्ता पहनता था। किफ़ायतशारी की दृष्टि से वह वेश ठीक था। पर चन्द्रकान्त के लिए उसके पीछे एक विशिष्ट जीवन की प्रेरणा भी थी। ऐसी ही उसकी कुछ शक्ल-सूरत थी जब कि वह जिला स्कूल में सालाना इम्तहान खतम होने के तीसरे दिन दिसम्बर की एक शाम को अपने घर से निकल पड़ा। वह सीधे स्टेशन गया और गाड़ी के आते ही तीसरे दर्जे के एक डिब्बे में जा बैठा। उसकी जेब में न एक पैसा था न पास में कुछ सामान। उसका सहपाठी महेश उसे विदा करने आया था। महेश की आँखें अपने बालमित्र की जुदाई के कारण डबडबा आईं। ज्योंही गाड़ी चलने को हुई उसे कुछ स्मरण हो आया। उसने अपनी जेब में हाथ डाला। उसमें से चाँदी की एक दुअन्नी निकली। उसे उसने बिना कुछ कहे अपने मित्र की कमीज़ के ऊपरी जेब में डाल दिया। गाड़ी चल दी। दोनों मित्र अलग हो गये। एक अपने घर अपने माँ-बाप के पास और दूसरा अपने घर से दूर—बहुत दूर—अपने भाग्य की परीक्षा करने चला।

गाड़ी की रफ़्तार बढ़ने लगी। शहर के परिचित स्थान एक-एक करके आँखों से ओझल होने लगे। पेड़-पौधे पीछे भागते नज़र आये। लेकिन उन चीज़ों की ओर उसका ध्यान नहीं गया।

वह डिब्बे में खिड़की के पास बैठा था और अपना मुँह बाहर की तरफ़ किये हुए था। मानो बाहर के दृश्यों का आनन्द ले रहा हो। पर वास्तव में वह सिसकियाँ भर रहा था। स्वजनों से बिछुड़ने का ख़याल बार-बार उसे विह्वल बना रहा था।

वह बचपन ही में पितृहीन हो गया था। जब से उसने होश सँभाला तब से उसे एक ही बात का अनुभव हुआ कि काम करना आवश्यक है। उसके, माँ के अलावा एक छोटा भाई था और उससे भी छोटी एक बहन थी। पिता के देहान्त के बाद परिवार के भरण-पोषण का भार उसके चाचा के कन्धों पर आ पड़ा। भाई-बहन उन्हें छोटे बाबू कहा करते थे। जब चाचा घर पर नहीं रहते तब वही बाहर का छोटा-मोटा काम सँभालकर अपनी माँ की मदद किया करता। घर के काम के लिए कुएँ से पानी खींच लाना, बाज़ार से सौदा ख़रीद लाना और माँ के कहने पर बटाईदारों से अनाज आदि लेने के लिए मीलों पैदल यात्रा करना उसके लिए साधारण-सी बात हो गई। उसे बचपन की बेफ़िक्री और मज़े के दिन नसीब नहीं हुए। न उसके मन में बालपन की चंचलता की लहरें ही उठीं।

घर से चलते समय उसने अपनी माँ से कहा कि वह एक सप्ताह में लौट आयेगा। छोटे भाई-बहन घर पर नहीं थे। छोटे बाबू किसी काम पर शहर से बाहर गये हुए थे। उसने सोचा कि रास्ता साफ़ है। लेकिन ट्रेन में बैठ जाने के बाद जब कि वह उसे लिये तेज़ी से भागी जा रही थी, अदृश्य बन्धन के तार उसके मन को पीछे की ओर खींचने लगे। उसे ख़याल आया कि जब छोटी सुनन्दा माँ से पूछेगी—'भैया अभी तक क्यों नहीं आये?' तब माँ क्या उत्तर देंगी? सूर्यकान्त बोल उठेगा—'मैं जाकर महेश जी के यहाँ देख आता हूँ, भैया वहीं होंगे।' तब माँ क्या कहेंगी? क्या वह कह देंगी कि भैया आज नहीं आयेंगे, कल

भी नहीं आयेंगे, परसों भी नहीं आयेंगे, एक हफ्ते के बाद आयेंगे। क्या माँ को विश्वास हो गया होगा कि वह एक हफ्ते के बाद लौट आयेगा ? विदा होते समय माँ ने चुपचाप उसकी बातें सुन ली थीं। हाँ-ना कुछ नहीं कहा था। कोई सवाल नहीं पूछा था। अपने बच्चों को वह वे अपने प्राणों से बढ़कर मानती थीं। पर परिस्थिति ने उस वियोग को सहन करने पर उन्हें मजबूर कर दिया था। उनका बड़ा बेटा उनके चरण छूकर जब घर से निकला तब भी उनके मुँह से एक शब्द तक नहीं निकला। सिर्फ आँखें छलक आई थीं। माता के हृदय का प्रेम और आशीर्वाद आँखों में उमड़ आया था। वे सब बातें उसे एक-एक करके याद आने लगीं। माँ का सजल आँखों वाला चेहरा उसकी आँखों के सामने आगया और अब तक बलपूर्वक रोका हुआ उसका वियोग-दुःख फूट पड़ने के लिए उमड़ पड़ा। लेकिन नहीं, उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं। वह अपनी रुलाई से लड़ने लगा। वह नहीं चाहता था कि उसकी सिसकियों की आवाज़ किसी को कानों-कान सुनाई दे या कोई उसे आँसू गिराते-टपकाते देखे।

वह अपनी विह्वलता की तरंगों में हिलोरें ही ले रहा था कि सुगौली जकंशन आ गया। प्लेटफॉर्म पर विशिष्ट वर्दी पहने कई टिकट-चेकरों को देखकर उसने अनुमान लगाया कि मुसाफिरों के टिकटों की जाँच होगी। उसके पास तो टिकट था नहीं। टिकट माँगने पर वह क्या कहेगा यह उसने पहले से ही सोच लिया था। स्वामी रामतीर्थ की जीवनी में उसने पढ़ा था कि उनके अमेरिका पहुँचने पर किसी ने उनसे पूछा कि यहाँ आपका कोई मित्र है ? तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "अवश्य, और मेरे वह मित्र तुम ही हो।" लेकिन कोई टिकट-चेकर उसके डिब्बे में आया ही नहीं।

× × ×

चन्द्रकान्त किसी निश्चित योजना के अनुसार घर से नहीं निकला था। अगर कुछ निश्चित था तो सिर्फ़ इतना ही कि उसे किसी दूसरे शहर में जाकर पढ़ना है।

ट्रेन दौड़ी जा रही थी। दिसम्बर की ठण्डी रात घनीभूत होती जा रही थी। डिब्बे की सब खिड़कियाँ बन्द रहने पर भी तीर की तरह छेदती हुई सनसनाती हवा अपनी करामात दिखा रही थी। सब मुसाफ़िर अपने को ढक-ढुककर या तो नींद में बेख़बर होगये थे या ऊँघ रहे थे। चन्द्रकान्त सर्द बेंच पर अपने घुटनों को पेट में सटाये और घुटनों पर ठुड्डी रखे अपनी सारी ताकत लगाकर अपने दाँतों को बजने से रोकने की कोशिश-पर-कोशिश कर रहा था। ट्रेन की भक-भक और सोने वालों के खुर्राटे के बावजूद वह अपने मन के घोड़े पर सवार पुरानी बातों और पुरानी जगहों के स्मृति के पत्र में दौड़ रहा था। कष्टप्रद वर्तमान को भुलाने के लिए अतीत का स्मरण अधिकाधिक आकर्षक होता जाता था। इतने में एक मुसाफ़िर जो ऊपर की बर्थ पर सोया था, नींद में नीचे गिर पड़ा। नीचे फ़र्श पर जो मुसाफ़िर सोया था दब जाने से चिल्ला उठा, और गिरने वाले को गाली-गलौच सुनाकर अपने को तसल्ली देने लगा। थोड़ी देर के बाद फिर सन्नाटा छा गया।

चन्द्रकान्त उस स्कूल के हेडमास्टर के बारे में जिसके कारण उसने अपनी माँ और भाई-बहन से जुदा होकर यह यात्रा शुरू की थी, सोचते-सोचते अपने पुराने मिडिल इंगलिश स्कूल के हेडमास्टर के बारे में सोचने लगा। छः-सात साल उसने उस हेड-मास्टर के अधीन पढ़ा-लिखा था। वह हेडमाटर साहब कितने आत्मीय-से मालूम हुए। कई बार उसने उनकी छड़ियाँ खाई थीं, लेकिन उसकी स्मृति से उसके दिल में उनके प्रति किसी तरह की कटुता का भाव नहीं था। वह जब नीचे के दर्जे में पढ़ता था तब

एक बार एक लड़के ने उसके विरुद्ध हेडमास्टर से झूठी शिकायत करके उसे पिटवा दिया। उसने खुद कुछ गलती की थी, जिसे चन्द्रकान्त ने देख लिया था। "प्रहार प्रतिज्ञा का उत्तम तरीका है" इस नीति के अनुसार इसके पहले कि चन्द्रकान्त के मुँह से उसकी बदमाशी की बात फैले, उस लड़के ने चन्द्रकान्त के ही विरुद्ध हेडमास्टर के पास सीधे जाकर शिकायत कर दी। वह एक उच्चाधिकारी का चतुर लड़का था। चन्द्रकान्त निर्दोष होने पर भी पिट गया, तो भी हेडमास्टर के प्रति उसके मन में कोई क्रोध-भाव पैदा नहीं हुआ।

चन्द्रकान्त से एक बार एक ऐसा कार्य हो गया जिसका पछतावा उसे हमेशा रहा। वह हेडमास्टर साहब ऊँचे वर्गों में अंग्रेजी पढ़ाया करते थे। अंग्रेजी ग्रामर का कुशल शिक्षक होने का उन्हें नाज़ था। एक दिन डिप्टी इन्सपेक्टर साहब स्कूल-निरीक्षण के लिए आये। जब वे चन्द्रकान्त के क्लास में पहुँचे तब हेडमास्टर साहब का ही अंग्रेजी का घण्टा था। इन्सपेक्टर साहब ने लड़कों से ग्रामर के कई प्रश्न पूछे किन्तु ठीक जवाब नहीं दे सके। दूसरे दिन हेडमास्टर साहब ने 'सतगुरु के बन्दौं पाँव' कहते हुए क्लास में प्रवेश किया। सारा क्लास थर्रा गया। 'सतगुरु के बन्दौं पाव' का उनके मुंह से निकलना क्या था एक सिगनल था कि आज ख़ैर नहीं। लोगों का कहना था—कि हेडमास्टर साहब को उत्तेजक नीरा से प्रेम था। बुढ़ापा उस प्रेम को और बढ़ा रहा था। जिस दिन ज़रा ज्यादा मात्रा में पीकर स्कूल आते थे उस दिन क्लास में कुछ लिखने का काम दे देते और स्वयं मेज़ पर पाँव फैलाकर आराम करते। लेकिन कहीं उस झोंके में 'सतगुरु के बन्दौं पाँव' कहकर क्लास में प्रवेश करते तो या तो बड़ी जिन्दादिली से पढ़ाते या लड़कों पर छड़ी-पर-छड़ी तोड़ डालते। उस दिन क्लास के सब लड़के पहले ही से डरे हुए

थे कि डिप्टी साहब के सवालों का ठीक जवाब न देने से हेड-मास्टर साहब बहुत नाराज़ होंगे। हेडमास्टर साहब ने क्लास में उस दिन कोई नया पाठ नहीं पढ़ाया। जितना पढ़ाया था उसी पर प्रश्न पूछने लगे और जवाब देने में भूल करने पर निश्ती हो छड़ियाँ तोड़ने लगे। स्कूल का चपरासी पास की झाड़ी से छड़ी काटकर देते-देते थक गया। सारे क्लास पर बड़ी मार पड़ी। महेश के भाई सुरेश के हाथों पर इतनी छड़ियाँ पड़ीं कि उसके दोनों हाथ सूज गये। वह दो-चार रोज़ क्लास में नहीं आया। उस घटना के तीसरे दिन चन्द्रकान्त स्कूल के बाद शाम को उसे देखने उसके घर गया। वहाँ पहले ही से क्लास के विद्यार्थियों की एक अच्छी-खासी भीड़ लगी हुई थी। भीड़ क्या थी उनको इस बात के लिए सभा हो रही थी कि डिविज़नल इन्सपेक्टर को एक दरख्वास्त भेजी जाय और हेडमास्टर के इस कार्य की तरफ़ उनका ध्यान आकृष्ट किया जाय। दरख्वास्त का मज़मून लिखा जाने लगा। दो-तीन लड़कों ने अपने-अपने ढंग से लिखा पर वह उस मजलिस में नामंजूर हुआ। आखिर किसी ने काग़ज़ चन्द्रकान्त के सामने बढ़ा दिया। चन्द्रकान्त तब तक एक दर्शक की भाँति चुपचाप बैठा था। जब काग़ज़ उसके सामने आया तब उसने दरख्वास्त का एक मजमून लिखा और वह मंजूर होगया। उसे दूसरे ही दिन डाक से डिविज़नल इन्सपेक्टर के पास मुज़फ्फ़रपुर भेज देने का निश्चय हुआ। सभा विसर्जित हो गई। चन्द्रकान्त अपने घर लौटा, पर वह खुश नहीं था। हेडमास्टर ने उसके साथ बहुत नेकी की थी। वह उनका बहुत आभारी था, लेकिन आज उसी के हाथ से उनके ख़िलाफ़ एक दरख्वास्त लिखी गई। उसे इस पर बहुत ग्लानि हुई। पर वह क्या करता? तीर हाथ से निकल चुका था।

डिविज़नल इन्सपेक्टर के आदेशानुसार वही डिप्टी साहब

उस दरख्वास्त की बातों के बारे में एक दिन जाँच करने स्कूल में आये। क्लास में आकर पूछा कि लड़कों की क्या शिकायत है, पर कोई लड़का कुछ कहने के लिए उठा नहीं। डिप्टी साहब यों ही चले गये। लेकिन वह बात (सारे स्कूल में एक चर्चा का विषय बन गई। अन्य मास्टर लोग एक-एक करके लड़कों से पूछने लगे कि दरख्वास्त किसने भेजी थी ? स्वयं हेडमास्टर ने चन्द्रकान्त को बुलाकर पूछा। पर चन्द्रकान्त ने नाजानकारी प्रकट की। लड़कों में कुछ ऐसी मिल्लत थी कि असली लेखक का नाम बहुत दिनों तक गुप्त रहा। हेडमास्टर साहब एक लड़के पर संदेह करने लगे थे। कभी-कभी क्लास में भी नाराजगी में मौका पाकर वह अपना संदेह प्रकट कर दिया करते थे। लेकिन वह लड़का दरख्वास्त लिखे जाने के दिन उस मंडली में हाजिर भी नहीं था। कुछ दिनों तक वह बड़े धैर्य और हिम्मत से हेडमास्टर का कोपभाजन बना रहा। लेकिन कब तक बरदाश्त करता ? एक दिन क्लास में ही जब हेडमास्टर फिर उस बात को लेकर उस पर व्यंग कर रहे थे, उसने उठकर दरख्वास्त के असली लेखक का नाम प्रकट कर दिया। सारा क्लास स्तम्भित हो गया। हेडमास्टर को विश्वास नहीं हुआ कि सब लड़कों में चन्द्रकान्त ही ऐसा निकलेगा जिसने उनके खिलाफ़ दरख्वास्त लिखी होगी। उन्होंने उसे अपने दफ़्तर में बुलाकर सारा हाल सच-सच कह सुनाने को कहा और चन्द्रकान्त ने सब बातें साफ़-साफ़ बतला दीं कि कैसे वह एक कुघड़ी में बिना बिचारे उस दरख्वास्त का लेखक बन गया और बाद को बहुत दुःखी हुआ। हेडमास्टर ने उस दिन की मजलिस में जितने लड़के हाजिर थे सभों पर आठ-आठ आना जुर्माना कर दिया। लेकिन चन्द्रकान्त को वह भी नहीं देना पड़ा। हेडमास्टर ने अन्त में उसका जुर्माना माफ़ कर दिया।

× × ×

बावजूद ट्रेन की तेज़ी के ऐसा मालूम होता था कि उस दिन की रात जल्दी कटने के बदले बढ़ती ही जा रही है। चन्द्रकान्त आतुरतापूर्वक सवेरा होने की प्रतीक्षा करने लगा पर सवेरा होने का कोई चिन्ह प्रकट नहीं हो रहा था। वह सोचने लगा, न जाने जीवन में उसे क्या-क्या देखना और भोगना बदा है। उसके मन में कुछ समय पहले एक बार जीवन में टिकट-क्लेक्टर बनने की इच्छा पैदा हुई थी। उसका एक सहपाठी था जिसके बड़े भाई मोतीहारी स्टेशन में छोटे बाबू का काम करते थे। वह लड़का कहा करता था कि मिडिल पास करने पर वह रेलवे में नौकरी कर लेगा। चन्द्रकान्त ने सोचा, मिडिल पास हो जाने पर उसे भी नौकरी मिल सकती है। लेकिन वह क्या काम करना पसन्द करेगा? उसे टिकट-क्लेक्टरों का काम बहुत मज़ेदार मालूम होता था। उनकी भड़कीली वर्दी, उनका फुर्ती और चुस्ती से ट्रेन में चढ़ना-उतरना और एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जाना तथा बराबर सफ़र में रहने का आनन्द लेना, उसे बहुत आकर्षक मालूम होता था। और उसके दिल के एक कोने में मिडिल पास करने के बाद एक टिकट-क्लेक्टर बनने की इच्छा पैदा हुई थी। लेकिन बाद को उस इच्छा का स्थान दूसरी इच्छाओं ने ले लिया।

× × ×

ठण्डक की तीक्ष्णता और रात की लम्बाई का सामना करने के लिए चन्द्रकान्त के पास एक ही उपाय था कि वह अपने मन के घोड़े खूब दौड़ाता रहे। जब उसे और कुछ नहीं सूझा तब उसने अपने मन को स्मृति-तल से कुछ ढूँढ़ लाने को भेजा। उसे एक सुनी-सुनाई बात याद आई। उसका जन्म शाहाबाद के सुबोधपुर गाँव में हुआ था। जन्म के दो-तीन साल तक वह वहीं रहा। एक दिन घर की एक स्त्री उसे और एक दूसरे लड़के को, जो उससे

ज़रा बड़ा था, गाँव के पास की तलैया में नहलाने के लिए ले गई। नहलाकर दोनों को ऊपर बांध पर बैठाकर वह स्वयं पानी के किनारे बैठकर अपने सिर के बालों को सज्जी-मिट्टी से मलकर धोने लगी। चन्द्रकान्त पानी में जाकर छपछप खेलने के लोभ से चुपके से नीचे उतरा। पर उसका पैर फिसल जाने से वह गहरे पानी में चला गया और डूबने-उतराने लगा। ऊपर बैठा हुआ लड़का उसे डूबते देखकर चिल्लाने लगा—"चन्द्रा डूबा! चन्द्रा डूबा!" लेकिन उस स्त्री ने नहीं सुना। वह ज़रा ऊँचा सुनती थी। चन्द्रकान्त सदा के लिए डूबने वाला ही था कि गाँव का एक आदमी जो अपने बैलों को पिलाने के लिए पानी ले जाने के लिए तलैया की तरफ़ आ रहा था, उस लड़के की चिल्लाहट सुन-कर दौड़ा और चन्द्रकान्त को पकड़कर पानी से बाहर ले आया और प्राथमिक उपचार करना शुरू कर दिया। इस प्रकार चन्द्रकान्त बच गया।

× × ×

चन्द्रकान्त को अपने पिता की मृत्यु की भी याद आयी। उसकी उम्र सात साल की थी। एक बार अपने चाचा के साथ वह बुआ के गाँव गया था। तीन महीने के बाद वहाँ से लौटा। उसके लौटने के बाद तीसरे दिन उसके पिता ने, जो मोतीहारी के डाकघर में एक कर्मचारी थे, एक दिन काम पर से लौटकर आँगन में घुसते ही, बच्चों के लिए रोज़ की तरह लाई हुई मिठाइयाँ माँ को देते हुए दर्द की शिकायत की। माँ सहारा देकर आँगन में उन्हें लेकर बैठ गई। पिता को दन्ती लग गई। माँ ने चन्द्रकान्त से पानी माँगकर उनके मुँह में डाला और दन्ती छुड़ाई। गले में कुछ पानी पहुँचते ही पिता को ज़रा खाँसी आ गई। पिता ने खाँसकर पानी थूक दिया और उसके साथ ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसके बाद माँ का रोना सुनकर वह भी रोने

लगा। बात की बात में आँगन में एक भीड़ लग गई। और दो-तीन घण्टे के भीतर-भीतर लोग मृत शरीर को श्मशान-भूमि में उठा ले गये। इस तरह देखते-देखते वह पितृहीन हो गया। पिता के मरने के बाद घर में जो-जो तकलीफें पैदा हुईं सब चित्रवत् उसकी आँखों के सामने आने लगीं। कैसे पर्दे में रहने वाली माँ कभी-कभी रात को ही बच्चों के लिए खाना बनाकर रख देतीं और खूब तड़के उठकर पैदल चलकर खेती की फसल दबांकर अपना हिस्सा लेने चली जातीं। चन्द्रकान्त पर छोटे भाई-बहन को सँभालने और खिलाने का भार रहता था। कैसे वह शाम तक, जो कि माँ के लौटने का समय हुआ करता था, व्यग्रता-पूर्वक उनके आने की बाट जोहता रहता था। जब उसके पिता जीवित थे तब भी घर-द्वार के प्रबन्ध का कार्य चाचा ही किया करते थे। चाचा का लाड़-प्यार चन्द्रकान्त को अधिक मिला था। वे ही उसके प्रथम गुरु भी थे। पढ़ाने में वे बहुत कड़े थे। चन्द्रकान्त, अंग्रेज़ी की फ़र्स्ट बुक पढ़ते समय उनके हाथों कितनी ही बार पिट चुका था। जब चन्द्रकान्त की नियमित पढ़ाई शुरू हो गई तब उसने सूर्यकान्त और सुनन्दा के गुरु होने का काम किया। सुनन्दा को भूलें करने पर वह जब डाँटता तब वह कह उठती—'मैं नहीं पढ़ूँगी। मुझे नौकरी थोड़े ही करनी है।'

फिर चन्द्रकान्त को उस बनिये के बारे में भी याद आया जिसके फेर में पड़कर चाचा ने सब खेत बेच दिये और साझे पर चावल की दुकान करने के लिए उसे रुपये दे दिये। चन्द्रकान्त को प्रायः हर रोज़ उस बनिये के पास जाना पड़ता और घर के ख़र्च के लिए दो-तीन सेर चावल और कुछ पैसे माँगकर लाना पड़ता था। अनेक बार चन्द्रकान्त को बहुत देर तक दूकान में बैठा रहना पड़ता था, क्योंकि बनिया दूसरे ग्राहकों के हाथ बेचने में लगा रहता था। कुछ दिन के बाद बनिये ने अपने को दिवालिया

घोषित कर दिया और चावल देना बन्द कर दिया। चाचा की थोड़ी-सी आमदनी घर के पाँच व्यक्तियों की परवरिश के लिए काफ़ी नहीं थी। पिता के प्रोविडेण्ट फण्ड के जो रुपये मिले थे वे सब ख़त्म हो चुके थे। खेत बेचकर दुकान में लगाई पूँजी बनिया हड़पकर बैठ गया। ऐसी स्थिति में स्कूल की पढ़ाई की फ़ीस भी उस साल माफ़ नहीं हुई। वह साल चन्द्रकान्त के परिवार के लिए अकाल और निराशा का साल था।

२

अप्रत्याशित मोड़

दूसरे दिन गाड़ी गोरखपुर होते हुए अयोध्या पहुँची। डिब्बे में सिर्फ़ एक यात्री से उसकी थोड़ी-बहुत बातचीत हुई। बाकी सब एक दूसरे से उदासीन अपनी-अपनी चिन्ताओं में डूबे अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे। जिससे चन्द्रकान्त की बातें हुईं वे एक वैद्य थे। अपने सामने चन्द्रकान्त को चुपचाप बैठा देखकर उन्होंने यह मत प्रकट किया कि उसके चेहरे पर ख़ून की कमी है। यह मालूम होने पर कि वे भगवान का दर्शन करने अयोध्या जा रहे हैं, चन्द्रकान्त ने कहा कि मेरी भी इच्छा अयोध्या देखने की है। वैद्य जी ने अपने साथ चलने की उसे सलाह दी। लेकिन अयोध्या स्टेशन पर उतरते ही वैद्य जी की संगत छूट गई। चन्द्रकान्त अकेले ही प्लेटफार्म से बाहर निकल गया। कुछ समय तक शहर में घूम-घामकर वापिस आगया और प्रयाग जाने वाली गाड़ी में जा बैठा।

अगले दिन सवेरे वह प्रयाग पहुँचा। स्टेशन से बाहर निकलते ही इक्केवालों ने उसे घेर लिया। उनसे छुटकारा पाकर वह आगे बढ़ा और पूछताछ शुरू की कि डी. ए. वी. हाई स्कूल कहाँ है? लोगों ने बतलाया कि यहाँ से तीन-चार मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के पास है। चन्द्रकान्त डी. ए. वी. हाई स्कूल की तरफ़ चल पड़ा। आर्यसमाज और उसके द्वारा चलाए गये हाईस्कूल और कालेजों के बारे में उसने जो कुछ सुना था उससे उसके मन में उन संस्थाओं के प्रति एक उच्च धारणा

बन गई थी। वह मोतीहारी से सीधे बनारस होकर इलाहाबाद न जाकर गोरखपुर होकर जो गया था उसके पीछे उसकी एक योजना थी। वह इलाहाबाद के डी. ए. वी. हाई स्कूल में भर्ती होकर पढ़ना चाहता था। अगर वहाँ प्रबन्ध न हो सके तो अन्त में बनारस जाकर पढ़ने का कोई न कोई उपाय निकालने का उसका विचार था।

डी. ए. वी. हाई स्कूल पहुँचकर वह स्कूल के हेडमास्टर से मिला। चन्द्रकान्त ने मोतीहारी से इलाहाबाद आने का अपना उद्देश्य उन्हें बतला दिया। उसने अपनी स्थिति का भी उन्हें ज्ञान करा दिया। हेडमास्टर साहब ने उससे उसके भोजन के बारे में पूछा। मोतीहारी से वह जो दुअन्नी लेकर चला था उसमें से दो पैसे उसे अयोध्या में यात्री टैक्स के तौर पर देने पड़े थे। बाकी डेढ़ आने पर उसने ४० घण्टे की यात्रा का समय काटा था। हेडमास्टर साहब के मुँह से भोजन की बात सुनकर चन्द्रकान्त के पेट की दबी भूख एकदम प्रज्वलित हो गई। सबसे पहले उसने पीने का पानी माँगा। उस समय तक उसे भूख-प्यास का कोई ध्यान नहीं था। टिफ़िन के पीरियड में स्कूल के लड़कों को नाश्ता कराने वाला हलवाई आ गया था। स्कूल के चपरासी ने पूड़ी-तरकारी-मिठाई लाकर चन्द्रकान्त के सामने रखदी। जब क्षुधा शान्त हो गई तब चन्द्रकान्त सोचने लगा कि हेडमास्टर ने भोजन करा देने की दया तो दिखलाई पर स्कूल में भर्ती करने के बारे में क्या निर्णय करेंगे ? शाम को जब स्कूल खत्म हुआ तब हेडमास्टर ने उसे एक पत्र दिया और स्कूल के चपरासी के साथ जाकर स्कूल की मैनेजिंग कमिटी के मन्त्री को दे देने को कहा। मन्त्री ने पत्र को पढ़ा और दूसरा प्रबन्ध होने तक अपने ही यहाँ उसके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। उनके यहाँ एक ब्राह्मण कारिन्दा था। उसे चन्द्रकान्त को दोनों समय भोजन बना

कर देने का आदेश दे दिया गया।

दूसरे दिन स्कूल जाकर वह हेडमास्टर साहब से मिला और मन्त्री जी ने जो व्यवस्था कर दी थी उसके बारे में कह सुनाया। हेडमास्टर साहब ने उसे आठवें दर्जे में जाकर बैठने के लिएभेज दिया। पर क्लास में बाकायदा भर्ती करने के लिए मोतीहारी ज़िला स्कूल से ट्रान्सफ़र-सर्टीफ़िकेट मँगाकर देना ज़रूरी था। सर्टीफ़िकेट मँगा देने का भार भी हेडमास्टर साहब ने अपने ऊपर ले लिया। चन्द्रकान्त ने अपनी माँ के पास एक कार्ड भेजा कि वह इलाहाबाद पहुँच गया है और एक स्कूल में उसके पढ़ने का प्रबन्ध हो गया है। वह तुरन्त मोतीहारी नहीं लौट सकेगा, इसके लिए उसने अपनी माँ से क्षमा माँगी।

इलाहाबाद शहर बोलचाल, रहन-सहन और शिक्षा-संस्कृति में मोतीहारी से भिन्न था। उसके मुकाबले में मोतीहारी एक बहुत पिछड़ा हुआ शहर था। लेकिन इलाहाबाद में कई उससे मित्रतापूर्वक व्यवहार करने वाले मिल गये। कालेज में पढ़ने वाले बलिया और छपरा के एक-दो युवकों से उसका परिचय हो गया। वे उसके साथ बड़ी सहानुभूति से पेश आये।

इलाहाबाद में चन्द्रकान्त पूरा-पूरा आर्यसामाजिक वातावरण में आ गया। स्कूल का वातावरण आर्यसामाजिक था ही। स्कूल के हेडमास्टर पक्के आर्यसमाजी थे। उनका सारा परिवार आर्यसमाजी था। उनके दो लड़के जिन्हें वे प्रेम से 'बड़े' और 'छोटे' कहा करते थे, आर्यकुमार सभा के सदस्य थे। बड़े चन्द्रकान्त की ही श्रेणी का विद्यार्थी था। साइंस का विद्यार्थी होने के कारण एक दूसरे हाई स्कूल में पढ़ता था। छोटे एक श्रेणी नीचे का विद्यार्थी था। वह डी. ए. वी. हाई स्कूल में ही पढ़ता था। चन्द्रकान्त बड़े और छोटे के साथ आर्यकुमार सभा के साप्ताहिक अधिवेशनों में आने-जाने लगा। वह आर्यसमाज के अधिवेशन

में भी उपस्थित होने लगा। सबसे पहले उसने सन्ध्या और हवन के मन्त्र कण्ठाग्र कर लिये। फिर कुमार सभा के पुस्तकालय से धार्मिक पुस्तकें लेकर उनका अध्ययन करने लगा। वह बहुत जल्द आर्यसमाजी रंग में रंग गया। उसके साथी उसे ब्रह्मचारी जी कहकर पुकारने लगे।

बिहार से चन्द्रकान्त का ट्रान्सफ़र-सर्टीफ़िकेट आ जाने पर उसका नाम क्लास रजिस्टर में दर्ज कर लिया गया। बिहार में वार्षिक परीक्षाएँ दिसम्बर में होती थीं। संयुक्त प्रान्त में ऐप्रिल महीने में। मुश्किल से दो महीने का समय चन्द्रकान्त के सामने था जिसमें उसे आठवें दर्जे की वार्षिक परीक्षा के लिए तैयार हो जाना था। बिहार में हाईस्कूल के चार ऊँचे दर्जों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी थी। किन्तु संयुक्त प्रान्त में सिर्फ़ दो अन्तिम दर्जों में अंग्रेज़ी के माध्यम से पढ़ाई होती थी। आठवें दर्जे तक की पढ़ाई का माध्यम हिन्दी थी। चन्द्रकान्त मोतीहारी ज़िला स्कूल में एक साल तक अंग्रेज़ी माध्यम से सब विषय पढ़ चुका था इसलिए आठवें दर्जे की अंग्रेज़ी उसे मुश्किल नहीं मालूम हुई। अन्य विषय भी उसे मुश्किल नहीं मालूम हुए। बिहार में मिडिल स्कूल में जो इतहास और भूगोल वह पढ़ चुका था वही यू० पी० में आठवें दर्जे में पढ़ाया जाता था। अगर किसी विषय से उसे घबराहट हुई तो वह संस्कृत थी। आर्यसामाजिक स्कूल होने से संस्कृत की पढ़ाई का स्तर भी उस स्कूल में कुछ ऊँचा था। मोती-हारी हाईस्कूल में एक साल तक उसे संस्कृत पढ़नी पड़ी थी। लेकिन उसमें उसकी गति नहीं थी। घबराहट में डालने वाली एक और परीक्षा उर्दू की थी, जिसमें पास होना लाज़मी था। बड़ी मुश्किल से उसने अलिफ़, बे, पे सीखे और एक प्रारम्भिक रीडर पढ़ जाने की कोशिश की। समय गुज़रते देर नहीं लगती। परीक्षा का समय नज़दीक आ गया। चन्द्रकान्त डरते-डरते

परीक्षा में बैठा। पर जब परीक्षा-फल घोषित हुआ और उसे यह मालूम हुआ कि उत्तीर्ण विद्यार्थियों में उसका स्थान तीसरा है तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह तीसरा पुरस्कार पाने का हकदार घोषित किया। स्कूल की धार्मिक परीक्षा में भी वह बैठा जिसमें प्रथम आने के उपलक्ष में उसे स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत 'सत्यार्थप्रकाश' पुरस्कार में मिला।

स्कूल की मैनेजिंग कमिटी के सेक्रेटरी के यहाँ से अपना डेरा बदलकर वह आर्यसमाज के मन्त्री जिस मकान में कई अन्य सज्जनों के साथ रहते थे, उसमें एक कमरा मिल जाने से, वहीं रहने लगा। एक वकील साहब के यहाँ से प्रतिदिन चावल-दाल सहायता के रूप में मिलने लगा, जिसे वह अपने नये डेरे के मेस में दे देता था और मेस से बना-बनाया खाना उसे मिल जाता था। कुछ महीनों के बाद उसका परिचय इलाहाबाद के डाक्टर मल्लिक से हो गया। डाक्टर मल्लिक ने इंगलैण्ड जाकर होम्यो-पैथिक डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की थी। वे एक कुशल डाक्टर होने के साथ-साथ अपनी उदारता और सज्जनता के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने चन्द्रकान्त को प्रतिदिन अपने यहाँ आकर भोजन कर जाने की सलाह दी। और जब उन्होंने अपने लिए जान्सनगंज में एक मकान खरीदा तब चन्द्रकान्त को आकर रहने के लिए तिमंज़िले पर एक कमरा दे दिया। वह डाक्टर साहब के साथ रहने लगा। इस बीच में एक आर्यसमाजी परिवार में तीन रुपये मासिक पर बच्चों को पढ़ाने का उसे एक ट्यूशन भी मिल गया। वह छोटी-सी आय उसकी छोटी-मोटी थोड़ी-सी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध हुई।

गर्मी की छुट्टी के बाद वह नवें दर्जे में पढ़ने लगा। संस्कृत में कच्चा होने के कारण वैकल्पिक विषय के तौर पर उसने ड्राइंग ले ली। उसके पास पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं। वह नोट लिख लिया

करता था और दूसरों से पुस्तकें माँगकर पढ़ लिया करता था। भूगोल में वह बहुत कच्चा था। शहरों के तथा अन्य नाम याद रखना उसे मुश्किल मालूम होता था। गणित में तो उसे शून्य या १-२ अंक ही मिलते थे। मिडिल स्कूल में जब वह पढ़ता था तब एक मौलवी साहब चक्रवर्ती का अंकगणित पढ़ाया करते थे। एक लड़के के पास उसकी कुंजी थी। मौलवी साहब घर से हल करके लाने के लिए जो सवाल दिया करते थे, लड़के उस कुंजी से नकल करके दिखा दिया करते थे। लेकिन उस तरीके से अब काम नहीं चल सकता था। गणित का पीरियड चन्द्रकान्त की परेशानी का पीरियड हुआ करता था। ज्योमेट्री के सहारे वह किसी तरह उत्तीर्णांक पा जाता था। उसमें उसे ८०-६० प्रतिशत अंक मिल जाया करते थे।

चन्द्रकान्त को पुस्तकालय में जाकर पुस्तकें पढ़ने का शौक मोतीहारी से ही था। इलाहाबाद में वह भारती भवन पुस्तकालय में जाकर पुस्तकें पढ़ने लगा। 'बड़े' और वह—दोनों ने कुछ दिन एक पुस्तकालय में प्रतिदिन जाकर पुस्तकें पढ़ने और पढ़े हुए विषयों का सारांश अपनी-अपनी बही में नोट कर लेने का काम किया। यही उसके छात्र-जीवन की रूप-रेखा थी।

इलाहाबाद गये उसे करीब दो-ढाई महीने ही हुए थे जबकि गान्धीजी ने रोलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिए देशवासियों से अपील की। उस सम्बन्ध में एक दिन उपवास के लिए नियत किया गया। चन्द्रकान्त ने भी उस दिन उपवास किया। अमृतसर के जलियांवाला बाग में हत्याकाण्ड हुआ। उसके विरुद्ध सारे देश में मातम मनाया गया। इलाहाबाद के हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर हड़ताल रखी। पंजाब के दुःख और अपमान के सामने दोनों वर्गों के लोग अपने सारे भेद-भाव भुलाकर एक जैसे हो गये।

इलाहाबाद-चौक की एक सभा में उसने पहले-पहल टण्डन जी को देखा। वे शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा पहने तथा सर पर साफा बाँधे भाषण दे रहे थे। वह सभा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक जल्से की सभा थी। उसके बाद सम्मेलन की तरफ़ से एक विद्यापीठ कायम हुआ और सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाने लगी। चन्द्रकान्त ३-४ दिन एक वर्ग में जाकर बैठा। लेकिन वर्ग की पढ़ाई में मन नहीं लगने से वहाँ जाना बन्द कर दिया। उसे धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों के पढ़ने में विशेष रुचि थी। ऐसी पुस्तकें उसे आर्यसमाज के पुस्तकालय में मिल जाती थीं। भारतीभवन पुस्तकालय में वह राष्ट्रीय और सामान्य पुस्तकें पढ़ा करता था।

उन दिनों आर्यसमाज धार्मिक और समाज-सुधार की दृष्टि से युवकों के लिए एक जबरदस्त आकर्षण का संगठन था। स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा ने आर्य-धर्म और आर्य-सभ्यता को समझाने के लिए युवकों को एक नयी दृष्टि प्रदान की। चन्द्रकान्त उन असंख्यक युवकों में से एक था जिस पर स्वामी जी की शिक्षाओं का गहरा असर पड़ा।

उसी साल इलाहाबाद में संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि की सभा का वार्षिकोत्सव हुआ। समाज के अनेक सदस्यों ने बहुत उत्साह से कई सप्ताह तक दिन-रात काम करके उसकी तैयारी के लिए दौड़-धूप की। हिवेट रोड पर एक बड़ा शामियाना खड़ा किया गया और यज्ञमंडप बनाया गया। बाहर से आने वाले प्रतिनिधियों के निवास का प्रबन्ध डी. ए. वी. हाई स्कूल में किया गया था। 'बड़े' और चन्द्रकान्त को रात में प्रतिनिधियों के डेरे में पहरा देने की ड्यूटी दी गई। दोनों मित्र दिन में सभा में जाकर व्याख्यान सुनते और रात में आर्य सिद्धान्तों पर बहस करके जगे रहने की कोशिश करते।

उस उत्सव में आर्यसमाज के कई सुप्रसिद्ध विद्वान, सन्यासी, वक्ता और भजनीक पधारे थे। किन्तु दो महानुभावों के नाम से लोग बड़ी संख्या में सभा-मण्डप में उपस्थित हुए। एक थे स्वामी श्रद्धानन्द महाराज और दूसरे थे डाक्टर केशवदेव शास्त्री, एम. डी.। शास्त्री जी हाल ही में अमेरिका से लौटे थे। सभा-मण्डप में उनका और उनकी अमेरिकन पत्नी सुवीरा देवी के भाषण हुए। इस अवसर पर 'डाक्टर केशवदेव शास्त्री' नाम की एक पुस्तक मण्डप के बाहर बिक रही थी। चन्द्रकान्त ने उसकी एक प्रति खरीद ली। डेरे पर जाकर बड़ी दिलचस्पी के साथ उसे आद्योपान्त पढ़ डाला। उसमें डाक्टर साहब का जीवन, अमेरिका में उनकी शिक्षा तथा वैदिक धर्म प्रचार का संक्षिप्त विवरण दिया हुआ था। चन्द्रकान्त स्वामी सत्यदेव की 'अमेरिका भ्रमण', 'अमेरिका दिग्दर्शन' आदि पुस्तकें पहले ही पढ़ चुका था। लेकिन डाक्टर केशवदेव का भाषण सुनने और उनका जीवन-चरित्र पढ़ने के बाद उसके मन में एक नया विचार उठा। वह यह था कि वह भी अमेरिका जाकर विद्या-सम्पादन करके वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार करेगा। उसने स्वामी सत्यदेव को एक पत्र लिखकर उनकी सलाह माँगी। स्वामी जी ने केशवदेव शास्त्री से, जो हाल ही में अमेरिका से लौटे थे, सम्पर्क स्थापित करके मार्ग-दर्शन के लिए लिखने की सलाह दी। लेकिन चन्द्रकान्त ने शास्त्री जी को कोई पत्र नहीं लिखा। उसके स्कूल में एक और विद्यार्थी था जिसे लोग वर्मा कहकर पुकारा करते थे। उसके मन में भी अमेरिका जाने की इच्छा पैदा हुई। अब उस विचार के एक से दो हो गये। दोनों इस सम्बन्ध में चर्चा करने लगे और एक साथ अमेरिका जाने की तरकीबें सोचने लगे। उन्होंने तय किया कि वे पहले कलकत्ता जायेंगे और फिर जहाज़ पर नौकरी करके रंगून होते हुए प्रशान्त महासागर

पार कर सानफ्रान्सिसको पहुँच जायेंगे। उस स्कूल में एक पण्डित जी थे। उन्हीं को हेडमास्टर साहब ने चन्द्रकान्त का गार्जियन होने की रसम पूरी करने का काम सौंपा था। पण्डित जी को जब चन्द्रकान्त के नये विचार की खबर लगी तब उन्होंने एक दिन बड़ी दिलचस्पी दिखाते हुए चन्द्रकान्त से कहा, अगर कभी ऐसी स्थिति आ जाय कि खाने को कुछ न मिले तब घबड़ाना नहीं। पेड़ के पत्ते चबाकर पेट भर लिया करना। उससे रक्षा हो जायेगी।

अमेरिका जाने का विचार चन्द्रकान्त के मन में उठना क्या था मानो उसके सिर पर भूत का सवार हो जाना था। उसकी सारी चिन्ता और दिलचस्पी सिमटकर उसी धुन पर केन्द्रित हो गई। अमेरिका के सम्बन्ध में अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए वह तरह-तरह की किताबें पढ़ने लगा। साथ ही साथ वैदिक धर्म पर अंग्रेज़ी में लिखी जो पुस्तकें उसे मिल जातीं उन्हें पढ़ने में अपना सारा समय लगाने लगा। वर्मा और उसने मिलकर कार्यक्रम बनाया कि स्कूल बन्द होने के बाद दोनों अपने-अपने घर जायेंगे और घर वालों से भेंट-मुलाकात कर लेने के बाद फिर किसी एक स्थान पर मिलेंगे और वहाँ से सहयात्री होकर आगे की यात्रा शुरू करेंगे। स्कूल बन्द होने तक रुकने का निश्चय वर्मा के ही कारण हुआ। वह स्कूल की फाइनल क्लास में पढ़ता था और वार्षिक परीक्षा छोड़ना नहीं चाहता था। पर चन्द्रकान्त का हाल उसके ठीक उल्टा था। उसे अपनी वार्षिक परीक्षा की परवाह नहीं थी। वह पहले से भी अधिक मनोयोग के साथ पढ़ने में समय लगाता पर परीक्षा की तैयारी के लिए नहीं। उसका मन और दिमाग़ दूसरी ही दुनिया में विचर रहे थे। वह अमेरिका की दुनिया थी। आखिर परीक्षा के दिन भी नज़दीक आ गये। वह आखिर तक स्कूल जाने की रसम

पूरी करता रहा और प्रत्येक विषय की परीक्षा में बैठा भी।

इलाहाबाद से रवाना होने का दिन आ गया। एक दिन आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन के बाद हेडमास्टर साहब की अध्यक्षता में चन्द्रकान्त को विदाई दी गई और शुभचिन्तकों की तरफ़ से शुभकामनायें प्रकट की गईं। समाज के मन्त्री ने उसे धर्म सम्बन्धी कई अंग्रेज़ी में छपी पुस्तकें भेंट में दीं। चन्द्रकान्त एम. ए. तक पढ़ने की इच्छा लेकर इलाहबाद आया था। अब उस इच्छा को अमेरिका जाकर पूरा करने का विचार लेकर वह इलाहाबाद से विदा हुआ।

जब वह मोतीहारी अपने घर पहुँचा तब रात के दो बजे का समय था। उसने घर का दरवाज़ा खटखटाया और माँ को पुकारा। माँ ने आकर दरवाज़ा खोला और यह कहते हुए कि "जा जा क्यों आया है? एक हफ़्ते में ही लौटने वाला था न?" उसे गले लगा लिया। माँ और बेटे की आँखों में आनन्दाश्रु उमड़ आये। माँ ने सूर्यकान्त और सुनन्दा को जगाया। दोनों भैया-भैया कहकर बातें करने लगे। उनके मुंह से भैया शब्द सुन कर उसका हृदय आनन्द से भर गया। सूर्यकान्त ने सुनाया कि मैं दिन में तीन बार स्टेशन गया था पर हर बार निराश होकर लौटा। बाकी रात बातों में ही कटी। चन्द्रकान्त के लौटने से घर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सवेरा होने पर अड़ोस-पड़ोस की औरतों ने सुना तो आँगन में आकर जमा हो गईं। किसी-किसी ने चन्द्रकान्त को इसलिए कोसा कि वह माँ और भाई-बहन को छोड़कर क्यों चला गया? पर सब के मुँह पर ख़ुशी छाई हुई थी। मानो उन्हीं का लड़का बहुत दिनों के बाद दूर देश से लौटा हो।

दो-चार दिन पुराने साथियों से मिलने-जुलने में कटे। उसके बाद चन्द्रकान्त वर्मा के पत्र की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन उसने माँ को अपने नये विचार सुनाये। माँ ने जब उसकी बातें

माँ और बेटे की आँखों में आनन्दाश्रु उमड़ आये। —पृ० ३६.

सुनीं तब वह हक्का-बक्का हो गईं। कुछ क्षण तक उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला। तब उन्होंने कहा, "यह विचार तुम्हारे मन में उठा कैसे ? क्या तुम भूल गये हो कि तुम्हारे पिताजी नहीं हैं। घर में छोटे भाई-बहन हैं। घर का हाल तुम्हें मालूम नहीं है क्या ?"

माँ के इन चन्द शब्दों ने चन्द्रकान्त को एक नई दुनिया में ला खड़ा किया जो अधिक ठोस थी, अधिक यथार्थ थी, किन्तु जो उसकी आँखों से ओझल हो गई थी। इलाहाबाद में एक निर्धन विद्यार्थी का जीवन बिताते हुए भी उसने ऊँचे विचारों की हवा में साँस ली थी, सुन्दर कल्पनाओं और आकांक्षाओं की दुनिया में विचरण किया था। वह भूल-सा गया था कि उसकी दुखिया माँ इस आशा में जी रही है कि मेरा लड़का जल्दी लौटकर आयेगा और मेरे दुख का भार कम करेगा। चन्द्रकान्त सिर्फ़ अपने को ही केन्द्र-बिन्दु मानकर अभी तक सोचा करता था, जीवन की योजनाएँ बना रहा था और आगे बढ़ने का हौसला रखता था। आज माँ की बातें सुनकर वह स्तम्भित हो गया मानो जीवन-पथ पर निर्बाध रूप में दौड़ते हुए एकाएक पर्वत से टकरा गया हो। वह बिना कुछ बोले उठ खड़ा हुआ और घर से बाहर निकल गया। उसे एकान्त की आवश्यकता थी। उसे बहुत कुछ सोचना था। नये सिरे से सोचना था। उसके मन में यह प्रश्न बार-बार उठ रहा था कि क्या अब तक की उसकी सारी मनोकामनाएँ और योजनाएँ गलत थीं। वह घूमता हुआ दूर निकल गया। उसका मन जो अब तक केवल अपने बारे में सोचकर सन्तुष्ट था एक ज़बर्दस्त धक्का खाकर अपने घर वालों के बारे में सोचने पर बाध्य हो गया। उसे लगा कि घर वालों के प्रति उसके कर्तव्य का तक़ाज़ा है कि वह जल्दी कुछ कमाने, कुछ पैसा पैदा करने लायक बन जाय। घर में माँ इसी

आशा पर हिम्मत बाँधे गृहस्थी की गाड़ी चला रही थीं कि उनका लड़का उनकी मदद के लिए जल्दी ही आ पहुँचेगा।

चन्द्रकान्त की आँखों के सामने इलाहाबाद का सारा जीवन चित्रवत् घूम गया। उसका आर्यसमाजी बनना, वैदिक धर्म प्रचारक बनने का हौसला करना, अमेरिका जाने के मनसूबे बाँधना, समाज-मन्दिर में उसकी बिदाई और शुभचिन्तकों की शुभकामनाएँ—ये सारी बातें उसे याद आईं। अब उसे लगने लगा कि वह आकाश में उड़ रहा था। माँ की बातों ने उसे ज़मीन पर लाकर खड़ा कर दिया। उस ज़मीन पर जहाँ उसे रोटी का सवाल हल करने की बात पहले सोचनी है, अपनी रोटी का ही नहीं, छोटे भाई-बहन, चाचा और माँ की रोटी का भी। अमेरिका जाने का ख़याल कैसा प्रेरणापूर्ण था, कैसा लुभावना था! लेकिन उसके लिए पागलपन ही तो था। वह कैसा बेवक़ूफ़ साबित हुआ। कई घण्टों के बाद जब वह घर लौटा तब वह बहुत उदास था, निराश था। आगे क्या करना चाहिए, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था।

माँ ने पूछा, "कहाँ गये थे ?

"घूमने।"

"कुछ खाओगे ?"

"हाँ। क्या है ?"

माँ ने मक्के और चने का भूँजा भुँजवा मँगाया था। एक थाली में नमक और हरी मिर्च के साथ लाकर उसके सामने रख दिया। चन्द्रकान्त चुपचाप खाने लगा। कितने दिनों के बाद उसे भूँजा खाने को मिला था। माँ के प्यार-भरे हाथों से पाकर वह बड़े आनन्द के साथ उसे खा रहा था पर उसका मन विचार-जगत में आकुल-व्याकुल हो रहा था। 'अब क्या करना चाहिए ?' यह ख़याल बार-बार उठकर तीर की तरह उसे बेध रहा था। कोई

जवाब नहीं सूझता था। इस डेढ़ साल में उसने क्या किया? पैसा कमाने की कितनी योग्यता प्राप्त की? मोतीहारी से जिस दिन वह निकला था उसमें और आज में क्या फर्क है? वह अपनी माँ की तरफ़ से ये प्रश्न अपने से बार-बार पूछने लगा।

माँ ने कोई चर्चा नहीं उठाई। मानो दोनों के बीच चन्द घण्टे पहले कोई बात हुई ही नहीं। लेकिन चन्द्रकान्त को अनुभव होने लगा कि उसकी बातचीत के फलस्वरूप माँ का हृदय बोझिल हो गया है। माँ के दुःख और निराशा की कल्पना करके वह भीतर-ही-भीतर और भी पीड़ित होने लगा। फिर इलाहाबाद जाकर पढ़ाई में लग जाने का विचार मन में उठता लेकिन वह तुरन्त सोचता— 'उन्हीं लोगों के बीच फिर कौन मुँह लेकर जाऊँ? ना इलाहाबाद फिर नहीं जा सकता।' लेकिन कहीं जाकर उसे पढ़ना तो था ही। जितना वह पढ़ा है उससे क्या होगा? कहीं कोई नौकरी भी तो नहीं मिलेगी। वह कलकत्ता जाकर पढ़ने की बात सोचने लगा।

वर्मा ने पत्र भेजने का वादा किया था। सो तो नहीं आया। लेकिन एक दिन 'बड़े' का एक कार्ड मिला। उसमें लिखा था कि "तुम किसी भी विषय में उत्तीर्ण नहीं हुए हो।" यह था साल भर की उसकी पढ़ाई का परिणाम। किन्तु इससे उसे आश्चर्य नहीं हुआ। इसके लिए वह तैयार था। वह जानता था कि उसने परीक्षा की तैयारी करनी छोड़ दी थी। वह जानता था कि वह परीक्षा में नाममात्र के लिए ही बैठा था। फिर भी उस कार्ड को पाकर उसे अपने ऊपर गुस्सा आया। 'वह उत्तीर्ण नहीं हुआ है, अपने बारे में ऐसा कहा जाना उसे शर्मनाक मालूम हुआ।

'बड़े' का पत्र पाकर उसके नाम एक पत्र भेजने का ख़याल उसके मन में पैदा हुआ। उसने उत्तर में अपने घर की स्थिति

की बात लिखी और यह भी लिखा कि अब अमेरिका जाने की बात सोचने के बदले फिर पढ़ाई में लग जाने की इच्छा है; पर आगे की पढ़ाई के लिए कहाँ जाऊँ समझ में नहीं आता। उसने डाक्टर मल्लिक को भी सब हाल लिख भेजा। चन्द दिनों के बाद बड़े का दूसरा कार्ड मिला। उसमें लिखा था—'पूज्य पिता जी की राय है कि तुम फिर इलाहाबाद आ जाओ और यहीं स्कूल में भर्ती हो जाओ।' डाक्टर मल्लिक ने भी फिर इलाहाबाद लौट आने को लिखा। इन दोनों के पत्र पाकर चन्द्रकान्त की आँखों में आँसू आ गये। उनके प्रति उसका हृदय कृतज्ञता से भर आया। उसने बड़ी प्रसन्नता से माँ को सुनाया कि वह पढ़ने के लिए फिर इलाहाबाद जायगा। माँ ने अपने पुत्र के मुँह से फिर इलाहाबाद जाकर पढ़ने की बात जब सुनी तब उनके हृदय का बोझ हल्का होगया और प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद के साथ उसे विदा किया।

× × ×

चन्द्रकान्त इलाहाबाद जाकर फिर डी. ए. वी. हाई स्कूल में भर्ती हो गया। उसी क्लास में, जिसमें वह एक साल तक पढ़ चुका था, जाने लगा, और आगे की बेंच पर की उसी जगह पर, जहाँ वह बैठा करता था, बैठने लगा। पुराने साथियों में एक-दो को छोड़कर बाकी सब उत्तीर्ण होकर ऊपर के दर्जे में चले गये थे। निचले क्लास से उत्तीर्ण होकर आये हुए छात्र अब उसके नये सहपाठी बने। चन्द्रकान्त अनुत्तीर्णता की शर्म मिटाने के लिए मनोयोगपूर्वक पढ़कर वर्ग की परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करने की कोशिश करने लगा। एक दिन हेडमास्टर साहब ने उसे अपने आफ़िस में बुलाकर कहा, "सात-आठ मील जमुना पार एक गाँव में समाज का एक स्कूल है। उसका हेडमास्टर छुट्टी पर गया हुआ है। क्या तुम वहाँ जाकर एक सप्ताह तक स्कूल का कार्य

सँभाल सकते हो ?" चन्द्रकान्त ने उत्तर दिया कि "आपकी जैसी आज्ञा होगी करूँगा।" दूसरे दिन वह उस गाँव के लिए रवाना हो गया। उस स्कूल का नाम भी डी. ए. वी. स्कूल था। वह अभी मिडिल नहीं हुआ था। उसमें दो-तीन मास्टर थे। वे सब उम्र में उससे बड़े थे। एक मध्यवयस्क थे। विद्यार्थियों में ऊँचे दर्जे के दो-मीन विद्यार्थी कद और उम्र में भी उससे बड़े थे। चन्द्रकान्त ने कहीं पढ़ा था—

"A wise man knows his folly but shows it not; and a fool shows his folly but knows it not."

('एक बुद्धिमान अपनी मूर्खता जानता है पर वह उसे प्रकट नहीं करता, जबकि एक मूर्ख अपनी मूर्खता प्रकट करता है लेकिन वह उसे जानता नहीं।') उस स्कूल में चन्द्रकान्त इस कहावत को याद रखकर काम करने लगा। अर्थात् अपने अज्ञान और खामियों को मितभापिता और गम्भीरता का सहारा लेकर प्रकट होने से रोकने की कोशिश करके उसने अपने दायित्व को निभाया और जब वह वहाँ से लौटा तो वह बहुत कुछ सीखकर लौटा। साथ ही उसके मन में पहले-पहल यह संदेह उठा कि क्या उसे आगे चलकर अध्यापकी ही करनी होगी ?

× × ×

अमृतसर के जलियानवाला बाग़ में सरकार की तरफ़ से एक साल पहले जो हत्याकाण्ड हुआ था उसके सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रकाशित हो जाने पर देश में एक तहलका मच गया। गान्धी जी ने सरकार की नीति से क्षुब्ध होकर देशवासियों को सरकार से असहयोग करने की सलाह दी। अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने अपने कलकत्ता के अधिवेशन में गान्धी जी का असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। देश के राजनीतिक वातावरण में नवजीवन का संचार हो गया। असहयोग के कार्य-

क्रम में विद्यार्थियों द्वारा स्कूल-कालेजों का बहिष्कार भी शामिल था। उस आन्दोलन की आँधी से अपनी-अपनी संस्था को बचाने के लिए प्रत्येक संस्था का अधिकारी वर्ग प्रयत्नशील हो गया। दयानन्द एँग्लो-वैदिक हाई स्कूल जिसमें चन्द्रकान्त पढ़ता था, एक धार्मिक संस्था द्वारा संचालित विद्यालय था। वहाँ किसी तरह की राजनीति की चर्चा सुनने को नहीं मिलती थी। उस स्कूल में विद्यार्थियों के प्रिय एक अध्यापक थे। वे गोखले की सर्वेण्ट्स ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी के सदस्य थे और एक सुवक्ता थे। गान्धी जी को मिस्टर गन्धी कहा करते थे। उन्होंने स्कूल में एक व्याख्यानमाला चलाकर विद्यार्थियों को यह समझाने की कोशिश की कि मिस्टर गन्धी का असहयोग आन्दोलन एक भयंकर राजनीतिक भूल है। अन्य संस्थाओं में भी विद्यार्थियों को 'ठीक' रास्ते पर रखने के उपाय काम में लाये जाने लगे। जब कोई स्कूल का विद्यार्थी स्कूल या कॉलिज छोड़ देता तब अखबारों में उसका नाम निकल जाता था। कई स्कूलों में पिकेटिंग भी शुरू हो गई।

पण्डित मदनमोहन मालवीय का ४ अक्टूबर; १९२०, को इलाहाबाद के होमरूल लीग के मैदान में भाषण हुआ। पण्डित जी ने मर्मस्पर्शी शब्दों में पंजाब-हत्याकाण्ड का वर्णन करके श्रोताओं का हृदय द्रवित कर दिया। किन्तु भाषण के अन्त में कहा कि असहयोग आन्दोलन देश के लिए हितकारी नहीं होगा। २४ अक्टूबर को उसी मैदान में पण्डित मोतीलाल नेहरू का भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि मुल्क की इज्ज़त का सवाल उठ खड़ा हुआ है। मुल्क की इज्ज़त रखने और मुल्क को आज़ाद करने का एक ही रास्ता है और वह है गान्धी जी का असहयोग आन्दोलन। चन्द्रकान्त गान्धी जी के असहयोग आन्दोलन की ओर खिंचने लगा। पर माँ के ये शब्द कि "घर का हाल तुम्हें

मालूम नहीं है क्या" बार-बार उसे अपने प्रथम कर्तव्य की याद दिलाने लगे। उसने अपने मन में निश्चय किया कि सबसे पहले वह अपने स्कूल की पढ़ाई पूरी करेगा।

× × ×

मिर्ज़ापुर में अखिल भारतीय आर्यकुमार सम्मेलन का वार्षिक जल्सा हुआ। चन्द्रकान्त एक प्रतिनिधि के तौर पर उसमें शामिल हुआ और सम्मेलन के सब कार्यक्रम में भाग लिया। खेल स्पर्धा में उसे पुरस्कार भी मिला।

सम्मेलन का कार्य जोशोख़रोश के साथ हुआ। प्रभावशाली वक्तृताएँ, प्रस्ताव, अनुमोदन, समर्थन, संशोधन, विरोध, मत-गणना, कास्टिंग वोट आदि सब बातों का अच्छा प्रदर्शन हुआ। सब प्रतिनिधि प्रसन्न थे। स्थानीय एक आर्यसमाजी सेठ ने दिल खोलकर सबों का आतिथ्य किया था।

सम्मेलन में जो अनेक प्रस्ताव पास हुए उनमें सबसे अधिक व्यावहारिक प्रस्ताव जो था वह यह था कि प्रत्येक आर्य-कुमार को अपने पास वीरता की निशानी के तौर पर एक लाठी रखनी चाहिए। बस क्या था ? अधिवेशन समाप्त होने पर प्रतिनिधियों की टोलियाँ लाठी बेचने वालों की दुकानों पर पहुँच गईं। मिर्ज़ापुर लाठी के लिए प्रसिद्ध है ही। काफ़ी संख्या में लाठियाँ बिक जाने से दुकान वाले बहुत ख़ुश हुए। और सेठ जी का गुणगान करने लगे। शहर भर में लगे बड़े-बड़े पोस्टरों के कारण सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के तौर पर सेठ जी का नाम सब की जबान पर था। अनेक लोगों का ख्याल था कि सेठ जी के कारण ही सम्मेलन मिर्ज़ापुर में हुआ है। चन्द्रकान्त भी एक लाठी खरीदकर इलाहाबाद लौटा। अपने कमरे से बाहर जाते समय एक वीर आर्यकुमार की निशानी उस लाठी को लेकर निकलने का उसने नियम-सा बना लिया।

असहयोग आन्दोलन का नारा दिनोंदिन बुलन्द होता गया। १६ नवम्बर को मौलाना मोहम्मद अली तर्कमवालात यानी असहयोग का पैगाम लेकर इलाहाबाद पहुँचे। अपनी जोशीली लम्बी तकरीर में इलाहाबाद के नौजवानों को मुल्क की ख़ातिर कुछ करने के लिए ललकारते हुए कहा—

"खेतों को दे दो पानी अब बह रही है गंगा,
कुछ कर लो नौजवानो चढ़ती जवानियाँ है।"

१८ नवम्बर को उसी होमरूल लीग के मैदान में इलाहाबाद के सब स्कूल-कॉलिजों के विद्यार्थियों की एक बृहद् सभा इस विषय पर विचार करने के लिए हुई कि असहयोग आन्दोलन के प्रति इलाहाबाद के विद्यार्थियों का क्या जवाब होगा? सभा में कई जोशीले भाषण हुए और देश-भक्ति और स्वतन्त्रता की लड़ाई के नाम पर विद्यार्थियों से ज़ोरदार अपील की गई कि वे स्कूल-कॉलिजों का बहिष्कार करें। चन्द्रकान्त सभा की भीड़ में से उठा और मंच की तरफ़ आगे बढ़ा। उसके हाथ में एक वीर आर्य-कुमार की निशानी वही मिर्ज़ापुरी लाठी थी। एक दुबले-पतले नवयुवक को हाथ में लाठी लिये मंच पर खड़ा देखकर सामने बैठे विद्यार्थियों ने क़हक़हे और तालियों से उसका स्वागत किया। वातावरण हलका हो गया। चन्द्रकान्त के दिल की कँपकँपी दूर हो गई। उसने बुलन्द आवाज़ में बोलना शुरू किया।

"मेरे प्यारे भाइयो, हँसलो, ख़ूब हँसलो और तब आज के मसले पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके अपना निर्णय दो।"

उसने एक सुझाव रखा कि प्रस्ताव में छोटी उम्र के बच्चों को स्कूल छोड़ने को न कहा जाय। लेकिन उस जोशोख़रोश के साथ होने वाली सभा में उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ साबित हुई। सब विद्यार्थियों द्वारा स्कूल-कॉलिजों का पूर्ण बहिष्कार करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास होगया।

हाँ, सिर्फ़ एक का हाथ प्रस्ताव के पक्ष में नहीं उठा। वह चन्द्रकान्त का हाथ था। महात्मा गान्धी की जय, काँग्रेस की जय, और वन्दे मातरम् के नारों से आकाशमण्डल गूँज उठा। सभा समाप्त हो गई। सब विद्यार्थी जोश और जांनिसारी का भाव अपने दिलों में लिये अपने-अपने निवास-स्थान को चल दिये। चन्द्रकान्त भी अपने कमरे में दाखिल हुआ। पर उसके दिल में न किसी तरह का जोश था और न कोई उल्लास था।

वह अगले दिन स्कूल नहीं गया। कमरे में पड़े-पड़े सोचता रहा। दूसरे दिन भी नहीं गया। तीसरे दिन भी नहीं गया। वह एक असहयोगी विद्यार्थी मान लिया गया। डी. ए. वी. हाई स्कूल के प्रथम असहयोगी विद्यार्थी के तौर पर उसका नाम निकल गया। उसने उसका खण्डन नहीं किया। उसे आश्चर्य हुआ कि वह एकाएक असहयोगी विद्यार्थियों की सूची में कैसे आगया। लेकिन इस नई स्थिति से उसके हृदय में एक गौरव का भाव उदय हुआ।

अब वह इस चिन्ता में पड़ गया कि जल्दी ही देश-सेवा के किसी काम में लग जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न रायें दीं। आर्यसमाज के मन्त्री ने कहा कि संगीत रत्न प्रकाश के कुछ भजन कण्ठस्थ करलो तो समाज की प्रचार-सभाओं में भजनीक का काम कर सकते हो।

चन्द्रकान्त अनिश्चित अवस्था में ही था कि उसे किसी मित्र ने सूचित किया कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष असहयोगी विद्यार्थियों का संगठन कर रहे हैं। चन्द्रकान्त उनसे जाकर मिला। अध्यक्ष जी ने दो-चार बातों के बाद पूछा,

"हिन्दी प्रचार का काम करने मद्रास जा सकते हो?"

"जी, जा सकता हूँ।"

"कब रवाना हो सकते हो?"

"जब आपकी आज्ञा होगी।"

अध्यक्ष जी ने उसे अंग्रेजी में एक पत्र लिखकर दिखाने को कहा। चन्द्रकान्त ने पत्र लिखकर उनके सामने रख दिया। उन्होंने उसे पढ़कर कहा,

"परसों मद्रास रवाना होने के लिए तैयार हो जाओ।"

अगले दिन नवम्बर को गान्धी जी अपने दौरे के सिलसिले में इलाहाबाद पधारे। पहले मौलाना शौकत अली का भाषण हुआ। उस तूफ़ानी दौरे में बोलते-बोलते उनका गला बैठ गया था। मुश्किल से दो-चार शब्द बोल सके। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद भी बोले। अन्त में गान्धी जी उठे। पहले हाथ उठाकर जनता को शान्त हो जाने का संकेत किया। चारों तरफ़ शान्ति छा गई। तब उनका भाषण शुरू हुआ। उसमें कोई उत्तेजना पैदा करने वाली बात नहीं थी। उन्होंने सरल शब्दों में समझा दिया कि ब्रिटिश सरकार से असहयोग करने का निश्चय कॉंग्रेस ने क्यों किया है। उन्होंने असहयोग की व्याख्या करते हुए कहा कि अहिंसात्मक असहयोग जनता का एक अमोघ अस्त्र है। इसके द्वारा बड़ी से बड़ी ताकतवर सरकार को भी झुकाया जा सकता है। गान्धी जी का भाषण क्या था युगपुरुष की वाणी थी, गुरुमन्त्र था। लोगों ने उसे श्रद्धा से सुना और शान्ति के साथ सभा विसर्जित हुई। चन्द्रकान्त पूर्णतः चिन्तामुक्त होकर सभा से लौटा। पढ़ाई छोड़कर वह कोई बड़ी भूल तो नहीं कर रहा है, इस संदेह से वह भीतर ही भीतर विकल था। गान्धी जी का भाषण सुनने के बाद उसका वह सन्देह दूर हो गया। उसने समझ लिया कि जीवन की सफलता के लिए स्कूल-कॉलेज की शिक्षा ही सब कुछ नहीं है। एकाएक मद्रास जाने का अवसर पा जाने से वह चकित था। मद्रास, जिसे कुछ लोगों को उसने मंदराज कहते सुना था, दक्षिण भारत में है। उधर ही

रामेश्वरम् और कन्याकुमारी भी है। इससे अधिक उसे मद्रास के बारे में कुछ मालूम नहीं था। वहाँ जाकर उसे हिन्दी सिखाने का काम करना होगा। अब उसे साफ़ मालूम होने लगा कि उसे अपने जीवन में अध्यापिकी ही करनी होगी।

इलाहाबाद से जिस दिन उसे रवाना होना था उसी दिन स्वर्गीय लोकमान्य तिलक की भस्म त्रिवेणी में प्रवाहित की जाने वाली थी। उस सम्बन्ध में नगर में एक बड़ा जुलूस निकला। ऐसा लगता था कि सारा नगर त्रिवेणी की ओर जा रहा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन जिसकी तरफ़ से उसे, मद्रास भेजने का निश्चय हुआ था, बन्द था। इसलिए मार्ग-व्यय के लिए उस दिन रुपये नहीं मिले। चन्द्रकान्त भी जुलूस में शामिल होकर त्रिवेणी गया और वहाँ एक बड़ी सभा में पण्डित मोतीलाल नेहरू का भाषण सुना। पण्डित जी ने लोकमान्य तिलक की स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए देश के लिए की गई उनकी महान् सेवाओं का वर्णन किया और देशवासियों को उनके चरण-चिन्हों पर चलने का उद्बोधन दिया।

दूसरे दिन जब चन्द्रकान्त सम्मेलन-कार्यालय में पहुँचा तो वहाँ अपने पुराने मित्र वर्मा को बैठा देखा। यह वही वर्मा थे जो अमेरिका की यात्रा में उसके सहयात्री होने वाले थे। वह अब असहयोगी विद्यार्थियों की सूची में आ गये थे और हिन्दी के प्रचारार्थ मद्रास के लिए रवाना होने वाले थे। दोनों इस तरह मिलकर और देश की सेवा में सहयात्री और सहयोगी होने का अवसर पाकर बहुत प्रसन्न हुए। सम्मेलन के मन्त्री श्री टण्डन जी का परिचय-पत्र प्राप्त कर और कार्यालय से मार्ग-व्यय के रुपये लेकर दोनों ने प्रयागराज को प्रणाम किया और दक्षिणापथ के लिए प्रयाण किया। चन्द्रकान्त के मन में यात्रा का उल्लास था तो हृदय में एक टीस भी थी। वह इलाहाबाद आने

के अपने सारे अरमान समेटकर उसे छोड़ रहा था। लेकिन 'मद्रास में हिन्दी प्रचार'—यह वाक्य उसके हृदय में संगीत की तरह गूँजने लगा और वह आगे की बातें सोचने लगा।

३

उत्तर और दक्षिण

वर्मा जी के पास दो बड़े ट्रंक, एक बिस्तरा और दो-तीन अन्य छोटे-मोटे सामान थे। चन्द्रकान्त के पास एक बिस्तर और लकड़ी का एक छोटा-सा बक्सा था। वह बक्सा उसके बालमित्र सुरेश ने भेंट में दिया था। उसी ने उसे बनाया था। दस्तकारी के कामों में उसे बड़ी दिलचस्पी थी। उस पर रंगीन कपड़ा साटा हुआ था। देखने में वह एक सुन्दर अटैची-सा लगता था। बिस्तर के बण्डल में चन्द्रकान्त के पहनने के एक-दो कपड़े थे और बक्स में उसकी कुछ पुस्तकें थीं। बस इतनी ही चीज़ों का वह मालिक था।

दोनों मुगलसराय और गोमो होकर खड़गपुर जंकशन पहुँचे। वहाँ उन्हें मद्रास जाने वाली गाड़ी, जो कलकत्ता से रवाना होती है, पकड़नी थी। प्लेटफॉर्म पर उस गाड़ी में सवार होने वाले तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों की खचाखच भीड़ देखकर वर्मा ने अतिरिक्त चार्ज देकर दोनों के लिए ड्योढ़े दर्जे का टिकट बनवा लिया। चन्द्रकान्त वर्मा का सामान रेल के डिब्बे में चढ़ाने में कुली की मदद करने में इतना व्यस्त हो गया कि उसे अपने सामान की सुधि ही न रही। आख़िर में डिब्बे में प्रवेश करने वाले वर्मा खाली हाथ ही डिब्बे में घुसे। गाड़ी चल दी। चन्द्रकान्त का बिस्तर प्लेटफॉर्म पर ही भीड़ के धक्कमधक्के में छूट गया। वर्मा अपना अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए चन्द्रकान्त को तसल्ली देने लगे।

गाड़ी जैसे-जैसे दक्षिण की तरफ़ बढ़ती गई डिब्बे में और

नये स्टेशनों पर नई वेष-भूषा के लोग दिखाई देने लगे। मर्द-औरत जो अधिकतर गाँव के थे, मुँह में मोटे-मोटे चुरट दबाये डिब्बों में चढ़ने लगे। उस दम घुटाने वाले धुएँ से गाड़ी भर गई। उनकी भाषा हिन्दी से भिन्न थी जिसका कोई शब्द समझ में नहीं आता था। अे वण्डी (महाशय) शब्द का वे अपनी बात-चीत में बार-बार प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ अपने सर पर आँचल डालकर मुँह ढकने वाली नहीं थीं। वे पुरुषों से बातें करती जाती थीं। स्टेशनों पर पूड़ी-तरकारी और मिठाई के बदले नई किस्म की चीजें बिकती नजर आईं। बाद को मालूम हुआ कि उत्कल प्रान्त की सीमा पार कर गाड़ी मद्रास प्रदेश की सीमा में प्रवेश कर चुकी है। लोग जिस भाषा को बोलते हैं उसका नाम तेलुगू है। लोग चाय के बदले कॉफ़ी (कहवा) पीते हैं। और पूड़ी-तरकारी के बदले इड्ली, दोसा, उपुमा और बड़ा नाश्ते में लिया करते हैं।

तीसरे दिन दोनों मद्रास के सेण्ट्रल स्टेशन पहुँचे। ट्रेन से प्लेटफॉर्म पर उतरते ही स्टेशन के कुली दोनों को देखकर समझ गये कि वे अन्य प्रान्त के मुसाफ़िर हैं। वे उनकी मदद के लिए मक्खियों की तरह टूट पड़े। वे अपनी बोली में एक आध अंग्रेज़ी शब्द मिलाकर बोलते थे। दो कुली सारा सामान उठाकर बाहर ले गये और एक संपनीनुमा गाड़ी के पास रख दिया। उसे वे वण्डी कहते सुनाई दिये। इक्के और टमटम वहाँ नज़र नहीं आये। यह वण्डी काफ़ी हल्की होती है। इसे घोड़ा और बैल दोनों खींचते हैं। चन्द्रकान्त और वर्मा सामान रखकर उसमें बैठ गये। उसमें जो बैल जुता था वह देखने में तो छोटा और दुबला-पतला था पर गाड़ी को लेकर चार-पाँच मील लगातार दौड़ता हुआ चला गया। मद्रास में वण्डो खींचने वाले बैलों की यह विशेषता है कि वे घोड़े की तरह दौड़कर वण्डो खींच ले जाते हैं।

दोनों को मैलापुर मुहल्ले में जाना था जहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रचार-कार्यालय था। पूछताछ करते हुए वह दोनों एक मकान के सामने पहुँचे। उस मकान पर कार्यालय का नाम-पट टँगा दिखाई दिया। कार्यालय से एक सज्जन निकलकर बाहर आये और आगन्तुकों का स्वागत किया। वण्डी वाला सामान उतारकर अपने नये यात्रियों से एक का तिगुना किराया वसूल करके बिदा हुआ। स्वागत करने वाले सज्जन कार्यालय के मन्त्री थे। कद के लम्बे, शरीर हृष्ट-पुष्ट, देखने में स्वच्छ और सौम्य व्यक्तित्व वाले। उनका नाम हरिहर शर्मा था। थोड़े शब्दों में आगतों को सब ज़रूरी बातें बतलाकर अपने काम में लग गये। थोड़ी देर के बाद बाहर से घूम-घामकर एक सज्जन लौटे। उन्हें वहाँ देखकर चन्द्रकान्त को आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई। वे भी बिहार के थे। पूर्णिया में होने वाले बिहार स्टूडेण्टस कॉन्फ्रेंस के अवसर पर मोतीहारी की मण्डली से उनका परिचय हो गया था। अपने जोशीले स्वभाव के कारण सहज ही वह दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। वे भी हिन्दी प्रचार के द्वारा राष्ट्र की सेवा करने मद्रास पहुँचे थे। उनका नाम आनन्द था। जैसा नाम था वैसा ही गुण था। आनन्दी जीव थे।

दोनों अपने प्रान्त से इतनी दूर इस तरह मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। वे एक-दो दिन पहले ही वहाँ पहुँचे थे। इसलिए चन्द्रकान्त को उनके अनुभव का लाभ प्राप्त हुआ। चन्द्रकान्त ने उन्हीं के कमरे में डेरा डाला। दोनों ने पूर्णिया की मुलाक़ात के बाद के अपने-अपने अनुभव एक दूसरे को सुनाये। आनन्द ने अपनी पेटी खोली और 'स्वामी रामतीर्थाज वर्क्स' नाम की एक अंग्रेज़ी पुस्तक निकाली और उसे दिखाकर कहा, 'मैं स्वामी रामतीर्थ का अनुयायी हो गया हूँ।' चन्द्रकान्त ने अपनी छोटी पेटी से एक पुस्तक निकाली। उसका नाम था 'लाइट ऑफ़

टूथ' (स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत 'सत्यार्थप्रकाश' का अंग्रेज़ी अनुवाद) जो उसे आर्यसमाज से भेंट के रूप में मिली थी। उन ग्रन्थों से उन दोनों के विचारों का झुकाव किस ओर था यह स्पष्ट हो गया। एक अपने को अद्वैतवादी कहता था और दूसरा अपने को द्वैतवादी। अद्वैत और द्वैतवाद नये अनुयायियों के लिए वाद-विवाद का एक मनोरंजक विषय है ही। चन्द्रकान्त और आनन्द थोड़ी देर बहस कर लेने का अपना लोभ संवरण नहीं कर सके। धीरे-धीरे उनकी बातचीत ने एक शास्त्रार्थ का रूप धारण कर लिया। रात का समय था। घर के अन्य लोग लालटेन बुझाकर सोने की तैयारी में थे; पर वे दोनों उत्साह से बहस में लगे थे और एक दूसरे को परास्त करने पर तुले हुए थे। कुछ समय तक तर्क-वितर्क चलता रहा। तब एक कमरे से आवाज़ आई—'अब आप लोग विश्राम करें तो अच्छा होगा।' वह कार्यालय के व्यवस्थापक जी की आवाज़ थी। ये दोनों मित्र अपने-अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने के सन्तोष से वंचित रह गये।

दो-तीन दिन तक चन्द्रकान्त अपने निजी वेश में नहीं रहा। खड़गपुर में उसका बेडिंग खोना क्या था पहनने के कपड़ों से हाथ धोना था। नये कपड़े सिलकर दर्ज़ी से मिल जाने तक उसे वर्मा से हाफ़ पैंट और शर्ट मँगनी लेकर अपना काम चलाना पड़ा। वर्मा डीलडौल में उससे बड़े और मोटे-तगड़े थे। अतः उनके कपड़े चन्द्रकान्त के पतले-दुबले शरीर पर मानों ढोल पीटकर कह रहे थे कि मेरा मालिक कोई दूसरा है।

कार्यालय में दो-तीन और युवक भी पहुँच गये थे। मानों सबने मुहूर्त देखकर एक ही समय देश की सेवा में जुटने का निश्चय किया हो। व्यवस्थापक ने सबों के कार्य का स्थान निश्चित करके उनके जाने का कार्यक्रम बना दिया। आनन्द और वर्मा को मद्रास शहर के उत्तर आन्ध्र देश में भेजा और चन्द्रकान्त को

तमिलनाडु में।

मद्रास विभिन्न भाषाओं का प्रदेश है जहाँ के लोग हिन्दी नहीं जानते। अब तक साथ में वर्मा थे, और कार्यालय में आनन्द और अन्य हिन्दी जानने वाले मिल गये थे। अब तक का समय आनन्द से कट गया। अब मद्रास से चन्द्रकान्त अकेले टिन्नेवेली का टिकट कटाकर रवाना हुआ। उसी ज़िले के एक गाँव में जाकर उसे काम करना था। तमिल भाषा न जानने से वह लोगों से कुछ पूछताछ नहीं कर सकता था। स्टेशनों पर खाने की कोई चीज़ खरीदने पर अनुमान से चार आने की जगह अठन्नी और अठन्नी की जगह पर एक रुपया देता रहा। और खोंचे वाले जो लौटा देते सो चुपके से रख लेता था। अंग्रेज़ी जानने वाले भी डिब्बे में आते-जाते दिखाई देते थे। बीच-बीच में वह अंग्रेज़ी में बोलकर अपना काम निकाल लेता था। मदुरा स्टेशन पर डिब्बे में एक मुसलमान यात्री आया। वह भी टिन्नेवेली जाने वाला था। टूटी-फूटी हिन्दी-उर्दू या हिन्दुस्तानी जो भी कहा जाय, बोल लेता था। अपनी भाषा में बातें करने के लिए एक आदमी मिल जाने से चन्द्रकान्त को लगा कि वह उसे गले लगा ले। दोनों ख़ुशी से बातें करते हुए टिन्नेवेली पहुँच गये। ट्रेन से उतरकर टिकट देकर चन्द्रकान्त जैसे ही फाटक से बाहर निकलने लगा कि टिकट चेकर की नज़र उसके एक मात्र बक्स पर पड़ी। उसने उसे रोक लिया और सब मुसाफ़िरों के चले जाने के बाद उस बक्स को तुलवाकर ज्यादा वज़न होने के कारण अतिरिक्त चार्ज के तौर पर छः रुपये वसूल कर लिये। चन्द्र कान्त ने रुपये दे दिये पर उससे छुटकारा पाने की जल्दी में वह उसकी रसीद लेना भूल गया। बाद को उसे ख़याल आया कि वे छः रुपये तो टिकट चेकर की जेब की शोभा बने होंगे।

चन्द्रकान्त के सामने अब अगला क़दम यह था कि वह एक

वण्डी वाले से गोपाल समुद्रम् गाँव, जो कि स्टेशन से करीब ८ मील की दूरी पर था, पहुँचा देने के लिए ठीक करले। पर इससे पहले कि वह जाने के लिए वण्डी ठीक करता वह मुसलमान साथी उसे अपने साथ एक दुकान में ले गया। दुकान के नाम-पट पर वहाँ की भाषा में और अंग्रेज़ी में लिखा था 'ब्राह्मण कॉफ़ी क्लब'। वह होटल था। उसमें दो कक्ष थे। एक ब्राह्मणों के लिए रिज़र्व था और दूसरे में हरिजनों को छोड़ बाकी सब अन्य जातियों के लोग बैठकर नाश्ता कर सकते थे। मुसलमान साथी ने कहा कि आप अन्दर जाकर कुछ खा-पी लें तब तक मैं आपके लिए वण्डी ठीक कर दूँगा। चन्द्रकान्त को ब्राह्मण-कक्ष में जाकर कॉफ़ी पीने की अपेक्षा उसके साथ बाहर ही बैठकर कॉफ़ी पीना ज्यादा अच्छा लगा। उस मुस्लिम साथी ने उस क्लब में मिलने वाली बढ़िया-बढ़िया चीज़ें जैसे बोली, मसूरपाक, शक्कर पोंगल, हलवा आदि मिष्टान्न के लिए आर्डर दिया और चन्द्रकान्त से खाने के लिए आग्रह किया। लेकिन खुद अपने लिए उपुमा, बज्जी और बड़े मँगवाये। नाश्ता हो जाने पर कॉफ़ी मँगवाई गई। कॉफ़ी पी चुकने के बाद जब चन्द्रकान्त पैसे देने लगा तब उसने क्लब वाले को चन्द्रकान्त से पैसे लेने से मना कर दिया और अपनी जेब से पैसे निकालकर दे दिये। उसके बाद एक वण्डी वाले से भाड़ा तय करके उसमें चन्द्रकान्त को बैठा दिया। चन्द्रकान्त ने उसकी भलमनसाहत और दोस्ताना सलूक के लिए शुक्रिया अदा किया और रुखसत ली।

गोपाल समुद्रम् के हाईस्कूल के हेडमास्टर हरिहर अय्यर के नाम वह प्रचार-कार्यालय के व्यवस्थापक हरिहर शर्मा का पत्र लेकर आया था। वण्डी वाला सीधे स्कूल पहुँचा। हेडमास्टर अपने आफ़िस से निकलकर आये और चन्द्रकान्त को आफ़िस में ले गये। उन्होंने हिन्दी प्रचार-कार्यालय को एक हिन्दी शिक्षक

भेज देने के बारे में लिखा था। उनके पत्र-व्यवहार के फलस्वरूप ही चन्द्रकान्त वहाँ भेजा गया था। हेडमास्टर ने स्कूल के मेनेजर के एक मकान में चन्द्रकान्त के निवास का प्रबन्ध कर दिया। वह मकान गाँव के मध्य भाग में था। उसका इस्तेमाल सार्वजनिक कार्यों और अतिथियों के लिए हुआ करता था। मकान में एक बड़ा चौकोना हॉल था और उस हॉल के बाद दोमंज़िले कमरे थे। चन्द्रकान्त को ऊपर के बड़े कमरे में ठहराया गया। उसकी खिड़कियों से नीचे का हॉल दिखाई पड़ता था। पहली ही रात को चन्द्रकान्त के कानों में गाने की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। पहले वह उसका स्वप्न-सा आनन्द लेता रहा। लेकिन जब वह ध्वनि बढ़ती गई तब अपनी उत्सुकता नहीं रोक सकने के कारण वह उठ बैठा और भाँपने लगा कि गाने की आवाज़ कहाँ से आ रही है। फिर जब उठकर झाँका तो नीचे के हॉल में अनेक पुरुष गोलाई में खड़े बड़े भक्तिभाव से विभोर हो कीर्तन करते हुए दिखाई पड़े। वह खिड़की के पास अँधेरे में खड़े-खड़े तब तक उस दृश्य का आनन्द लेता रहा जब तक वह कार्यक्रम खत्म नहीं हुआ। ब्रह्म मुहूर्त में प्रतिदिन होनेवाला गाँव के लोगों का वह हरिकीर्तन था।

पौ फटते ही उस मकान की बगल में रहने वाला एक विद्यार्थी चन्द्रकान्त के पास पहुँचा और उसे गाँव के बाहर ताम्रपर्णी नदी की ओर ले गया। वहाँ गाँव के नर-नारी प्रतिदिन जाकर स्नान किया करते थे। स्त्रियाँ स्नान के बाद अपनी-अपनी लम्बी साड़ियाँ निचोड़कर शरीर में लपेट लेती हैं और कमर पर पानी का एक-एक घड़ा लिये घर की राह लेती हैं उत्तर भारत की पर्दा-पीड़ित स्त्रियों से भिन्न उस गाँव की स्त्रियों का बिना सिर पर आँचल रखे और मुँह ढके अपने घर के बाहर-भीतर जाने-आने और अपना सब काम निःसंकोच भाव से करने का दृश्य

चन्द्रकान्त को अच्छा लगा। उनका साड़ी पहनने का ढंग भी भिन्न था। एक-एक साड़ी अठारह हाथ की होती है। कमर के नीचे वे उसे कच्छे की तरह बाँधती हैं और ऊपर सिर को छोड़कर सुघड़ता से सारा अंग ढक लेती हैं। सिर के जूड़े में फूल रखने का रिवाज है। सधवायें माँग में सिन्दूर लगाने के बदले ललाट पर कुंकुम् की बिन्दी लगाती हैं। सधवाओं की साड़ियाँ रंगीन होती हैं। जो विधवा होती हैं वे सफ़ेद कपड़े पहनती हैं, अपना सिर मुँड़वाकर रखती हैं और अंचल से ढके रहती हैं। कुमारी लड़कियाँ घांघरी और चोली पहनती हैं। कुछ बड़ी होने पर सलवार की तरह एक चादर चोली के ऊपर लपेटकर बाँध लेती हैं। पुरुष एक ख़ास तरह से लुंगी पहनते हैं, और कुर्ता, कमीज़ या कोट का इस्तेमाल करते हैं। विवाह के बाद ब्राह्मण लोग लुँगी के बदले धोती पहनते हैं। दक्षिण में पुरानी परिपाटी के अनुसार बड़ी-बड़ी चुटिया रखने की प्रथा है जो अग्रभाग को छोड़कर सारे सिर को ढके रहती है। इसे वे बाँधकर पीछे की ओर लटकाये रहते हैं।

उस गाँव के निर्माण में भी कुछ विशेषता थी। उसमें एक पूर्वनिश्चित योजना थी। दो प्रधान सड़कें थीं जो एक दूसरी को बीचों-बीच काटती थीं। सब मकान इन सड़कों के दोनों तरफ़ बने और एक दूसरे से सटे हुए थे। एक प्रमुख स्थान पर गाँव का मन्दिर था। गाँव की सड़कें साफ़ थीं। कहीं कचरा या गन्दगी का नामोनिशान दिखाई नहीं दिया। हर घर के सामने प्रतिदिन प्रातः गोबर-मिट्टी से लीपकर रंगोली करने या चौक पूरने का रिवाज है। घर की सफ़ाई और सजावट की दृष्टि से इसे बहुत महत्त्व दिया जाता और शुभ माना जाता है।

किसी अतिथि को भोजन कराना हो तो उत्तर भारत की तरह पुरुष खिलाने का काम नहीं करते। गृहणियाँ ही अपने हाथ

से परसती हैं। इस कार्य में उनकी सफ़ाई और दक्षता देखते ही बनती है। कॉफ़ी सब का साधारण पेय हो गई है। कोई अतिथि घर आ जाय तो कॉफ़ी पिलाने या पान खिलाने का रिवाज है। दक्षिण में पान के साथ कत्थे का इस्तेमाल नहीं किया जाता। बीड़ा बनाकर भी देने की प्रथा नहीं है। पान के पत्तों के साथ चूना और सुपारी और साथ-साथ तम्बाकू के पत्ते मेहमान के सामने रख दिये जाते हैं। वह इच्छानुसार अपने लिए बीड़ा बनाकर ले लेता है।

गोपाल समुद्रम् ब्राह्मणों का गाँव था। यज्ञोपवीत धारण करने के बाद प्रत्येक व्यक्ति नियमपूर्वक प्रातः और सायं-सन्ध्या-वन्दन करता था। अनेक व्यक्ति प्रतिदिन मन्दिर की परिक्रमा भी करते थे। चन्द्रकान्त ने पहले-पहल उसी गाँव में वेदपाठी ब्राह्मणों को सस्वर वेदपाठ करते सुना। आर्यसमाजी चन्द्रकान्त को उस गाँव में वैदिक धर्म, संस्कृति और आचार-विचार के चिन्ह देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। वह छोटा गाँव उसके लिए एक नई दुनिया थी। वहाँ सब कुछ उसके लिए नया था। भाषा-वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, खान-पान सब भिन्न था। फिर भी वह वहाँ के लोगों के साथ एक गहरी आत्मीयता का अनुभव करके आनन्दित हुआ।

उस गाँव में राधास्वामी मत के प्रेमी एक सज्जन का परिचय प्राप्त करके चन्द्रकान्त को आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों हुईं। इलाहाबाद में डाक्टर मल्लिक के साथ रहते हुए उसे राधास्वामी मत के बारे में थोड़ी जानकारी हो गई थी। डाक्टर साहब का परिवार राधास्वामी मतावलम्बी था। चन्द्रकान्त राधास्वामी सत्संग में भी एक-दो बार जाकर बैठा था। उसके पास जो थोड़ी सी पुस्तकें थीं उनमें अंग्रेज़ी में लिखी एक पुस्तक 'राधास्वामी मत प्रकाश' भी थी। उस सज्जन ने अपने प्रिय विषय के बारे

में बातें करने के लिए चन्द्रकान्त जैसा एक आदमी मिल जाने से स्वभावतः उसके साथ विशेष मित्रता का भाव दिखलाना शुरू किया। उन्होंने चन्द्रकान्त को दक्षिण। ब्राह्मणों के आचार-विचार की बातें भी बताईं। मुंह में गिलास, जिसे वे 'टम्बलर' कहना ही ज्यादा पसन्द करते हैं, लगाये बिना अर्थात् गिलास को जूठा किये बिना वहाँ लोग कैसे पानी या कॉफ़ी पीते हैं, उन्होंने उसे इसकी ट्रेनिंग दी और केला आदि फल दाँत से काटकर खाने के बदले उसके टुकड़े करके मुँह में डालकर खाने की सलाह दी। उन्होंने कहा—शूद्र लोग ही दाँत से काटकर खाया करते हैं। वहाँ के समाज में फिट हो जाने के लिए कई और छोटी-मोटी बातें उन्होंने चन्द्रकान्त को सिखा दीं।

गान्धी जी के नेतृत्व में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने दो-ढाई साल पहले मद्रास में हिन्दी प्रचार का काम शुरू किया था। और दक्षिण भारत में काम बढ़ाने के लिए मद्रास शहर में एक कार्यालय खोला था। गोपाल समुद्रम् हाईस्कूल के हेडमाटर राष्ट्रीय विचार के सज्जन थे। गाँव वालों में भी काफ़ी जागृति थी। स्कूल के अहाते में महात्मा गोखले के नाम पर गाँव वालों ने एक-एक हॉल बनवाया था। उसे वे 'गोकेल हॉल' कहते थे। गान्धी जी के प्रति लोगों में बड़ा आदर-भाव था। गान्धी जी ने ही मद्रासियों में हिन्दी प्रचार का काम शुरू किया है, यह सुनकर हिन्दी की ओर लोग आकृष्ट होने लगे थे। गान्धी जी ने अपने पुत्र देवदास गान्धी को प्रथम हिन्दी प्रचारक के तौर पर मद्रास भेजा था।

गोपाल समुद्रम हाईस्कूल में हिन्दी-वर्ग का उद्घाटन करने के लिए हाईस्कूल के विद्यार्थियों और शिक्षकों की एक सभा हेडमास्टर की अध्यक्षता में हुई। गाँव के कई प्रमुख व्यक्ति भी उसमें पधारे। हेडमास्टर साहब ने हिन्दी सीखने की आवश्यकता

पर बोलते हुए हिन्दी-प्रचारक चन्द्रकान्त का लोगों को परिचय दिया और स्कूल टाइम के बाद एक निःशुल्क हिन्दी वर्ग शुरू करने की घोषणा की। चन्द्रकान्त से भी कुछ बोलने के लिए कहा गया। चन्द्रकान्त ने अंग्रेज़ी में ही अपने विचार प्रकट किये। अन्त में लोगों ने उसे हिन्दी में बोलने को कहा। हिन्दी में उसका भाषण सुनकर कुछ बड़े-बूढ़ों ने अपनी राय ज़ाहिर की कि यह तो तुर्क भाषा है। उन्होंने मुसलमानों को उस तरह की भाषा बोलते सुना था। हिन्दी के कई वर्ग शुरू हो गये जिनमें स्कूल के विद्यार्थी और शिक्षक आकर हिन्दी सीखने लगे। चन्द्रकान्त को कुछ ऐसे भी अंग्रेज़ी-प्रेमी उस गाँव में मिले जिन्होंने यह मत प्रकट किया कि मद्रास प्रान्त अंग्रेज़ी को छोड़कर हिन्दी स्वीकार नहीं कर सकता।

लड़कियों के लिए भी एक सज्जन के घर में हिन्दी का एक वर्ग शुरू किया गया। उन दिनों लड़कियों का स्कूली शिक्षा देने के प्रति लोगों में उत्साह नहीं था। पर एक शिक्षा ऐसी थी जिसे प्रत्येक लड़की को देना माता-पिता अपना कर्तव्य समझते थे। वह शिक्षा थी संगीत की। लड़की की शादी के लिए उसका थोड़ा-बहुत गाना जानना अत्यावश्यक माना जाता था। हिन्दी के कारण उस गाँव की लड़कियों को एक क़दम आगे बढ़ने का अवसर मिला।

चन्द्रकान्त ने अंग्रेज़ी न जानने वाली लड़कियों के लिए तमिल भाषा सीखनी शुरू कर दी। वही राधास्वामी मत के प्रेमी सज्जन उसके तमिल-शिक्षक बने। तमिल भाषा जितनी कठिन है उसकी लिपि सीखना उतना ही आसान है। वर्णमाला तो हिन्दी ही जैसी है। अलबत्ता स्वरों में दीर्घ और ह्रस्व ए और ओ का भेद प्रकट करने के लिए एक-एक अधिक ए और ओ अक्षर हैं। लेकिन तमिल लिपि की सरलता इस बात में है कि व्यञ्जन

के प्रत्येक वर्ग में सिर्फ प्रथम और अंतिम अक्षर अर्थात् क, ङ, च, ञ आदि हो हैं। वर्ग के प्रथम अक्षर से ही दूसरे, तीसरे और चौथे अक्षर का काम लिया जाता है। अर्थात् 'कर' लिखकर उसे संदर्भानुसार *खर गर* या *घर* पढ़ा जाता है। तमिल में अक्षरों की कमी का एक परिणाम यह हुआ है कि तमिलभाषियों के लिए महाप्राण अक्षरों का उच्चारण करना परिश्रमसाध्य होता है।

लड़कियों ने हिन्दी सीखने में लड़कों से ज्यादा तेज़ी और तत्परता दिखाई। उन्होंने हिन्दी गीत सिखाने की भी माँग की। वे सब की सब अच्छा गाने वाली थीं। उन्होंने बड़े उत्साह से अपने सीखे गीत चन्द्रकान्त को सुनाये। सन्त त्यागराज के तेलुगू-गीत दक्षिण में घर-घर गाये जाते हैं। 'रामा नी समान ऐवरु', 'रामा सुगुण भूपन' आदि गीत वे इतना अच्छा गाती थीं कि उनकी कुछ पंक्तियाँ चन्द्रकान्त के मन पर हमेशा के लिए अंकित हो गईं। चन्द्रकान्त स्वयं गाना नहीं जानता था। लेकिन लड़कियाँ उसकी थोड़ी-बहुत सहायता पाकर हिन्दी के २-३ भजन अच्छे ढंग से गाने लगीं।

चन्द्रकान्त ने नियमित रूप से तमिल सीखना तो लड़कियों का हिन्दी-वर्ग शुरू होने के बाद ही शुरू किया। लेकिन व्यावहारिक रूप से उसकी शिक्षा उस गाँव में पहुँचने के दूसरे ही दिन शुरू हो गई थी। सिखाने वाली एक घर की दो स्त्रियाँ थीं, जिनके घर में उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया गया था। उस घर में साधारण स्थिति के वृद्ध पति-पत्नी, एक विवाहिता लड़की और एक पुत्र, ये चार प्राणी थे। पुत्र हाईस्कूल में पढ़ता था। चन्द्रकान्त उस घर में सवेरे नाश्ते के लिए, फिर दिन और रात के भोजन के लिए जाता था। बूढ़ी या उसकी पुत्री भोजन परसकर खिला देती थी। आवश्यकतावश सबसे पहले उसने तमिल में

'वेण्डाम' (नहीं चाहिए) और 'वेण्डुम' (चाहिए) कहना सीखा। उसके बाद क्रमशः खाने-पीने की चीज़ों के नाम सीखे। 'पषम' शब्द का शुद्ध उच्चारण करना तो उसे बहुत दिनों बाद ही आया। इस 'ष' अक्षर के लिए अंग्रेज़ी में Tha लिखा जाता है। हिन्दी का 'ड़' उस ध्वनि का थोड़ा-बहुत व्यक्त करता है। लेकिन उसका शुद्ध उच्चारण जिह्वा को मूर्द्धा की तरफ़ ले जाकर जहाँ से ष का उच्चारण करते हैं वहाँ से र का उच्चारण करने से प्राप्त होता है। उच्चारण की दृष्टि से इस एक कठिनाई के अलावा और कोई कठिनाई तमिल भाषा में नहीं है। मराठी ल (ळ) का भी तमिल में काफ़ी प्रयोग होता है। लेकिन वह इतना कठिन नहीं है। तमिल शब्दों का शुद्ध उच्चारण करने में चन्द्रकान्त की कठिनाई स्वाभाविक ही थी। लेकिन जब वह लड़कों के क्लास में उत्तर भारतीय तरीके से 'स्टूडेण्ट' को एस्टू-डेण्ट और 'स्त्री' को 'इस्त्री' कह देता था तब विद्यार्थी मुस्कराने लगते थे।

उसी परिवार में चन्द्रकान्त को केले के पत्ते पर दक्षिणी भोजन करने की भी ट्रेनिंग मिली। दक्षिण में गेहूँ नहीं होता। चावल ही लोगों का मुख्य खाद्य है। उसके अलावा अरहर और उड़द को भी भोजन के काम में लाते हैं। वहाँ चावल, दाल, कढ़ी, साम्भार, रसम और छाछ के साथ खाया जाता है। साम्भार सब्ज़ी मिली हुई मसालेदार दाल की तरह होता है। दाल के पानी में काली मिर्च और मसाला डालकर रसम बनाते हैं। विशेष अवसरों पर पतली खीर बनती है जिसे सर्व साधारण 'पायसम' कहते हैं। ये सब चीज़ें द्रावक होती हैं। पत्ते पर इन्हें चारों ओर फैलने से रोकते हुए हाथ से उठाकर खाने में अनभ्यासी को चतुराई से काम लेने की ज़रूरत पड़ती है। भोजन के पहले और बाद को मन्त्र पढ़कर आचमन करने की साधारण परिपाटी है।

चन्द्रकान्त ने हवन करने के लिए 'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'। आदि जो मन्त्र सीखे थे उन्हीं से वह इस परिपाटी को निभाने लगा।

उस घर वालों ने चन्द्रकान्त को प्रेम से खिलाया और चन्द्रकान्त ने प्रेम से खाया। लेकिन महीना पूरा होने पर जब उसके सामने पूरे तीस रुपये का बिल आया तब चन्द्रकान्त चक्कर में पड़ गया। उन दिनों सात-आठ रुपये मासिक पर होटल में भोजन मिला करता था। दूसरे, उसे किसी ने कह दिया था कि कार्यालय से जो वेतन मिलेगा उसके अलावा गाँव वाले भोजन का प्रबन्ध अपनी तरफ़ से कर देंगे। उसकी नियुक्ति इस शर्त पर हुई थी कि प्रथम तीन महीने तक उसे तीस रुपये मासिक मिलेंगे और उसके बाद चालीस रुपये कर दिये जायेंगे। पहले महीने की अपनी पूरी कमाई वह अपनी माँ के पास रवाना कर चुका था। इसलिए तीस रुपये का भोजन का बिल पाकर वह संकट में पड़ गया। लेकिन वहाँ के हिन्दी-प्रेमियों ने उसकी मदद की। उन्होंने आपस में चन्दा करके वह बिल चुका दिया। उसके साथ चन्द्रकान्त को उन कृपालू भोजन-दाताओं से छुट्टी लेनी पड़ी। उसके भोजन का प्रबन्ध स्कूल-होस्टल के मेस में कर दिया गया।

दक्षिणियों के जीवन में एक सादगी होती है। बाहरी आडम्बर में उन्हें उतनी दिलचस्पी नहीं होती। हेडमास्टर हरिहर अय्यर उस सादगी के नमूना थे। स्कूल के बाहर सिर्फ़ धोती और एक गमछा के अलावा और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं रखते थे। स्कूल जाते समय एक कुर्ता, उस पर एक कोट और सिर पर पगड़ी, यही उनका स्कूली ड्रेस था। लेकिन जूते नहीं पहनते थे। दक्षिण में जूते पहनने का इतना रिवाज नहीं है और उसे इतना महत्त्व नहीं दिया जाता। मद्रास हाईकोर्ट में भी देखने में आता है कि वकील लोग धोती, कोट, नेकटाई और पगड़ी धारण किये

घूमते हैं। पर गाँव में जूता नदारद। हरिहर अय्यर की दूसरी विशेषता थी उनकी सार्वजनिक सेवा-भावना। एक दिन चन्द्रकान्त ने उसके सामने यह विचार प्रकट किया कि अस्पृश्यता-निवारण का कुछ काम करना चाहिए। हरिहर अय्यर तैयार हो गये। स्कूल के दो-तीन अन्य अध्यापकों और गाँव के एकाध सज्जन भी तैयार हो गये।

हरिहर अय्यर के नेतृत्व में ५-७ आदमी गाँव के बाहर जहाँ परया (अस्पृश्य) लोगों की झोंपड़ियाँ थी, वहाँ गये। ख़बर भेजने पर परया लोग आकर एक मैदान में ५०-६० गज़ की दूरी पर खड़े हो गये। सुधारकांक्षी लोगों के भाषण हुए। श्रोताओं को महात्मा गान्धी के बारे में बतलाया गया और कहा गया कि सब भारत माता की सन्तान हैं, उच्च-नीच का भेद करना अनुचित है। पिछड़े हुए लोगों को उठाना चाहिए और अस्पृश्यता दूर करनी चाहिए। वक्ताओं ने ताड़ी पीना छोड़ देने और साफ़ रहने का भी उपदेश दिया। इस तरह उस गाँव में अस्पृश्यता-निवारण के काम का श्रीगणेश हुआ। लेकिन दो-तीन सभाओं के बाद श्रोताओं की संख्या घटने लगी। वक्ता-दल के लोगों की संख्या भी घटी। अन्त में दो ही रह गये। हरिहर अय्यर और चन्द्रकान्त। सिर्फ़ भाषण देकर उन भूखे कंगाल लोगों में, जो सैकड़ों वर्षों से समाज से बहिष्कृत होकर पशुवत् जीवन बिता रहे थे, सुधार की भावना उत्पन्न करने के प्रयत्न की निष्फलता मालूम हो जाने पर वह कार्यक्रम छोड़ दिया गया।

ताम्रपर्णी नदी गोपाल समुद्रम् वालों के लिए बड़ा भारी वरदान है। अधिकांशतः वह एक पतली पगडंडी-सी बनी रहती है। उसमें नहाने के लिए लोग दण्डवत् करने की शकल में पेट के बल धारा में लेटकर शरीर भिगो लेते हैं या स्थान-स्थान पर गड्ढा खोदकर उसे इतना गहरा बना लेते हैं कि उसमें बैठकर

सिर भिगो सकें। लेकिन बरसात के दिनों में नदी में बाढ़ की-सी हालत पैदा हो जाती है, और वह आस-पास की ज़मीन को उर्वरा बना देती है। सायंकाल गाँव वाले उसकी विस्तृत बालू-राशि पर बैठकर अपना मनोरंजन करते हैं और विद्यार्थी लोग खेलते हैं।

चन्द्रकान्त कुछ मित्रों के साथ प्रायः ताम्रपर्णी की बालू राशि पर या नदी के बीच किसी चट्टान पर बैठकर बातें करके अपना मनोरंजन कर लिया करता था। बातचीत का उसका प्रिय विषय होता था वैदिक धर्म और आर्यसमाज। कुछ लोग कहने लगे कि वह हिन्दी प्रचार से अधिक आर्यसमाज का ही प्रचार करता है।

एक दिन एक सज्जन, जो चन्द्रकान्त से बहुत स्नेह-भाव रखते थे, उससे पूछ बैठे, "क्या आर्यसमाजी अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हैं ?"

"हाँ करते हैं, आर्यसमाजी जाति-भेद नहीं मानते।" चन्द्रकान्त ने उत्तर दिया और उसके साथ ही उसके सामने एक सुन्दर, मुस्कराता चेहरा हाज़िर हो गया। उस विषय पर इससे अधिक चर्चा नहीं हुई पर चन्द्रकान्त का मन डावाँडोल हो गया।

उस सज्जन की एक कन्या थी। उसका विवाह शीघ्र ही कर देने की उन्हें चिन्ता हो रही थी। उम्र में वह बारह वर्ष से कम ही की थी। लेकिन

"अष्टवर्षा भवेत गौरे नव वर्षा च रोहिणी,
दशवर्षा भवेत कन्या ततउर्द्ध रजस्वला।"

× × ×

"माता चैव पिता तस्याज्यष्ठो भ्राता तथैचव,
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्टवा कन्या रजस्वला।"

को मानने वाले समाज में कन्याओं के १० वर्ष की उम्र के बाद अविवाहित रहने से माँ-बाप का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है।

वह लड़की चन्द्रकान्त के हिन्दी वर्ग में हिन्दी सीखने आती थी। शरारत से भरी उसकी आँखें थीं। अच्छा गाती थी और क्लास में सबसे अधिक निडरता से वह पेश आती थी। उस सज्जन के प्रश्न ने चन्द्रकान्त के मन में कितने ही प्रश्न उत्पन्न कर दिये। वह अपने को ऐसा सोचने से नहीं रोक सका कि सम्भवत: उस सज्जन के मन में उसे अपना जामाता बनाने का विचार उत्पन्न हुआ है। लेकिन उसने अपने मन में कहा, आर्य-समाज के सिद्धान्तों के अनुसार वह २५ वर्ष की आयु के पहले विवाह कैसे कर सकता है। उसके मन में यह प्रश्न भी उठा कि आर्थिक दृष्टि से क्या वह वैवाहिक जीवन का बोझ उठा सकता है। ऐसे विचारों के बीच उस चपल आँखों वाली लड़की का मुस्कराता चेहरा उसके सामने घूम जाता और उसका मन उस पर अटक जाता।

उस सज्जन के प्रश्न से प्रेरित होकर चन्द्रकान्त का मन नई दिशाओं में दौड़ने लगा और नई बातें सोचने लगा। उसने लोगों के विवाह होने की बातें सुनी थीं। पुस्तकों में पढ़ी थीं। विवाह की बरातें भी निकलती देखी थीं। उन सब बातों का उसके दिल पर कोई असर नहीं पड़ा था। किन्तु आज एक छोटे से प्रश्न ने उसके सामने न जाने कितने ही नज़ारे खड़े कर दिये। उसने अपने को एक वर के रूप में देखा, जो एक मण्डप में हवनकुण्ड के सामने बैठा है। पण्डित वेद के मन्त्र पढ़ रहे हैं। उसकी बगल में एक लड़की बैठी है। वही चपल आँखों वाली मनोरमा, उस सज्जन की कन्या। ऐसे ही कितने ही विचार उसके मन में एक के बाद एक उठे। लेकिन अन्त में उसने निश्चय किया, नहीं वह विवाह नहीं कर सकता। उसने अपने निश्चय को उस सज्जन को बता देना भी तय किया। उसे जबानी कहने की अपेक्षा लिखित दे देना बेहतर मालूम हुआ।

उसी रात को उसने एक चिट्ठी लिखी और अगले दिन की शाम की वह अधीरता से प्रतीक्षा करने लगा जब कि घूमने जाने के समय उस सज्जन से मुलाक़ात होती ।

अगले दिन टहलने के लिए बाहर निकलने का समय आगया। वह अपने कमरे में उनके इन्तज़ार में बैठा रहा। लेकिन वह सज्जन नहीं आये। वह वहाँ बैठा रह गया। वे बिल्कुल नहीं आये। वे दूसरे दिन भी नहीं आये। तीसरे दिन भी नहीं आये। बाद को मालूम हुआ कि वे किसी काम से बाहर गये हुए हैं। वे दिन चन्द्रकान्त के लिए बड़ी बेचैनी के दिन थे। विवाह की सुखद मनोहारी कल्पना ने उसके दिल और दिमाग़ को रंगीन बना दिया। वह विवाह नहीं करने का निश्चय करने के बावजूद कभी-कभी सोचता—'कहीं वह सज्जन आग्रह करें कि नहीं, मेरी कन्या से विवाह कर लो तब वह क्या उत्तर देगा ?'

आख़िर वह सज्जन एक सप्ताह के बाद दिखाई दिये। दोनों साथ-साथ टहलने निकले। इधर-उधर की बातें करते हुए जब वे लौटे और अलग होने लगे तब चन्द्रकान्त ने यह कहते हुए उस चिट्ठी को उन्हें दे दिया कि 'इसे घर जाकर पढ़ियेगा'। चन्द्रकान्त को उस रात नींद नहीं आई। वह रात भर सोचता रहा कि उसे पढ़कर उस सज्जन के मन में क्या-क्या विचार उठे होंगे।

दूसरे दिन जब वे आये तब चन्द्रकान्त को देखकर हँसे और बोले, "चन्द्रकान्त, मेरे प्रश्न का मतलब वह नहीं था जो तुम ने लगाया। मैंने तो सिर्फ़ जानकारी के लिए पूछा था।"

चन्द्रकान्त के सिर पर मानों घड़ों पानी पड़ गया। उसे अपने ऊपर बहुत तरस आया। वह एक बहुत छोटी-सी घटना थी। लेकिन उसने उसके सोचने और विचारने के लिए एक नया विषय उसके सामने प्रस्तुत कर दिया। अब तक अपने जीवन में उसे

सिर्फ़ एक ही स्त्री के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। वह थी उसकी माता। बहन सुनन्दा को उसने बचपन से खिलाया और दुलारा था। इससे अधिक नारी के सम्बन्ध में उसे कोई अनुभव नहीं था। लेकिन उस सज्जन की कन्या मनोरमा को लेकर उसके मन में कितने ही विचार उठे जो पहले कभी नहीं उठे थे। नारी को एक नई दृष्टि से, एक रसमयी दृष्टि से देखने की उसे प्रेरणा मिल गई। विवाह के सम्बन्ध में उसे पहले से जो कुछ मालूम था वह सब सिद्धान्त की ही दृष्टि से था, किताबी था। अब वह उसे थोड़ा-बहुत नारी की दृष्टि से, नारी को आधार मानकर समझने लगा। नारी उसके लिए एक बन्द पुस्तक थी, सिर्फ़ एक प्राणी थी जिसे माँ, बहन और पत्नी के नाम से पहचाना जाता है। वह पुरुष की सुखद जीवन-संगिनी भी हो सकती है, पुरुष की दिलचस्पी, प्रेम और आनन्द का केन्द्र-बिन्दु भी हो सकती है इसकी ओर अब उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। उस मित्र का उत्तर पा लेने पर वह बात वहीं समाप्त नहीं हो गई। सरोवर में एक कंकड़ी फेंक देने से जिस तरह सारे सरोवर में कम्पन पैदा हो जाती है उसी तरह उस घटना ने उसके हृदय-सरोवर में एक अशान्ति पैदा कर दी। वह चिन्तित रहने लगा।

× × ×

एक दिन उसे एक लिफ़ाफ़ा मिला। खोलने पर मालूम हुआ वह कल्डैकुरिची नामक स्थान से भेजा गया है। भेजने वाले का नाम यज्ञेश्वर शर्मा था। पत्र में लिखा था कि कल्डैकुरिची में एक नैशनल स्कूल खोला गया है। आप वहाँ आकर उसमें हिन्दी शिक्षक का काम करें तो बहुत उत्तम होगा। पत्र क़रीब-क़रीब शुद्ध हिन्दी में लिखा हुआ था जिससे प्रकट था कि लेखक ने हिन्दी का विशेष रूप से अध्ययन किया है। मित्रों से पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि कल्डैकुरिची टिन्नेवेली से ३-४ स्टेशन

पश्चिम की ओर एक अच्छा कस्बा है। उसे यह भी मालूम हो गया कि यज्ञेश्वर शर्मा एक कालेज-प्रोफ़ेसर हैं। असहयोग आन्दोलन के कारण नौकरी छोड़कर काँग्रेस का काम करते हैं। कल्डैकुरिची के मिडिल स्कूल को सरकार से सम्बन्ध तोड़कर, नैशनल हाईस्कूल बना दिया गया था। असहयोग आन्दोलन शुरू हो जाने के बाद, देश में एक छोर से दूसरे छोर तक उसकी लहर फैल गई और लोग असहयोगी बनकर काँग्रेस के रचनात्मक कार्य में लगने लगे। वह नैशनल स्कूल उसी का फल था। चन्द्रकान्त ने यज्ञेश्वर शर्मा को लिख दिया कि उसे नैशनल स्कूल में काम करना स्वीकार है और वह बहुत जल्दी ही कल्डैकुरिची पहुँच जायेगा। उसने तमिल में लिखकर उन्हें उत्तर भेजा। लिपि तमिल थी। भाषा हिन्दी-तमिल थी। गोपाल सुमुद्रम् हाईस्कूल की वार्षिक परीक्षा समीप आ जाने से अधिकांश विद्यार्थियों ने अपनी हिन्दी की पढ़ाई बन्द कर दी। परीक्षा के बाद स्कूल बन्द हो जाने पर उस छोटे गाँव में कुछ काम नहीं हो सकता था। अतः चन्द्रकान्त एक दिन सबों से विदा होकर कल्डैकुरिची चला गया।

शर्मा जी की सूचना के अनुसार चन्द्रकान्त स्टेशन से सीधे डाक्टर शंकर अय्यर के मकान पर गया जो स्टेशन के बिल्कुल पास था। शंकर अय्यर वहाँ के नेता थे। उनके ही मकान में चन्द्रकान्त के निवास की व्यवस्था की गई थी। घर में नकी पत्नी, दो छोटे बच्चे और दो-तीन अन्य स्त्री-पुरुष थे। डाक्टर साहब अधेड़ उम्र के व्यक्ति थे, हँसमुख और विनोदशील। चन्द्रकान्त के साथ इस तरह पेश आये मानो वर्षों के परिचित हों। अगले दिन ही अपनी नववयस्क पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह आपकी पहली हिन्दी विद्यार्थिनी होंगी।" उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी अम्माल था। वह डाक्टर साहब की दूसरी

पत्नी थीं। पहली का कुछ साल पहले देहान्त हो जाने पर उनका डाक्टर साहब से विवाह हुआ था। उन्होंने थोड़ी अंग्रेज़ी सीख ली थी। इसलिए चन्द्रकान्त का काम सरल हो गया।

चन्द्रकान्त डाक्टर साहब के यहाँ एक अतिथि ही नहीं, परिवार के एक अंग की तरह रहने लगा। भोजन और नाश्ते का तुरन्त अलग प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनके यहाँ ब्राह्मणों के घरों का आचार-विचार नज़दीक से देखने का चन्द्रकान्त को अच्छा अवसर मिला। दक्षिण में पर्दा-प्रथा न होने के कारण भवन-निर्माण की कला वहाँ भिन्न प्रकार की है। स्त्रियाँ चौबीसों घण्टे घर के भीतर या आँगन में अपना समय नहीं बितातीं। घर के बाहरी बरामदे का वे स्वच्छन्दतापूर्वक उपयोग करती हैं। लेकिन जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध है, स्त्री-पुरुष सब पर्दा करते हैं। अर्थात् वे घर के भीतर घर का दरवाज़ा बन्द करके भोजन करने बैठते हैं। विशेषकर अब्राह्मणों की दृष्टि उन पर भोजन करते समय न पड़े इसका ध्यान रखते हैं। अब्राह्मणों से छूतछात यहाँ तक बर्ता जाता है कि अब्राह्मण का छुआ हुआ पानी तक पीने या रसोई के काम में नहीं लाते। कुएँ का पानी खारा होने से साधारणतः नदी या तालाब का पानी मँगाकर पीने के काम में लाया जाता है। नदी का पानी बड़े-बड़े हण्डों में बैल-गाड़ियों पर लाकर सम्पन्न घरों में पहुँचाने वाले पेशेवर लोग होते हैं या स्त्रियाँ ही अपने घरों के काम के लिए घड़ों में लाकर रख देती हैं।

एक दिन चन्द्रकान्त यज्ञेश्वर शर्मा के साथ टिन्नेवेली शहर के प्रसिद्ध अब्राह्मण काँग्रेसी नेता श्री त्रिकूट सुन्दरम् पिल्लै से मिलने गया। भोजन का समय हो जाने के कारण श्री पिल्लै ने उसे भोजन के लिए कहा। वह छूतछात नहीं मानता—यह दिखाने का अवसर पाकर उसने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

उस दिन श्री पिल्लै के घर चन्द्रकान्त और शर्मा, दोनों ने भोजन किया। बाद को भोजन के स्वाद की भिन्नता की चर्चा करते हुए शर्मा जी ने कहा कि आज जीवन में पहली बार एक अब्राह्मण के घर भोजन किया है। शर्मा जी ने तमिल प्रान्त के अब्राह्मणों के भेद बतलाये। दक्षिण में जो ब्राह्मण नहीं होते उन्हें ब्राह्मण लोग शूद्र कहा करते हैं, और सामाजिक बातों में ब्राह्मणों और अब्राह्मणों का नज़दीकी सम्पर्क नहीं होता। दक्षिण में ब्राह्मणेतर जातियों के नाम पिल्लै, मुदालियार और चेट्टियार आदि हैं। सबसे निम्न श्रेणी के परिया जाति के लोग हैं जिन्हें अस्पृश्य माना जाता है। दक्षिणी ब्राह्मण शाकाहारी होते हैं और उत्तर के ब्राह्मणों को जिनके लिए मांस-मछली निषिद्ध नहीं है, हेय समझते हैं।

लक्ष्मी अम्माल जिन्हें चन्द्रकान्त लक्ष्मी बहन कहने लगा, उम्र में उससे थोड़ी बड़ी थीं। वे उसके भोजन का विशेष ध्यान रखती थीं। फिर भी चन्द्रकान्त दक्षिणी भोजन का, जिसमें मिर्च-मसाले का अधिक उपयोग होता है अपने स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता देख मन-ही-मन सोचने लगा कि कुछ ऐसा उपाय निकलना चाहिए कि दाल-भात-तरकारी वाला उत्तरभारतीय सादा भोजन मिला करे। उसने अपने हाथ से कभी रसोई बनाने का काम नहीं किया था। और न उसके लिए उसका मन तैयार हुआ। लेकिन जब एक दिन एक अखबार में 'इकमिक कुकर' का विज्ञापन पढ़ा तब मद्रास की एक कम्पनी को लिखकर एक 'कुकर' मँगा लिया। कुकर आ जाने पर लक्ष्मी बहन से अपने लिए सादा भोजन पाने की बात कही और कुकर में भोजन बनाने की सम्मति चाही। सम्मति मिल गई। उसके बाद लक्ष्मी बहन अपने रसोईघर से काफ़ी आग और कोयला कुकर के चूल्हे में डाल देतीं। चन्द्रकान्त चावल, दाल और सब्ज़ी कुकर के कटोरों में

रखकर ढक देता और स्कूल चला जाता। स्कूल से बारह-एक बजे लौटता और कुकर द्वारा तैयार किया हुआ भोजन निकालकर भोजन करता। लक्ष्मी बहन ने दही और घी का भी प्रबन्ध कर दिया। इस तरह उसने भोजन के मामले में स्वावलम्बी बनने का पहला क़दम उठाया।

कल्डकुरिची में निवास, कार्य और वातावरण की अनुकूलता से चन्द्रकान्त के जीवन-क्रम में एक व्यवस्था और एक नूतनता आ गई। वह स्वाध्याय में अवकाश का अपना सारा समय लगाने लगा। रात के तीन बजे वह उठ जाता और पढ़ने में लग जाता। पूरा ईशोपनिषद् उसने कण्ठाग्र कर लिया और मुण्डकोपनिषद् के मन्त्र याद करने लगा। डाक्टर साहब के पुस्तकालय में उत्तमोत्तम अंग्रेज़ी ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था, जिसमें राजनीति और राष्ट्रीय साहित्य की पुस्तकें अधिक थीं। चन्द्रकान्त को उससे स्वाध्याय में और भी स्फूर्ति प्राप्त हुई। सवेरे वह टहलने निकल जाया करता था। इस कार्यक्रम में उसे कैलासम नामक एक साथी मिल गया। दोनों के बीच सहज स्नेह-भाव पैदा हो गया। चन्द्रकान्त का उसके घर वालों से भी परिचय हो गया। उसकी मातामही उसे बंगाली कहकर पुकारती थीं। और जब वह उनके यहाँ जाता तब स्नेहपूर्वक कुछ न कुछ उसे खिलाया करती थीं।

कैलासम का विवाह उसी क़स्बे में एक दूसरे मुहल्ले में होना तय हुआ। दक्षिण में यह आवश्यक नहीं माना जाता कि विवाह दूसरे गाँव या शहर में होना चाहिए। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि जिस लड़की से विवाह होना तय हुआ था वह उसकी अपनी ममेरी बहन थी। दक्षिण में भाई-बहनों की सन्तान का परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध एक साधारण बात है। मामा और भांजी का विवाह भी निषिद्ध नहीं माना जाता। घर के बाहर

नारियल, केले और आम के पत्तों से सजाकर एक मण्डप बनाया गया था। वैदिक रीति से विवाह हुआ। कन्या-पक्ष वालों ने वर को दहेज़ में नकद रुपये देने के साथ-साथ पलंग, तोशक, बर्तन आदि सामान भी दिये। दक्षिण के ब्राह्मणों के रीति-रिवाज के अनुसार वर-पक्ष की तरफ़ से जाने वाली बरात के साथ वर की माँ, बहन और अन्य स्त्रियाँ भी जाती हैं। विवाह-संस्कार दिन में मध्याह्न के पूर्व ही हो जाता है। विवाह के पहले दिन बराती वधु के घर जाने के पहले गाँव के मन्दिर में जाते हैं। वहां वधु-पक्ष की तरफ़ से उनका स्वागत होता है। दोनों पक्षों का परस्पर औपचारिक परिचय हो जाने के बाद कन्या का पिता देवता के सामने कन्यादान करने का वचन देकर वर-पक्ष वालों को अपने घर पधारने का निमन्त्रण देता है। वर को छोड़कर बाक़ी सब लोग कन्या के घर जाते हैं और कन्या को नया वस्त्र और आभूषण भेंट करते हैं। उसी अवसर पर पुरोहित विवाह के लिए अनुकूल लग्न और मुहूर्त बतलाकर कन्या के पिता से वर के पिता को पान दिलाकर विवाह के लिए उसे वचन-बद्ध करता है। इसे 'निश्चय-ताम्बूलम्' कहते हैं। मन्दिर में पहली मुलाक़ात के समय ही वधु-पक्ष की तरफ़ से बरातियों को नाश्ता करा दिया जाता है। रात को सब बराती वधु के घर जाकर भोजन करते हैं। वर उस भोज में शरीक नहीं होता। अगले दिन सवेरे लग्न से पहले वर का क्षौर-कर्म होता है। स्नानादि के बाद वह लुंगी का त्याग कर ज़री-किनारे की क़ीमती धोती और चादर धारण करता है। फिर नया यज्ञोपवीत पहन लेता है। उसके बाद उसकी आँखों में काजल और ललाट पर चन्दन लगा दिया जाता है। इतना हो चुकने पर वह हाथ में एक छड़ी, पंखा और एक गठरी लेकर यात्रा के लिए तैयार हो जाता है—मानो संन्यासी होकर काशी-यात्रा के लिए जा रहा हो। कन्या का पिता उसे रोककर

हल्दी लगाता है, दो नारियल भेंट करता है और कहता है—'मत जाओ, मेरी कन्या से विवाह करो'। लड़का रुक जाता है। तब उसके सामने लड़की लाई जाती है। दोनों एक दूसरे को पहले-पहल देखते हैं। वर और वधु के मामा नये वस्त्र पहनकर घोड़ा बनने का स्वाँग करते हैं। दोनों अपने-अपने मामा के कन्धे पर बैठ जाते हैं। कन्धे पर बैठे दोनों एक दूसरे के गले में माला डालते हैं। तीन बार माला का आदान-प्रदान होता है। उसके बाद वर और वधु को पंडाल में रंगीन झूले में एक-दूसरे की बगल में बिठा दिया जाता है। बाहर शहनाई का बजना बन्द हो जाता है। उपस्थित स्त्रियाँ गौरी-कल्याणम (विवाह) का गीत गाने लगती हैं। किसी की बुरी नज़र वर-वधु पर न पड़ जाय इसके लिए वे कुछ विधि करती हैं। फिर दूध से वर का पद-प्रक्षालन करके पाँव को आँचल से पोंछ देती हैं। तब वर को कुछ बर्तन आदि भेंट में दिये जाते हैं। उस अवसर पर झूले के चारों तरफ़ पानी उँड़ेलते हुए दीपक लेकर परिक्रमा करने का रिवाज है। यह सब कृत्य घर के बाहर पंडाल में किया जाता है। इसके पश्चात् वर-वधु का हाथ पकड़कर घर के भीतर, जहाँ विवाह का मण्डप बना रहता है, जाता है और मन्त्रादि के साथ विवाह की धार्मिक क्रिया शुरू होती है। लड़की का पिता कन्या-दान करता है। शहनाई ज़ोरों से बजने लगती है। लड़का लड़की के गले में मंगल-सूत्र बाँधता है। यह मंगल-सूत्र दक्षिण में स्त्रियों के लिए उसी तरह सौभाग्य-चिह्न समझा जाता है जिस तरह उत्तर भारत में माँग का सिन्दूर समझा जाता है। ननद मंगल-सूत्र की दूसरी गाँठ बाँधती है और पुरस्कार पाती है। विवाह के बाद बाहर के मण्डप में वर-वधु को एक साथ बिठाकर मिठाइयाँ खाने को दी जाती हैं। दूसरी स्त्रियाँ विनोद-भाव से दोनों को एक दूसरे का जूठा खिला देती हैं। इस तरह दो अनजान

हृदयों को जोड़ने का उपक्रम किया जाता है। भोजन और विश्राम के बाद वर-वधु को उपस्थित स्त्रियों के सामने नारियल से कुछ खेल खेलकर और सवाल-जवाब करके अपना संकोच दूर करने और परस्पर का परिचय बढ़ाने का अवसर दिया जाता है। वर-पक्ष के प्रमुख लोग चार दिन तक वधु-पक्ष के अतिथि के तौर पर टिके रहते हैं। तब कन्या एक-दो दिन के लिए वर के घर भेज दी जाती है। कुछ काल के उपरान्त जब कन्या ऋतुमती हो जाती है तब फिर एक उत्सव मनाया जाता है। द्विरागमन अर्थात् गौने के अवसर पर स्त्रियां द्वारा अश्लील गीत गाये जाने का रिवाज है। सुहाग-रात को वर-वधु को एक कमरे में कर दिया जाता है। कमरे के बाहर दरवाज़े के पास बैठकर वधु की सहेलियाँ और अन्य स्त्रियाँ कई गीत गाती हैं जिनमें दाम्पत्य-जीवन को सुखी और सफल बनाने के संकेत होते हैं। इस अवसर को 'शान्ति मुहूर्तम्' कहा जाता है।

× × ×

कांग्रेस ने अपने नागपुर के अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन और रचनात्मक कार्य के लिए 'तिलक-स्वराज फण्ड' के नाम से एक करोड़ रुपये संग्रह करने का निश्चय किया। गान्धी जी ने धन-संग्रह के लिए सारे देश में भ्रमण किया। जहाँ-जहाँ वे गये वहाँ-वहाँ जनता ने बड़े उत्साह से थैलियाँ भेंट कीं। नगरों में होड़-सी लग गई कि कौन गान्धी जी को अधिक रुपये देता है। स्त्रियों ने अपने गहने भेंट किये। गान्धी जी के दक्षिण के भ्रमण-कार्यक्रम में सिर्फ़ मदुरा तक जाना ही निश्चित हुआ था। कल्डैकुरिची के काँग्रेसियों ने मिलकर तय किया कि गान्धी जी को वहाँ भी निमन्त्रित किया जाय और एक अच्छी रक़म भेंट की जाय। कल्डैकुरिची का निमन्त्रण तमिलनाड काँग्रेस के अधिकारियों को देने के लिए

चन्द्रकान्त को मदुरा भेजा गया। निमन्त्रण स्वीकार हो गया। गान्धी जी अपने दल के साथ कल्डैकुरिची पधारे। नदी के तट पर एक विराट सभा में गान्धी जी को थैली भेंट की गई। श्री राजगोपालाचार्य दक्षिण भारत के भ्रमण के कार्यक्रम के प्रधान प्रबन्धक की हैसियत से गान्धी जी के साथ थे। राजाजी का नाम दक्षिण के प्रमुख असहयोगी वकील के तौर पर चन्द्रकान्त इलाहाबाद में ही सुन चुका था। राजाजी ने कल्डैकुरिची के उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारक से दिलचस्पी से बातें कीं और हिन्दी प्रचार के बारे में कई प्रश्न पूछे।

× × ×

चन्द्रकान्त के दक्षिण भारत चले जाने के एक साल के बाद उसकी माँ मोतीहारी से शाहाबाद के सुबोधपुर गाँव चली गईं। गाँव जाकर वहीं सुनन्दा का विवाह करने की उनकी इच्छा थी। चन्द्रकान्त भी करीब डेढ़ साल दक्षिण में काम कर चुकने पर एक महीने की छुट्टी पर सुबोधपुर के लिए रवाना हुआ। मोतीहारी के मित्रों से मिलकर अपने गाँव जाने के विचार से वह कलकत्ता पहुँचकर वहाँ से पहले वह मोतीहारी गया और फिर मोतीहारी से रवाना होकर हरपुर जान (छपरा) का गुरुकुल देखते हुए वह सुरेमनपुर स्टेशन पर उतरा। शाम के पाँच बजे का समय था। प्लेटफ़ार्म के बाहर जाने पर उसे कोई एक्का या टमटम दिखाई नहीं पड़ा। वहाँ से उसका गाँव गंगा के उस पार १०-१२ मील दूर था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि स्टेशन से ३ मील दूरी पर बैरिया गाँव है। वहाँ से दो-ढाई मील पर नौरंगा घाट है। वहाँ से अगले दिन स्टीमर मिलेगा, जिससे जाकर वह सुबोधपुर घाट उतर सकता है और नाव पर गंगा पार करके और दो मील पैदल चलकर अपने गाँव रात तक पहुँच सकता है। मार्ग का इतना बड़ा विवरण सुनकर वह सोचने लगा

कि आगे क्या करना चाहिए। इतने में एक भद्र युवक बाहर खड़ी एक बैलगाड़ी पर से उतरकर उसकी ओर आया और उसकी कठिनाई समझकर अपने साथ उसे बैलगाड़ी पर बैठकर चलने को कहा। वह भी उसी ट्रेन से उतरा था। बैलगाड़ी उसी के लिए आई थी। चन्द्रकान्त धन्यवादपूर्वक उसकी सहायता स्वीकार करके बैलगाड़ी पर सवार हो गया। उस ने उससे कितने ही प्रश्न पूछे जिनका उसने उत्तर दे दिया। उसने उसे अपने यहाँ ले जाकर ठहराया। थकावट और सिर-दर्द के कारण चन्द्रकान्त खाट पर पड़ते ही सो गया। बहुत रात बीतने पर नौकर ने उसे उठाया और भोजन कराया। वह अपने मालिक का हुक्म पाकर निद्रावस्था में तेल की मालिश करके चन्द्रकान्त का सिर-दर्द दूर कर चुका था। भोजन कर चुकने के बाद चन्द्रकान्त को मालूम हुआ कि उसके मेज़बान बैरिया के बाबू (ज़मींदार) साहब के सुपुत्र हैं। अगले दिन सवेरे वह वहाँ से विदा लेकर नौरंग घाट गया। बाबू साहब के नौकर ने उसका ट्रंक घाट तक पहुँचा दिया। घाट पहुँचने पर मालूम हुआ कि स्टीमर के आने का समय निश्चित नहीं है। लेकिन साधारणतः वह शाम को चार-पाँच बजे के लगभग आती है। स्टीमर के आने तक अप्रैल महीने की धूप में उस घाट पर बैठे रहने के बदले उसने सुबोधपुर घाट एक कुली की मदद से पैदल ही चला जाना ठीक समझा। लेकिन उसका ट्रंक ढोकर पहुँचा देने के लिए कोई कुली नहीं मिला। गाँव में कुली श्रेणी का आदमी भी दूसरों के लिए कुलीगिरी करने में अपनी हेठी समझता है। पैसे या प्रेम से कोई उसकी मदद के लिए तयार नहीं हुआ। आख़िर उसका स्वावलम्बन का भाव जागा और वह उस बड़े ट्रंक को सर पर रखकर सुबोधपुर घाट के लिए चल पड़ा। गंगा का तट पकड़े रेत की पगडंडी पर अपनी चप्पल घसीटता सिर पर के भारी बोझ

और धूप तथा प्यास और थकावट की परवा किये बिना वह लगातार आगे बढ़ता गया। कहीं विश्राम के लिए नहीं बैठा। वह जल्दी से जल्दी अपनी माँ और भाई-बहन से मिलने के लिए अधीर हो रहा था। आखिर सूर्यास्त होते-होते वह सुबोधपुर घाट पर पहुँचा। तब लोगों ने कहा कि दस-पन्द्रह मिनट पहले स्टीमर आकर आगे के लिए रवाना हो गई है। उसने उस पार जाने वाली नाव के बारे में पूछा। पर अफ़सोस, आखिरी नाव भी मुसाफ़िरों को लेकर चली गई थी। उस पार दो मील तक निर्जन खेत और जंगल से होकर जाने पर ही गाँव मिलता है। अतः रात में कोई अकेले नहीं जाता। चन्द्रकान्त उस दिन घर नहीं पहुँच सका। अपनी अधीरता के फलस्वरूप वह पछतावे में पड़ गया। घटवारों ने उसके बारे में जानकारी प्राप्त करके उसके साथ अच्छा व्यवहार किया। उन्होंने आग में डालकर बाटियाँ तैयार कीं और चन्द्रकान्त को प्रेम से खिलाया। घटवारों की झोंपड़ी में रात काटकर दूसरे दिन वह पहली नाव से उस पार जाने वाले लोगों के साथ वहाँ से रवाना हुआ। घटवारे ने उसका सामान उसके घर पर पहुँचा देने के लिए एक आदमी ठीक कर दिया।

उस पार नाव से उतरकर चन्द्रकान्त एक डेढ़ सो गज़ रेत पर चलकर तट की ज़मीन पर पहुँचा और मीलों तक फैले हुए खेतों के बीच से होकर वह दक्षिण दिशा में आगे बढ़ा। पिछली बार करीब पाँच साल पहले वह इन खेतों से होकर सुबोधपुर गया था। रास्ते पर पड़ने वाले कुछ बड़े पेड़ और झाड़-जंगल पहचान में आने लगे। वह मन में सोचने लगा, क्या गाँव का कोई आदमी उसे एकाएक पहचान सकेगा? गाँव जैसे-जैसे पास आता गया उसका हृदय अकथनीय उद्रेकों से भर गया। आखिर वह गाँव की सीमा पर पहुँचा, उसमें प्रवेश किया और अपने घर

की ओर बढ़ा। सड़क के दोनों तरफ़ के घर वाले लोग अपने-अपने दरवाज़ों पर अपने गाय-बैलों को सानी-पानी खिला रहे थे। सड़क पर जाने वाले मुसाफ़िरों की ओर ध्यान देने का किसी को अवकाश नहीं था। जब वह अपने घर के बिल्कुल पड़ौस में पहुँचा तब कुछ लोग अपना काम बन्द करके खड़े हो गये और उसे पहचानकर उसका नाम लेकर दूसरों को सुनाने लगे कि चन्द्रकान्त आ गया। चन्द्रकान्त बड़ों को प्रणाम करता हुआ आगे बढ़ता गया। अपने घर से जब कि वह कुछ दूरी पर ही था कि उसकी नज़र एक लड़की पर पड़ी। वह उसको देखकर घर की ओर भागी। चन्द्रकान्त को उसकी एक अल्प झलक ही मिल पाई। उसने उस लड़की को कुछ पहचाना, कुछ नहीं पहचाना लेकिन वह उसकी बहन सुनन्दा ही थी। अब वह बड़ी-सी हो गई थी। भैया आ गये—यह ख़ुशख़बरी माँ को सुनाने के लिए वह दूर से ही चन्द्रकान्त को देखकर घर के भीतर दौड़ गई।

४

सुखद मिलन

घर के भीतर आँगन में जाकर चन्द्रकान्त ने माँ और अन्य बूढ़ी स्त्रियों के चरण छूकर प्रणाम किये। माँ ने सबसे पहले चन्द्रकान्त को देवघर में जाकर सात देवताओं को सिर नवाकर प्रणाम कर आने को कहा। तब एक ग्लास में दूध मँगाया और उसके हाथ में देते हुए कहा, "बेटा, जाकर यह दूध जगन्नाथ बाबा को चढ़ा आओ, और साथ ही जौहरी और हुलासो सती को भी प्रणाम कर आओ।" ये घर के देवी-देवता थे। कई पीढ़ी पहले जगन्नाथ नाम के व्यक्ति साँप के काटने से मर गये थे और किसी को स्वप्न दिया था कि मेरे लिए स्थान बनादो और मेरी पूजा किया करो। तब से उनके लिए एक वेदी बनाकर उनकी पूजा होने लगी। लोगों का विश्वास है कि वे अपने कुल के लोगों की रक्षा करते हैं। उनकी पत्नी जौहरी उनके साथ सती हो गई। हुलासो नाम की एक लड़की घर में आग लग जाने पर बचाव के लिए घर के भीतर दौड़ गई और एक मिट्टी की डेहरी में जाकर छिप गई और जलकर राख हो गई। उसने भी स्वप्न देकर पूजा माँगी। इसके अलावा घर में ही एक कमरा देवघर के नाम से सात देवताओं के लिए सुरक्षित था। ये सात देवता कहीं से एक साथ आये और घर के एक आदमी को स्वप्न दिया कि हमें स्थान दो। तब से एक अलग कमरे में उन्हें स्थान दे दिया गया। और हर ख़ास अवसर पर उनकी भी पूजा होने लगी। इन सब बातों में विश्वास न करने वाला चन्द्रकान्त पहले तो हिचकिचाया कि उसे यह सब करना चाहिए या नहीं? पर तुरन्त माँ की इच्छा

के अनुसार सब कुछ करने का निश्चय किया और जो-जो करने को कहा गया सो-सो किया। बाहर से उसके लौटने के थोड़ी देर बाद सूर्यकान्त और उसके चाचा जी जो खेत की तरफ़ गये थे, उसके आने की ख़बर पाकर लौट आये। चन्द्रकान्त ने चाचा के पाँव छूकर प्रणाम किया और सूर्यकान्त को गले लगा लिया। सबों के आनन्द की सीमा नहीं रही। कुछ समय तक आँगन में पड़ोस के बच्चों की भीड़-सी लगी रही।

सुबोधपुर गाँव गंगा के तट पर बसा एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ से थाना और डाकख़ाना पाँच-पाँच मील और रेलवे स्टेशन आठ मील दूर है। ऐसा वह गाँव है। आस-पास में कोई स्कूल नहीं। गाँव में मुश्किल से एक-दो ऐसे व्यक्ति थे जो चिट्ठी पढ़-लिख सकते थे। वे ही गाँववालों की बाहर से आई चिट्ठियों को पढ़कर उन्हें सुना देते और उनकी तरफ़ से लिखकर भेज देने का पुण्य कमाते थे। प्रकट रूप में सुबोधपुर एक जाहिल गाँव था जहाँ के लोग सिर्फ़ तीन बातों में पटु थे। खेती करना, आन पर जूझ जाना और मुकद्दमा लड़ना। लेकिन चन्द्रकान्त को आश्चर्य हुआ जब कि गाँव के कुछ बूढ़े उसके पास आकर रामायण की चर्चा करने लगे और दोहा चौपाई सुनाने लगे। साथ ही कुछ गूढ़ अर्थवाले दोहों का उससे अर्थ भी पूछने लगे। चन्द्रकान्त उन निरक्षरों के प्रश्नों के सामने बगलें झाँकने लगा और उनकी प्रशंसा करके अपने अज्ञान को छिपाने की कोशिश करने लगा। गाँव के लोगों ने उससे गान्धी जी के बारे में अनेक प्रश्न किये। गाँव में गान्धी जी के चमत्कार की शोहरत फैल गई थी। लोग उन्हें एक सिद्ध पुरुष समझने लगे थे। चन्द्रकान्त ने लोगों को गान्धी जी की शिक्षा के बारे में बताया और यह भी बताया कि उनको क्या करना चाहिए तथा गान्धी जी उनसे क्या चाहते हैं?

एक दिन उसकी माँ ने कहा, "बेटा, तुम जब मिडिल का

इम्तहान दे रहे थे, तब मैंने तुम्हारे पास हो जाने के लिए सत्यनारायण बाबा की कथा सुनने की मनौती की थी।" चन्द्रकान्त को माँ की बात सुनकर हँसी आई। पर उसने गम्भीर बनते हुए कहा, "माँ, अब तो तुम्हारा बेटा ही पण्डित बन गया है। क्या हर्ज है अगर वही शास्त्र के अनुसार सत्यनारायण की पूजा करदे और तुम सुन लो।" अपने बेटे के लिए माँ के हृदय में जो प्यार और विश्वास था उसने माँ से बेटे की बात मनवा दी। एक दिन चन्द्रकान्त बाज़ार जाकर हवन-सामग्री ख़रीद लाया और माँ को बैठाकर उसके सामने आर्यसमाजिक ढंग से मन्त्र पढ़कर हवन कर दिया और कहा कि पूजा करने की यही पुरानी वैदिक रीति है। पता नहीं माँ का बेटे की पूजा से सन्तोष हुआ कि नहीं पर चन्द्रकान्त को ख़ुशी हुई कि सत्यनारायण की कथा का तमाशा घर में कराने में सहयोग देने से बच गया।

सुनन्दा का विवाह एक गाँव में तय हो गया था। रिवाज के अनुसार वर के छेंके के लिए चाचा और कुछ सम्बन्धियों के साथ चन्द्रकान्त मनोनीत वर के घर गया। उस दिन उस गाँव के एक सज्जन के घर चन्द्रकान्त के गाँव से एक बरात भी पहुँची थी। शामियाना खड़ा करके उसमें बरातियों को गाँव के बाहर एक बगीचे में ठहराया गया था। बरात के दरवाज़ा लग चुकने के बाद सब बराती शामियाने में जमा हुए। शिष्टाचार के समय वर और वधु-पक्ष के लोग दो भाग में आमने-सामने खड़े हो गये। ऐसे अवसरों पर दोनों पक्षों में कुछ समय तक प्रश्नोत्तर होते हैं। जिसके द्वारा वे मनोरंजन करते हैं तथा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उस गाँव के कुछ लड़कों ने वर-पक्ष वालों से अंग्रेज़ी में प्रश्न करना शुरू कर दिया। वर-पक्ष में संस्कृत-पण्डित और लठत तो थे पर अंग्रेज़ी जानने वाला एक भी आदमी नहीं था। चन्द्रकान्त का एक सम्बन्धी जो चन्द्रकान्त

के साथ गया था और उस बरात के एक बराती की भी रस्म पूरी करा रहा था, दौड़ा हुआ चन्द्रकान्त के पास पहुँचा और उसे शामियाने में ले जाकर वर-पक्ष की तरफ़ से खड़ा कर दिया। चन्द्रकान्त ने जैसे ही अंग्रेज़ी में जवाब देकर कुछ बोलना शुरू किया कि वर-पक्ष वालों ने अपने पक्ष की जीत प्रकट करने के लिए तालियाँ बजा दीं। उसके बाद शिष्टाचार की दूसरी रस्म शुरू हो गई। लेकिन वर-पक्ष वालों को बहुत ख़ुशी हुई कि चन्द्रकान्त ने उनकी इज़्ज़त रख दी। दूसरे दिन लोगों ने उसे बुलाकर उसी शामियाने में उसका भाषण कराया। चन्द्रकान्त ने तिलक-दहेज़ और नाच आदि की प्रथा बन्द कर देने के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया। नाच-पार्टी वाले जो एक तरफ़ बैठे भाषण सुन रहे थे डरे कि कहीं उनका नाच तो बन्द नहीं हो जायेगा। पर भाषण समाप्त होने के बाद ही उन्हें हुक्म मिला कि अब नाच शुरू हो। चन्द्रकान्त चुपचाप शामियाने से निकल गया।

छेंके की रस्म पूरी करके वह अपने दल के साथ दूसरे दिन अपने गाँव को लौट आया। सुनन्दा के विवाह का दिन निश्चित हो गया और निश्चित दिन पर बरात भी आ गई। चन्द्रकान्त यह देखकर हैरान हो गया कि विवाह के दिन एक-दो वृद्ध जो नज़दीकी सम्बन्धी थे, पुरानी नाराज़गी के कारण बरात लगने के समय दरवाज़े पर आने से इन्कार करने लगे। चन्द्रकान्त दौड़कर उनके पास गया और अपने स्वर्गीय पुरखों के अपराधों के लिए उनसे क्षमा माँगी और उन्हें मनाकर बुला लाया।

चन्द्रकान्त ने सुधार की दृष्टि से दो-तीन बातों की मनाही कर दी थी। एक तो वर-पक्ष वालों को नर्तक-दल नहीं लाने को कह दिया था और दूसरे बरातियों को खैनी तम्बाकू नहीं देने का निश्चय किया था। लेकिन ये दोनों बातें परिपाटी के विरुद्ध थीं। खैनी तम्बाकू तो सम्बन्धियों ने बरात वालों के पास

चन्द्रकान्त के बिना जाने ही भेज दिया। पर नाच का इन्तज़ाम न करने के प्रतिवादस्वरूप कुछ मनचले नौजवानों ने चन्द्रकान्त के घर पर रात को ढेले फेंके।

लेकिन सुनन्दा के विवाह में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात जो हुई वह यह थी कि विवाह का कार्य प्रचलित पौराणिक पद्धति के बदले वैदिक पद्धति से सम्पन्न हुआ। चन्द्रकान्त ने गुरुकुल हरपुर-जान से एक आर्यसमाजी पण्डित को बुलवा लिया था। उसने हवन-कुण्ड बनाकर हवन और वेद-मन्त्रों के द्वारा सारा कार्य किया। गाँव के पुरोहित निमंत्रित होकर उपस्थित अवश्य थे, पर उन्होंने सिर्फ दर्शक का काम किया और दक्षिणा ली। गाँव के लोग आश्चर्य कर रहे थे कि यह तो बिल्कुल नया तरीका है जिसमें बात-बात में पैसा और अक्षत चढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

चन्द्रकान्त ने एक और सुधार करना चाहा था पर उसमें उसे पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई। बिहार में विवाह-शादी के अवसर पर कई दिन पहले से ही स्त्रियों का गाना-बजाना शुरू हो जाता है। ख़ास-ख़ास मौके पर स्त्रियाँ भद्दे और अश्लील गाने भी बड़े उत्साह से गाती हैं। वर के छेंके के लिए जब वह गया था तब वहाँ उसने भोजन के समय आँगन में स्त्रियों को गाली गाते सुना था। प्रथा के अनुसार विवाहों में गाली गाना शुभ और अनिवार्य माना जाता है। दूसरे पक्ष के ख़ास-ख़ास सम्बन्धियों का नाम ले लेकर गाली भरे गीत गाये जाते हैं। किसी का नाम छूट न जाय इसलिए पुरुष लोग नाम कहलवा भेजते हैं।

चन्द्रकान्त ने अपनी माँ से कह दिया कि सुनन्दा के विवाह में गाली गाई जायगी तो वह भोजन नहीं करेगा। वह धमकी सफल होती दिखाई दी। लेकिन विवाह के बाद भोज के समय जब कि स्त्रियों का गाना चल रहा था और बराती व गाँव के

सम्बन्धी सब उनका आनन्द लेते हुए भोजन कर रहे थे, एकाएक चन्द्रकान्त के कान में गाली गाने की आवाज़ पड़ी। उसने भोजन करना बन्द कर दिया पर उसका असर किसी पर नहीं पड़ा। वह आधा भोजन कर चुका था। लोगों ने उसे समझाना शुरू किया कि विवाह-शादी के भोज के समय गाली गाने का पुराना रिवाज है। इसे बुरा नहीं माना जाता। रिवाज बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। पर उसने फिर भोजन में हाथ नहीं डाला। लेकिन उधर स्त्रियों ने भी अपना गाली गाने का हक नहीं छोड़ा। अन्त में सुनन्दा की बिदाई का समय आया। जब वह बिदा होने लगी तब बहुत रोई। अब वह अपने घर से दूसरे के घर में दूसरे के परिवार और कुल का अंग बनने जा रही थी। वह बिदाई बहुत करुणाजनक थी।

× × ×

सुनन्दा के विवाह के बाद चन्द्रकान्त कल्लेकुरिची जाकर अपने काम में लग गया। एक-दो ही महीनों के बाद उसके पास प्रचार कार्यालय से ईरोड जाने का आदेश-पत्र आया। कार्यालय की तरफ़ से वहाँ एक हिन्दी प्रचारक प्रशिक्षण विद्यालय खोलने का निश्चय हुआ था जिसमें चन्द्रकान्त को प्रधानाध्यापक का काम करना था। विद्यालय में तमिल-केरल और कर्नाटक प्रदेशों के ३० विद्यार्थी भर्ती किये गये थे। चन्द्रकान्त ईरोड चला गया और विद्यालय का काम शुरू हो गया। सब विद्यार्थी उसी में रहते भी थे। कावेरी नदी पास में ही होने के कारण अधिकांश उसमें स्नान के लिए जाया करते थे। छात्रावास एक आश्रम के तौर पर परिचालित होता था। जीवन बड़ा आनन्ददायक था। पर एक बात से सब बहुत परेशान रहते थे। उस घर में खटमलों की भरमार थी। दीवारों, खम्भों और दरवाज़ों पर खटमल छाये हुए थे। बहुत उपाय करने पर भी उनकी संख्या में कमी नहीं हुई।

धीरे-धीरे सब लोग अभ्यस्त होने लगे और शायद खटमलों के आक्रमण में भी पहले जैसी खूँखारी नहीं रही। लेकिन उस विद्यालय में जो असली दुखदाई बात हुई वह दूसरी ही थी। सुनन्दा के विवाह के बाद उसके साथ सूर्यकान्त भी दक्षिण भारत चला गया। मोतीहारी छोड़ने के बाद उसकी पढ़ाई बन्द तो हो ही गई थी। उधर वह गाँव के जीवन से भी ऊब गया था। ईरोड में वह भी उस विद्यालय का विद्यार्थी हो गया था। वहाँ एक तमिल विद्यार्थी से उसकी नहीं पटती थी। वह विद्यार्थी उम्र में बड़ा था। अधिक पढ़ा-लिखा था। वह सूर्यकान्त को चिढ़ाया करता था। एक दिन सूर्यकान्त ने तंग आकर उसे पटककर पीटा। उस विद्यार्थी ने प्रधानाध्यापक से नालिश कर दी। प्रधानाध्यापक की हैसियत से चन्द्रकान्त ने दफ्तर के रूलर से सूर्यकान्त को सज़ा दी। सूर्यकान्त बड़ा दुखित हुआ और कई दिन तक अपने भाई के पास आकर बातें नहीं की। चन्द्रकान्त ने उसे कर्तव्य बुद्धि से ही दण्ड दिया था, वह इसे सहन नहीं कर सकता था कि उस पर कोई पक्षपात का दोषारोपण करे। लेकिन बाद को वह सोचने लगा कि अगर सूर्यकान्त उसका भाई नहीं होता तो क्या वह उसे इतना कठोर दण्ड देता।

उस घटना के तुरन्त बाद एक दूसरी घटना घटी, जिससे चन्द्रकान्त को विद्यालय से अपनी बदली करा लेनी पड़ी। दशहरे का अवसर था। विद्यार्थियों ने सरस्वती-पूजा का आयोजन किया और आपस में उसके लिए चन्दा किया। जब वे चन्दे के लिए चन्द्रकान्त के पास आये तब उसने कहा कि चन्दा देने में तो उसे कोई आपत्ति नहीं है पर मूर्ति-पूजा के लिए सिद्धान्ततः वह चन्दा नहीं दे सकता। इसका विद्यार्थियों पर बड़ा बुरा असर पड़ा। कुछ ही दिन पहले दीपावली के अवसर पर उसकी इच्छा-नुसार विद्यार्थियों ने स्वामी दयानन्द का निर्वाण-दिवस मनाया

था। लेकिन उनकी सरस्वती पूजा के अवसर पर चन्द्रकान्त ने अपनी धार्मिक संकीर्णता का परिचय देकर विद्यार्थियों को अप्रसन्न कर दिया।

चन्द्रकात को अपनी भूल मालूम हुई। किन्तु विद्यार्थियों के साथ पहले जैसा सौहार्दभाव स्थापित नहीं हो सका। उसने कार्यालय को लिखकर अपनी बदली करली। वह वेल्लूर भेज दिया गया। वहाँ वह १-२ माह रह के काँग्रेस कमिटी से एक डेलिगेट का टिकट लेकर गया काँग्रेस देखने चला गया। वहाँ से लौटने पर कार्यालय ने उसे तमिल प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी मदुरा में कार्य करने के लिए भेजने का निश्चय किया। वह ज़िला काँग्रेस कमिटी के प्रेसिडेण्ट के नाम एक परिचय-पत्र लेकर मदुरा पहुँचा। उसे काँग्रेस कमिटी के दफ़्तर में रहने की जगह मिल गई और वहीं पहला हिन्दी-वर्ग भी खोला गया।

वहाँ वह काँग्रेस के प्रमुख नेता वकील वैद्यनाथ अय्यर से मिला। वे परिचित-से जान पड़े। गया-काँग्रेस जाते समय चन्द्रकान्त ट्रेन के जिस डिब्बे में था उसी में वह सज्जन भी सफर कर रहे थे। रास्ते भर उनके कारण डिब्बे में बहुत गुलज़ार रहा। उनके स्वभाव की जिन्दादिली और मधुरता बड़ी आकर्षक थी। वे राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के गीत बड़े उत्साह से गाते थे। उन्होंने अपने ही घर में वकीलों का एक हिन्दी-वर्ग संगठित किया। इस तरह क्रमशः शहर के भिन्न-भिन्न हिस्सों में हिन्दी के कई वर्ग खुल गये। मदुरा बहुत जल्द हिन्दी प्रचार का एक अच्छा केन्द्र माना जाने लगा।

जनसंख्या और प्रसिद्धि की दृष्टि से मद्रास के बाद मदुरा का ही नाम आता है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से मदुरा मद्रास से भी पुराना और प्रसिद्ध नगर है। मद्रास पहले एक छोटा-सा

मछुओं का गाँव था। उसका मुखिया मुत्तुराज चेन्नप्पनायकन था इसलिए उस गाँव का नाम चेन्नपटनम पड़ गया। अंग्रेजों ने मुत्तुराज के नाम पर उसका नाम मद्रास रख दिया और धीरे-धीरे वह एक शहर के रूप में बढ़ने लगा। लेकिन मदुरा नगर की कहानी इससे भिन्न है। दक्षिण भारत में ईसवी सन् के पूर्व चेर, चोल और पाण्ड्य तीन घरानों के राजा राज करते थे। मदुरा पाण्डियन राजाओं की राजधानी थी। विद्या, कला और वैभव में वह बड़ी उन्नत अवस्था में थी। संगम नाम से विद्वानों की वहाँ एक सभा थी जिससे उच्च कोटि के तमिल साहित्य के निर्माण में विद्वानों को प्रोत्साहन मिलता था। पाण्ड्य राजाओं के कला-प्रेम और भक्ति-भाव की अमर कहानी आज भी मदुरा के सुप्रसिद्ध मीनाक्षी मन्दिर के एक-एक स्तम्भ से मुखरित हो रही है। मदुरा रेलवे जंकशन से जैसे ही एक यात्री बाहर निकलता है कि पूर्व दिशा में दो फर्लांग पर सड़क के छोर पर उसे एक गगनचुम्बी गोपुरम् (मीनार) दिखाई पड़ता है। वही मीनाक्षी मन्दिर का गोपुरम् है। मन्दिर का क्षेत्रफल एक मील के लगभग है। मन्दिर दो ऊँचे प्रकोष्ठों से घिरा हुआ है। बाहरी प्रकोष्ठ की दीवारें तीस फीट ऊँची हैं। चारों दिशाओं में चार बृहद् द्वार लगे हैं। हर द्वार पर तीन सौ फीट ऊँचा गोपुरम् है जिसके पत्थरों पर नीचे से ऊपर तक मूर्तियाँ खुदी हैं। अहाते के भीतर पूर्वी भाग में सहस्र स्तम्भ वाला एक मण्डप मिलता है। मन्दिर के बड़े-बड़े स्तम्भों में बनी बड़ी-बड़ी मूर्तियों को देखकर शिल्प और कला के प्रेमी मुग्ध हो जाते हैं और आश्चर्य करते हैं। स्वयं मीनाक्षी की मूर्ति मूर्ति-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। भारत के सभी हिस्सों के यात्री बड़ी श्रद्धा और भक्ति से मीनाक्षी का दर्शन करने जाते हैं। प्रतिदिन सायंकाल नगर के नर-नारियों की वहाँ भीड़ लगी रहती है। मन्दिर नगर के बीच में बना हुआ है।

उसके चारों तरफ़ चोकोराकार एक-एक के बाद एक सीधी-चौड़ी समानान्तर सड़कों पर मुहल्लों का बनना मदुरा नगर की एक विशेषता है। मदुरा में तिरुमल नायक का महल भी एक दर्शनीय स्थान है।

मदुरा काँग्रेस कमिटी के अध्यक्ष ने चन्द्रकान्त को एक दिन भोजन के लिए अपने यहाँ निमन्त्रित किया। जब वह उनके घर पहुँचा तो उनके कार्यवश बाहर चले जाने के कारण घर की स्त्रियों ने उसे भोजन परोसकर खिलाया। लेकिन उसके बाद जो बात हुई उससे चन्द्रकान्त काफ़ी रुष्ट होकर वापिस लौटा। भोजन के बाद स्त्रियों ने उसे पत्ता उठाकर बाहर फैंक देने को कहा। इतना ही नहीं, खाने की जगह को गोबर-पानी से लीपकर शुद्ध कर देने के लिए भी कहा। चन्द्रकान्त के लिए यह पहला अनुभव था। वह व्यवहार उसे बड़ा अपमानजनक लगा। जब उसने एक-दो मित्रों से उसकी चर्चा की तब उन्होंने कहा कि अय्यंगार लोगों में छूतछात का भेद-भाव बहुत माना जाता है। भोजन के लिए बुलाने वाले एक अय्यंगार सज्जन थे। उनकी अनुपस्थिति में स्त्रियों ने चन्द्रकान्त के साथ वैसा ही व्यवहार किया था जैसा कि वे सब बाहरी लोगों के साथ करती हैं। लेकिन इससे चन्द्रकान्त को तसल्ली नहीं हुई। उसने निश्चय किया कि आगे से वह किसी अय्यंगार के घर भोजन नहीं करेगा। पर उसका वह निश्चय क़ायम नहीं रह सका। क्योंकि उसके बाद कई अय्यंगारों से उसकी मित्रता हो गई, और उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण वह उन अय्यंगार स्त्रियों के बर्ताव को भूल-सा गया।

दक्षिण में ब्राह्मणों के मुख्य दो विभाग हैं। एक स्मार्त कहलाते हैं और दूसरे वैष्णव। दक्षिण के ब्राह्मण अपने नाम के साथ शर्मा, शास्त्री, दीक्षित, अय्यर, अय्यंगार और आचार्य

आस्पद लगाते हैं। अय्यंगार और आचार्य आस्पद सिर्फ़ वैष्णव ब्राह्मण ही लगाते हैं।

स्मार्त ब्राह्मण शिव की पूजा करते हैं और श्री शंकराचार्य को अपना गुरु मानते हैं। वैष्णवों के देवता विष्णु हैं और गुरु श्री रामानुजाचार्य। रामानुजाचार्य अपने समय के एक बड़े सुधारक थे। उन्होंने सब जातियों को समान रूप से धर्मोपदेश दिया। वैष्णवों में उत्तरीय और दक्षिणीय दो वर्ग हैं। दक्षिणीय वैष्णवों के बारे में कहा जाता है कि उनके पूर्वज द्रविड़ थे जिन्हें रामानुजाचार्य ने ब्राह्मण बनाया। उत्तरीय (वड़कले) वैष्णव अपने सारे धार्मिक कार्य संस्कृत में करते हैं तो दक्षिणीय (तेनकले) वैष्णवों के कृत्य तमिल भाषा में होते हैं। उनके लिए शास्त्र भी तमिल में लिखे गये हैं। वड़कले वैष्णव बहुत कट्टर होते हैं। ये दोनों प्रकार के वैष्णव अपने ललाट पर अलग-अलग ढंग से टीका लगाते हैं। उत्तरीयों के ललाट पर अंग्रेज़ी के (Y) अक्षर तरह टीका और दक्षिणीय वैष्णवों के ललाट पर वी (V) अक्षर की तरह टीका रहता है। स्मार्त ब्राह्मण अपने ललाट पर भस्म लगाते हैं। दक्षिण में ललाट पर भस्म या टीका लगाना धार्मिक दृष्टि से अनिवार्य माना जाता है। इसे वे नामम् कहते हैं।

मदुरा में नटेश अय्यर नाम के एक प्रमुख वकील थे। उनके यहाँ कामकोटिपीठ के स्वामी शंकराचार्य आकर कुछ दिन के लिए ठहरे। प्रतिदिन उनका प्रवचन होने लगा जिसे सुनने के लिए काफ़ी नर-नारी आया करते थे। चन्द्रकान्त के वकील मित्रों ने उसे स्वामी जी से मिलने की सलाह दी। चन्द्रकान्त नटेश अय्यर के लड़के और लड़की को हिन्दी सिखाता था। वह उनके यहाँ प्रवचन के समय जाने के लिए तैयार हो गया। प्रवचन के बाद परिपाटी के अनुसार शिष्य लोग स्वामी जी महाराज के

सामने ज़मीन पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करने लगे। एक सज्जन ने चन्द्रकान्त को भी, बारी आ जाने पर, उसी तरह प्रणाम करने का संकेत किया। चन्द्रकान्त ने इनकार कर दिया। वह स्वामी जी से मिले बिना ही लौट जाने के लिए तैयार हो गया। तब एक दूसरे सज्जन ने कहा कि वह जिस तरह चाहें प्रणाम करें। उन्हें इसमें पूरी आज़ादी होनी चाहिए। चन्द्रकान्त ने आगे बढ़कर हाथ जोड़कर बड़े आदर के साथ स्वामी जी को प्रणाम किया और कुछ हिन्दी-पुस्तकें भेंट कीं। स्वामी जी को उसका परिचय दिया जा चुका था। स्वामी जी ने वन्देमातरम् और एक हिन्दी गीत सुनने की इच्छा प्रकट की। चन्द्रकान्त ने गाकर सुनाया और स्वामी जी से विदा ली। बाद को स्वामी जी ने मदुरा के हिन्दी पुस्तकालय के लिए जिसकी स्थापना के लिए धन-संग्रह का काम शुरू हो गया था, पच्चीस रुपये दान-स्वरूप भेज दिये।

मदुरा में एम. जे. शर्मा नामक एक आर्य धर्मोपदेशक कुछ वर्षों से वहाँ आर्यसमाज की स्थापना करके काम कर रहे थे। चन्द्रकान्त समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में जाने लगा। शर्मा जी साधारणतः मीनाक्षी मन्दिर के बाहर पूर्वी द्वार के पास सायंकाल मूर्तिपूजा और श्राद्धादि का खण्डन करते और वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिया करते थे। शर्मा जी ने एक दिन चन्द्रकान्त को अपनी सभा में कुछ बोलने के लिए बुलाया। चन्द्रकान्त चला गया। वह हिन्दी में बोलता जाता था और शर्मा जी हिन्दी-मिश्रित तमिल में अनुवाद करते जाते थे। श्रोताओं में दो-तीन मुसलमान भी खड़े-खड़े व्याख्या सुन रहे थे। व्याख्यान के बीच में उन्होंने किसी बात को लेकर आक्षेप किया। बस क्या था शर्मा जी उत्तेजित हो गये और छाती ठोककर शहीद होने को उद्यत हो गये। लेकिन बात बिगड़ने के पहले ही एक कॉंग्रेसी मुसलमान

जिससे चन्द्रकान्त का परिचय हो गया था, चन्द्रकान्त को उस भीड़ के बीच में देखकर पास आ गया। उसके आ जाने से बात बढ़ने नहीं पाई। एम. जे. शर्मा ने चन्द्रकान्त की बात की ग़लत व्याख्या की थी। उनकी सभा में चन्द्रकान्त के बोलने का वह प्रथम और अन्तिम अवसर था। शर्मा जी उत्तर प्रदेश के निवासी थे। पहले वे सनातन धर्म के प्रचारक थे। बाद को दक्षिण पहुँच गये और आर्यसमाज का काम करने लगे। स्वामी श्रद्धानन्द जी से जब वह मदुरा गये थे तब चन्द्रकान्त ने कहा कि मदुरा में किसी योग्य विद्वान उपदेशक को भेजना चाहिए। एम. जे. शर्मा के सम्बन्ध में उसने अपनी राय जाहिर की। स्वामी जी ने उसकी बातें सुन लेने के बाद सिर्फ़ इतना ही कहा कि "तुम बड़े नुक्ताचीन मालूम पड़ते हो।" चन्द्रकान्त के लिए स्वामी जी का वह रिमार्क एक नया पाठ सिखाने वाला सिद्ध हुआ।

उस साल काँग्रेस का अधिवेशन काकिनाड़ा में हुआ। चन्द्रकान्त उसे देखने गया। उस अवसर पर काकिनाड़ा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन बाबू राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में करने का आयोजन किया गया। राजेन्द्र बाबू अस्वस्थता के कारण नहीं आ सके। उनका भाषण अध्यक्ष-पद से श्री सेठ जमुनालाल बजाज ने पढ़ा। अध्यक्ष-पद के लिए सेठ जी का नाम जब प्रस्तावित हुआ तब पण्डित सुन्दरलाल ने समर्थन करते हुए कहा कि "मैं तो एक राजनीतिक जन्तु हूँ। पर राष्ट्रभाषा का हिमायती हूँ और सेठ जमुनालाल ने हिन्दी-प्रचार के लिए अब तक जो कार्य किया है उसको भी जानता हूँ। इसलिए मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।" दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारकों की तरफ़ से चन्द्रकान्त प्रस्ताव के समर्थन में बोलने उठा। उसने कहा, "मुझे अपने को राजनीतिक या अन्य कोई जन्तु कहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। मैं सिर्फ़ दक्षिण भारत के

हिन्दी प्रचारकों के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूँ।" उस सम्मेलन से दक्षिण के हिन्दी प्रचार कार्य को नया बल और प्रेरणा मिली।

मदुरा के पास के शहर त्रिचनापल्ली में भी हिन्दी प्रचार का काम शुरू हो गया था। वहाँ पर काम शुरू करने वाले पं० प्रताप नारायण बाजपेयी थे। वे बिहार के ही निवासी थे। उन्हें किसी भाषण के लिए जेल की सज़ा हो गई थी। जेल में जब वह मरने की दशा में आ गये तब सरकार ने उन्हें छोड़ दिया। उनके छूटने की ख़बर पाकर चन्द्रकान्त उन्हें देखने त्रिचनापल्ली गया। तीन दिन के बाद ही वे इस दुनिया से कूच कर गये। नगर के काँग्रेसी लोगों ने सम्मानपूर्वक उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की। डाक्टर राजन् ने उस वीरात्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट करते हुए उसके नम्र स्वभाव, सेवा-भाव और देश-भक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

चन्द्रकान्त त्रिचनापल्ली से लौटकर उदास रहने लगा। वह अनेक संस्थाओं में जाकर बड़े-छोटे, स्त्री-पुरुष, वकील-विद्यार्थी-अध्यापक, सब वर्ग व श्रेणी के लोगों को हिन्दी सिखाता था। लेकिन जब सिखाने का काम नहीं रहता तब उसे बड़ा सूना-सूना लगता था। वह सोचता, यह कैसा जीवन है। कोई ऐसा नहीं जो उसे अपना समझे और जिसके पास जाकर वह कुछ सुख-दुख की बात करके अपने मन को बहलाये। वह अपने मन-बहलाव के लिए बैगई नदी की रेतराशि पर जाकर बैठ जाता और नदी की धारा से जीवन की प्रेरणा लेता।

एक दिन सायंकाल नगर काँग्रेस कमिटी के दफ़्तर के सामने उसने एक सभा होते देखी। एक लड़की हिन्दी में व्याख्यान दे रही थी और एक अधेड़ उम्र का मुसलमान तमिल में उसका अनुवाद कर रहा था। सभा में एक और महिला भी बैठी थी। साफ़ जाहिर था कि दोनों उत्तर भारत की स्त्रियाँ हैं। सभा समाप्त

होने पर उसने व्याख्यान देने वाली लड़की और उस दूसरी महिला से, जो लड़की की माँ थी, परिचय किया और अगले दिन उनके ठहरने की जगह पर जाकर उनसे मिलने की बात कही। उस लड़की ने भी आग्रहपूर्वक उसे अगले दिन आकर मिलने के लिए निमन्त्रित किया। चन्द्रकान्त उस लड़की के बारे में सोचते-सोचते होटल में भोजन करके अपने कमरे को लौटा। उसे सोचने के लिए एक नई बात मिल गई थी। कब सवेरा होगा और कब दोपहर होगा जब कि वह नियत समय पर जाकर उनसे मिलेगा, इसके लिए वह अधीर हो उठा।

दूसरे दिन जब वह उनके स्थान पर गया तब देखा माँ और बेटी दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं। उन्होंने बतलाया कि वे पंजाब की रहने वाली हैं। रामेश्वरम् आई थीं। वहाँ भी कुछ सभाओं में सरस्वती, उस लड़की, के भाषण हुए हैं। वह दुभाषिया रामेश्वरम् का है। उसे मदद के लिए साथ मदुरा लाई हैं। चन्द्रकान्त काफ़ी देर तक उन दोनों से बातें करता रहा। उसे यह जानकर खुशी हुई कि वे एक सप्ताह तक मदुरा में ठहरने वाली हैं। चन्द्रकान्त प्रतिदिन उनके यहाँ आने-जाने लगा। जैसे-जसे परिचय बढ़ता गया वैसे-वैसे आत्मीयता भी बढ़ती गई और यह खयाल दुखदाई मालूम होने लगा कि जुदाई का दिन करीब आता जा रहा है।

वह दिन भी आ गया। वे दोनों मद्रास के लिए रवाना होने को तैयार हो गईं। काश, चन्द्रकान्त उन्हें रोक सकता। पर वे उसकी कौन थीं कि वह उन्हें रोक सकता? वह उन्हें रोक नहीं सकता था। पर उनके साथ जा सकता था। पर कहाँ तक जाता? क्यों जाता? रुखसत के दिन वह उन्हें पहुँचाने स्टेशन गया। फिर उसके मन में आया कि कुछ दूर साथ सफ़र करके उन्हें क्यों न बिदा कर आये। उसने अपने लिए भी टिकट कटवा लिया

और ट्रेन में सवार हो गया। दो-तीन स्टेशन के बाद जब उस स्टेशन पर गाड़ी रुक गई जहाँ तक के लिए उसने टिकट लिया था तब उसने दोनों से विदा ली। ट्रेन छूटते-छूटते सरस्वती ने कहा—"मैं पत्र लिखूँगी। आप भी पत्र देंगे।" उसके बाद गाड़ी चलदी। वह प्टलेफ़ॉर्म पर खड़ा-खड़ा देखता रहा। वह डिब्बे की खिड़की से सिर बाहर निकालकर अपना रुमाल हिलाती रही और रुमाल हिलाते-हिलाते आँखों से ओझल हो गई। चन्द्रकान्त मद्रास लौट आया। उसे आश्चर्य हुआ कि वह अपरिचिता लड़की कैसे इतनी परिचिता-सी, अपनी सी बन गई जिसे खोकर वह स्वयं खोया-खोया-सा महसूस करने लगा। जब तक वह सामने थी तब तक उसका बाह्य रूप उसकी आँखों के सामने था और उससे अधिक कुछ सोचने की आवश्यकता उसे मालूम न हुई। वे चन्द दिन, चन्द घण्टे जो उसने उसके साथ बिताये कितने आनन्ददायक थे। उसने उस अल्प समय में ही उसके हृदय में कैसी स्निग्धता, स्नेह और मधुरता भर दी थी। वह चली गई, लेकिन अपनी याद छोड़ गई—अपने रूप की याद, अपनी वाणी की याद, अपनी बातों की याद, अपनी नज़रों की याद, अपने सरल सुन्दर स्नेह की याद। चन्द्रकान्त को मानों जीवन में एक नई चीज़ मिल गई—एक नया स्पर्श, एक नई झलक एक नई अनुभूति। उसके हृदय में एक ख़ुशी छा गई। उस रात को वह बहुत देर तक पड़े-पड़े सोचता रहा। सरस्वती की पहली मुलाक़ात के बाद से आख़िरी बिदाई के समय तक की एक-एक बात, छोटी से छोटी बात उसे याद आने लगी और उस याद में उसे एक सुख अनुभव होने लगा। सरस्वती ने कैसे विश्वासपूर्वक उसे अपने स्नेह-रज्जू में बाँध लिया। चन्द्रकान्त को जब नींद नहीं आई तब वह उठ बैठा और लैम्प जलाया। काग़ज़ और क़लम लेकर लिखने लगा। सरस्वती का पत्र पाने तक वह

अपने हृदय के भावों को दबाकर नहीं रख सकता था। उसने लिखना शुरू किया,

"सरस्वती,

तो तुम चली गई! मुझे भाई बनाकर और अपने को बहन कहलवाकर चली गई। भाई और बहन का मधुर सम्बन्ध, आकस्मिक सम्बन्ध कितना सुन्दर, कितना सुखद लगता है! एक बात कहूँ, तुम्हारे चले जाने के बाद ही मैं तुम्हें अधिक जानने लगा हूँ। अधिक समझने लगा हूँ। और कहूँ? तुम्हें अधिक प्यार करने लगा हूँ। इससे अधिक क्या कहूँ? क्या कह सकता हूँ? जब मनुष्य अहं की दीवार को तोड़कर, बाँध तोड़कर बहने वाली नदी की तरह किसी तरफ़ आकृष्ट होता है तब वह प्रेम करता है। यह मैं पहले-पहल आज अनुभव कर रहा हूँ। आज मैं अपने बारे में नहीं सोच रहा हूँ। आज एक मात्र तुम, तुम्हारा सुन्दर नाम, तुम्हारी मंजुल मूर्ति और तुम्हारी सुखद स्मृति—ये ही मेरे मन, मस्तिष्क, बुद्धि और हृदय पर छा रहे हैं। तुम चली गई इस ख्याल से एक वेदना होती है पर वह वेदना मधुर लगती है। तुम चली गई किन्तु मुझे कुछ देकर गई हो— अपनी याद, अपनी जुदाई की वेदना। आज यही मेरी सबसे बहुमूल्य वस्तु मालूम हो रही है। मैं इसे सँजोकर रखूँगा। इसकी रक्षा करूँगा। तुम्हें विदा करने के बाद मैं बहुत खिन्न हो गया हूँ। अब रात के दो बज रहे हैं। जब नींद नहीं आई तब बैठकर तुम्हारे लिए एक पत्र लिखने बैठा। तुम्हारी याद में यह मेरा पहला पुष्प है। तुम्हारा जब तक पत्र नहीं मिलेगा मैं प्रति दिन तुम्हारी स्मृति में एक पुष्प अर्पित करता रहूँगा और सब एक साथ तुम्हारे पास भेज दूँगा।

—तुम्हारा चन्द्र"

दूसरी रात को उसने लिखा,

"सोचता हूँ, तुम ट्रेन में बैठी चली आ रही हो। आगे की बातें सोचती जाती होगी। लेकिन क्या पीछे की बातें भी, जिन्हें तुम छोड़े जा रही हो, उनकी याद भी आती है? आज मैं उस शाम की सभा और तुम्हारे व्याख्यान के बारे में सोच रहा था। वह बात मैं भूल-सा ही गया था। पर उसी कारण तो तुमसे मेरी मुलाक़ात हुई, तुम मुझे मिलीं। कैसी वह शुभ घड़ी थी! तुमने व्याख्यान देना कहाँ से सीखा? तुम बोलते समय ऐसी लगती थीं मानों कोई देव-कन्या बोल रही हो। देव-कन्या क्या तुमसे अधिक पवित्र, प्रेमल और मधुर हो सकती है? मैं तुम्हें एक देव-कन्या के रूप में ही देखता हूँ, देखना चाहता हूँ और तुम्हारा ध्यान और अर्चना करना चाहता हूँ। लेकिन मैं एक और बात भी चाहता हूँ। वह यह है कि तुम मुझे नहीं भुलाना, मुझे याद रखना। मुझे भुला दोगी तो मुझे कितना दुख होगा?"

उसका तीसरा पत्र था,

"आज मेरे यहाँ एक अतिथि आया है। वह स्थानीय अमेरिकन कालेज का विद्यार्थी है। मेरे एक मित्र के साथ पहले एक बार वह मुझ से मिला था। उसने मुझे अपनी एक कहानी सुनाई है और पूछा है कि उसे सुन लेने के बाद भी क्या मैं उसे अपने यहाँ शरण दे सकता हूँ। मैंने कहा, अच्छा अभी मेरे यहाँ ठहरो, बाद को इस पर विचार करके उत्तर दूँगा। कल उसके बारे में विस्तार से लिखूँगा। आज इतना ही जान लो कि वह अपने माँ-बाप से झगड़ा करके घर से चला आया है। उसके पिता एक वकील हैं। यहाँ से ४०-५० मील दूर एक कस्बे में वकालत करते हैं। यह युवक अपने पिता के इच्छानुसार विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस बात को लेकर पिता और पुत्र में झड़प हो गई। पिता ने कह दिया—"मेरी इच्छा के अनुसार नहीं चलोगे तो मेरे

घर में तुम्हें कोई स्थान नहीं है।" और यह युवक घर से निकल पड़ा। यह पैदल चलकर यहाँ आया है। यह रास्ते के अपने अनुभव सुना रहा था। कहता था कि गाँव के बाहर रहने वाले परयों (अन्त्यज्यों) के पास जाकर जब उसने पीने के लिए पानी माँगा तब उन्होंने पानी देने से इन्कार कर दिया। क्योंकि इसके ब्राह्मण होने की बात छिपी नहीं रह सकती थी। और वे ब्राह्मण को अपना छुआ पानी पिला नरक में जाने का काम नहीं कर सकते थे। इसलिए उसे उन्होंने पानी नहीं दिया। अच्छा, उसके बारे में आज इतना ही···। इस समय तुम कहाँ हो? क्या अपने वचन के अनुसार मुझे पत्र लिखा है? इस युवक की कहानी सुनकर मैं बहुत सी बातें सोचने लगा हूँ। लेकिन तुम्हारी ही स्मृति तीव्र होती जा रही है। अस्तु। तुम्हारा पत्र पाने के लिए मन की अधीरता बढ़ती जा रही है। तुम्हारे बारे में सोचने और चिन्तन करने के अलावा और कुछ करने को जी नहीं चाहता। हृदय में सिर्फ़ यही आवाज़ उठ रही है कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अपने शरीर के रोंये रोंये से, हृदय की सारी भावनाओं से, दिल के सारे जोश से और इस लोक और परलोक को समझकर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

× × ×

उसका अगला पत्र था।

"उस युवक की सारी बातें आज मैं तुम्हें लिखना चाहता हूँ। उसने कहा कि उसका यह निश्चय है कि आगे से वह अपने पिता से एक पैसा भी नहीं लेगा। स्वयं किसी दुकान में या किसी होटल में काम करके पैसा कमायेगा। उसी से अपनी जीविका चलायेगा और आगे की पढ़ाई जारी रखेगा। तुम पूछोगी, आखिर वह यह सब करने को क्यों तैयार हुआ है? तुम्हें सुनकर आश्चर्य तो नहीं होगा? इसके पीछे एक प्रेम-कहानी है। यह युवक एक लड़की को प्यार करता है। पर वह एक बाल-विधवा

है। उसके माता-पिता इसके इस प्रेम के विरुद्ध हैं। लेकिन यह युवक अपना निश्चय बदलने को तैयार नहीं है। इसका निश्चय उस बाल-विधवा से ही विवाह करने का है। बस, यही उसके घर से इस तरह निकलने की कहानी है। अहा, प्रेम कैसी गजब की चीज है। वह मनुष्य को क्या-क्या बना देती है! उससे क्या-क्या नहीं करवाती है! आज मैंने एक पुस्तक में प्रेम का अद्भुत वर्णन पढ़ा है। लैला-मजनू के प्रेम का वर्णन है। लिखा है, लैला जा रही थी। उसका प्रेमी मजनू उसके पीछे-पीछे चल रहा था। हवा से लैला का कपड़ा हिला। मजनू ने समझा, वह उसके ठहरने का इशारा है। वह वहीं ठहर गया। घण्टे, दिन, हफ्ते महीने और साल गुजर गये। वह वहीं रुका रह गया। उसके चारों तरफ़ घास उग आई और उससे उसका बदन ढक गया। पर दीवाना मजनू वहीं खड़ा रह गया। सिर्फ़ लैला की याद करते खड़ा रहा। लैला के सिवाय और किसी बात का उसे ख्याल नहीं रहा। जब उससे कहा गया, मजनू चलो, अल्लाह तुम्हें बुलाता है तब वह बोला, 'जाकर कह दो कि अल्लाह को मिलना हो तो मजनू बनकर आ जायँ।'

यह वर्णन और इस युवक की बातें दोनों विह्वल करने वाली हैं। सोचता हूँ, काश मैं भी एक मजनू होता।"

× × ×

अगला पत्र—

"चार दिन से मैंने तुम्हें पत्र नहीं लिखा है। मैं मद्रास गया हुआ था। वहाँ हिन्दी प्रचारकों का एक सम्मेलन था। एक सज्जन जिनका नाम भाई पुरुषोत्तम केशव कोतवाल है, अध्यक्ष बने थे। अजीब शक्ल-सूरत के आदमी हैं। गौर वर्ण, ज्योति-पूर्ण आँखें, तेज सुरीली आवाज, साधु का-सा बाना। जब जोश में आकर बोलते तब ऐसा लगता मानो अग्नि-वर्षा हो रही है। ऐसे वे

सम्मेलन के अध्यक्ष । तुम जानना चाहती हो कि मैंने सम्मेलन में क्या किया? मैंने एक लेख पढ़ा। किस विषय पर? प्रेम पर। हँसोगी तो नहीं? प्रेम में कैसा जादू है? उसकी स्मृति में कैसी प्रेरणापूर्ण शक्ति है, उसकी लपट कितनी वेदनाकारी है? प्रेम-पथ का पथिक उसी का ध्यान करता है, उसी का गान करता है और उसी की साँस लेता है।

तुम मेरी कौन हो? लौकिक दृष्टि से कौन हो? हम एक दूसरे को अच्छी तरह जानते भी तो नहीं। हमारी भेंट जुगनू की चमक की तरह हुई। लेकिन जब उस दिन को याद करता हूँ जब कि तुमने मुझे भाई कहा, तब मेरी आँखों में आनन्दाश्रु आ जाते हैं। तुम अपने को भाई-विहीन समझती थीं। मुझ में तुमने अपना भाई पाया। मुझ पर विश्वास किया, मुझ से स्नेह किया। तब मैं तुम्हें प्यार क्यों न करूँ? वास्तव में मैं तुम्हें प्यार नहीं करता। तुम में जो प्रेम है उसे प्यार करता हूँ। मैं किसी भी कार्य में लगा रहूँ तुम्हें अपने सामने प्रसन्न मुद्रा में हाजिर पाता हूँ और मुझे थकान नहीं मालूम होती। जब एकान्त में खाली बैठता हूँ तब तुम्हारा चिन्तन करके मग्न हो जाता हूँ। जब निद्रित हो जाता हूँ तब भी तुम्हारी सुखद स्मृति अवचेतन मन में बनी रहती है।

"याद उसकी हर घड़ी आती मुझे,
रूप उसका चित्त में बसता सदा,
प्रेम की वह मूर्ति हर दम सामने,
चित्र की-सी नृत्य करती सर्वदा।
प्रथम दर्शन के समय मैंने उसे,
दे दिया सर्वस्व क्या उन्माद है?
कुछ नहीं मेरा रहा संसार में,
शेष केवल एक उसकी याद है।"

× × ×

उसके दूसरे दिन चन्द्रकान्त को सरस्वती का एक पत्र मिला और उसने जवाब में लिखा—

"आखिर तुम्हारा पत्र इतने दिनों की उत्सुक प्रतीक्षा के बाद मिला। मैंने उसे कई बार पढ़ा। इतना छोटा होने पर भी वह मुझे बहुत मूल्यवान मालूम हुआ। मुझ नाचीज़ को तुमने कितना बड़ा गौरव प्रदान किया है। मुझ निर्धन को कितना धनी बना दिया है। जिस दिन मैंने तुम्हारे स्नेहपूर्ण मुखमण्डल पर वह प्रसन्नता देखी, तुम्हारी आँखों में वह विश्वास पाया, उसी दिन से मैं एक बहुत गहरे अर्थ में तुम्हारा हो गया।

दुनिया हमारे सम्बन्ध को नहीं समझ सकती, नहीं मान सकती। किन्तु दो हृदय एक कोमल धागे में बँध गये हैं। हम भले ही एक दूसरे से बहुत दूर रहें। सम्भव है इस जीवन में फिर एक-दूसरे से न मिलें। तो भी वह कोमल धागा हमें बाँधे रहेगा, और हम अदृश्य जगत् में भी सुमिलन के आनन्द का उपयोग करते रहेंगे।

तुमने जो पता दिया है उस पते पर मैं अब तक के लिखे अपने सब पत्र एक साथ तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। तुम्हारे जाने के बाद बीच में चार दिन छोड़कर बाक़ी हर दिन मैंने तुम्हारे लिए पत्र लिखा है। इन पत्रों को लिखते समय मैं आत्मिक जगत् में तुम्हारे साथ एक घनिष्ठ सम्पर्क का अनुभव करके आनन्दित हुआ हूँ। आशा है, इन्हें पढ़ते समय तुम को भी थोड़ा-बहुत आनन्द आयेगा।

उस विद्यार्थी के बारे में भी दो शब्द लिखता हूँ। उसने यहाँ कोई काम ढूँढ़ने की बड़ी कोशिश की। पहले कहीं काम नहीं मिला। जो काम दे सकते थे उन्होंने उसे सन्देह की दृष्टि से देखा और कह दिया कि काम नहीं है। आखिर में उसने एक होटल में नौकरी कर ली है। कॉफ़ी और नाश्ता परसने और खाकर जाने

वालों का पत्ता उठाकर फेंकने का काम उसे मिला है। वेतन निश्चित नहीं हुआ है। फिलहाल उसे नाश्ता और भोजन मिला करेगा। वह दृढ़ स्वभाव का युवक है। वह मेहनत करके कोई भी काम करने में अपनी बेइज्जती नहीं समझता। वह किसी के सामने झुकने वाला नहीं है। मेरे मन में उसके लिए बहुत आदर-भाव है। मैंने उसके मामा को पत्र लिख भेजा है और उसे बुलाया है। उसके आने पर आशा है समझौते का कोई रास्ता निकल जाय।

अब इसे यहाँ बन्द करता हूँ। आशा है तुम्हारी यात्रा बिना किसी खास असुविधा के पूरी हो रही है। पूज्य माताजी को मेरा नमस्कार कहना। शुभकामनाओं और प्रेमसहित।

—तुम्हारा चन्द्रकान्त"

चन्द्रकान्त ने अपने सब पत्र रजिस्ट्री से सरस्वती के नाम रवाना कर दिये। उसके कुछ ही दिनों के बाद मदुरा से उसका तबदला हो गया। कई दिनों तक वह इस प्रतीक्षा में रहा कि सरस्वती उसके पत्र पाकर उत्तर भेजेगी। पर कोई उत्तर नहीं आया। एक-दो महीने के बाद किसी ने उसे खबर दी कि डाकिया उसे खोज रहा था। वह जाकर डाकिये से मिला। डाकिये ने बतलाया कि डेड लेटर आफ़िस से लौटकर एक हफ्ते से यहाँ एक रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़ा आकर पड़ा था। उस पर पुरी, मदुरा और मद्रास आदि की मुहर लगी थी। मैंने आपसे मिलने के लिए बार-बार कोशिश की। जब आप नहीं मिले तब उसे फिर डेड लेटर आफ़िस को भेज दिया।

इस तरह चन्द्रकान्त की प्रथम प्रेमार्चना के पत्र डेड लेटर आफ़िस की भेंट चढ़े।

५

अनोखा संकल्प

चन्द्रकान्त मदुरा से स्थानान्तरित होकर मद्रास पहुँचा। कार्यालय ने उसे वहाँ नव स्थापित हिन्दी प्रचारक विद्यालय में पढ़ाने का काम करने के लिए बुलाया था। लेकिन मुश्किल से उसने वहाँ दो सप्ताह काम किया होगा कि उसे मद्रास से बाहर जाने को कहा गया। बेलगाँव में महात्मा जी की अध्यक्षता में काँग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। उसके लिए स्वयंसेवक तैयार किये जा रहे थे। हिन्दुस्तानी सेवा-दल के संचालक डॉ० एन. एस. हर्डीकर ने एक स्वयंसेवक शिविर में हिन्दी की शिक्षा देने के लिए एक हिन्दी प्रचारक की माँग की थी। कार्यालय ने चन्द्रकान्त को ही भेजने का निश्चय किया।

बेलगाँव के पास ही मुकुटखान हुबली नामक एक गाँव में शिविर खोला गया था। नदी के पास ही फूस की झोंपड़ियाँ बनवा दी गई थीं। प्रशिक्षण के कार्यक्रम में कवायद आदि के साथ पखाना-सफ़ाई का काम भी शामिल था। चन्द्रकान्त ने उस शिविर में शिक्षक का काम करने के साथ-साथ सफ़ाई के काम में भी भाग लिया। शिविर का काम बड़े उत्साह से चला। लेकिन चन्द दिनों के बाद ही एक ऐसी दुर्घटना हो गई कि सारे शिविर में शोक छा गया। शिविर में शिक्षक का काम करने के लिए एक युवक आया। तीन ही दिन के बाद नदी में डूबने से उसकी मृत्यु हो गई। पहले तो लाश का पता ही नहीं लगा। तीसरे दिन लाश जहाँ डूबी थी, वहीं पानी पर उतराती पाई गई।

उस शिविर का एक स्वयंसेवक उस मृत्यु से सबसे अधिक

शोकाकुल था । वह उस युवक के साथ उस दिन स्नान के लिए गया था । उसी ने शिविर में आकर उसके डूबने की खबर दी थी। उस दुर्घटना के बाद वह बराबर मौन रहने लगा । एक दिन जब चन्द्रकान्त शाम को टहलने के लिए निकला तब उसने उसके साथ चलने की अनुमति माँगी और चन्द्रकान्त के साथ चल पड़ा । उसने कहा, "मैं आप से कुछ विशेष बातें करना चाहता हूँ । एक बात को लेकर मेरे हृदय में तूफ़ान मचा हुआ है। मैं उसे सहन करने में असमर्थ हो रहा हूँ। अगर आप मेरी बात सुन लें तो मैं बड़ा अनुगृहीत होऊँगा।"

चन्द्रकान्त ने उसे कह डालने के लिए उत्साहित किया और स्वयंसेवक ने कहना शुरू किया, "नायक जी मेरे परम मित्र थे। मैं उन्हें अपने बड़े भाई से भी अधिक आत्मीय मानता था। हम दोनों उस दिन स्नान के लिए निकले। घूमते-घूमते शिविर से दूर उस घाट पर पहुँच गये। वहाँ स्नान करने हम उसके पहले कभी नहीं गये थे। हम दोनों पानी में घुसे। इस घाट की तरफ़ पानी घुटने बराबर ही था । इसलिए हम मध्य धारा की तरफ़ बढ़े। मैं मज़ाक में चुल्लू में पानी ले लेकर नायक जी पर छिड़कने लगा। वे अपना बचाव करते हुए आगे बढ़ते गये । मैंने पानी छिड़कना जारी रखा । वह पानी में धँसते गये और धँसते-धँसते गहरे पानी में पहुँच गये । वहाँ पहुँचकर वह ऊबडूब करने लगे। मैंने अलग से ही देखा कि वे डूब रहे हैं । मैं समझ गया कि उन्हें तैरना नहीं आता । उन्होंने तैरने की कोशिश ही नहीं की । मैं झट उनके पास पहुँच गया। उन्होंने मुझे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। डूबने वाले की पकड़ में आना खतरनाक समझकर मैं अपने को छुड़ाकर थोड़ा अलग हो गया। मैंने दूर से ही तैरते हुए उनका यज्ञोपवीत पकड़ लिया और उन्हें खींचा । लेकिन यज्ञोपवीत टूट गया। तब मैं

उन्हें इस तरफ़ खींच लाने का विचार छोड़कर बिल्कुल पास पड़ने वाले उस पार के किनारे पर पहुँचा देने के लिए उन्हें हाथ बढ़ाकर ठेलने लगा। पर दुर्भाग्य से उस तट पर पानी और भी गहरा था। कुछ ही क्षणों के बाद उनका शरीर अदृश्य हो गया। मैंने डुबकी लगाकर यह पता लगाने की कोशिश की कि उनका शरीर किधर गया। लेकिन पता नहीं चला। मैं डर गया। किनारे आकर एक बार फिर मुड़कर देखा। नदी बिल्कुल शान्त थी। कुछ नहीं दिखाई पड़ा। मैं दौड़कर शिविर में पहुँचा और ख़बर दी कि नायक जी डूब गये। उसके बाद का सारा हाल आपको मालूम ही है। उस दिन से मैं अपने को उनका घातक समझकर पागल हो रहा हूँ। मैंने ही उन्हें डुबाया है—यह ख़्याल मुझे खाये डाल रहा है। अब मेरी शान्ति का एक ही मार्ग है। वह है आत्महत्या। लेकिन मैं इस बात को प्रकट करके मरना चाहता था। आपकी सहृदयता ने मुझे आपसे यह साफ़-साफ़ खोलकर कह देने को उत्साहित किया है। आपने मेरी बातें सुनकर मुझ पर बड़ी कृपा की है। अब मैं शान्ति से प्रायश्चित कर सकूँगा।" इतना कहकर वह स्वयंसेवक फूट-फूट-कर रोने लगा।

चन्द्रकान्त उसका हाथ पकड़कर एक चट्टान पर बैठ गया। नायक के सम्बन्ध में उसने कई प्रश्न पूछे। उस स्वयंसेवक ने बतलाया, "वे पहले कालेज में पढ़ते थे। असहयोग आन्दोलन शुरू होने पर कालेज की पढ़ाई छोड़ दी और पूना के तिलक राष्ट्रीय महाविद्यालय में भर्ती हो गये। हाल ही में उन्होंने महाविद्यालय की पढ़ाई समाप्त की है। अब कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने वाले थे। वे इस शिविर में राजनीति की शिक्षा देने के लिए आये। लेकिन हाय! मेरे कारण उनकी इस तरह अकाल-मृत्यु हो गयी।" चन्द्रकान्त ने उस स्वयंसेवक को बहुत समझाया-बुझाया और अन्त में कहा, "तुम अपने को अपराध

ही समझते हो तो प्रायश्चित्त का उपाय आत्महत्या नहीं है। पर उनके पद-चिन्हों का अनुसरण करना है। उनकी मृत्यु से समाज को जो क्षति पहुँची है उसे पूरा करना ही अब तुम्हारा धर्म है। अतः अब अपने मन को शान्त करके अपने कर्त्तव्य-पालन में लग जाओ।" दोनों ने काफ़ी देर तक बातें कीं। उस स्वयंसेवक को चन्द्रकान्त ने अपने कमरे में ही सोने के लिए बुला लिया और बराबर उस पर विशेष ध्यान रखने लगा।

बेलगाँव में काँग्रेस का अधिवेशन शुरू होने के दस दिन पहले शिविर बन्द कर दिया गया। चन्द्रकान्त ने काँग्रेस का अधिवेशन देखकर मद्रास लौटने का निश्चय किया। बेलगाँव में काँग्रेस की स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री गंगाधरराव देशपाण्डे ने ठहरने के लिए उसे एक कमरा दे दिया। वहाँ डॉ० हर्डीकर से भी चन्द्रकान्त की मुलाक़ात हुई। डाक्टर साहब ही काँग्रेस के स्वयंसेवकों के प्रधान थे। शिविर में चन्द्रकान्त जब तक रहा, स्वस्थ रहा। यद्यपि अन्य करीब-करीब सब मलेरिया से दो-चार दिन के लिए पीड़ित हुए। लेकिन बेलगाँव जाने के तीन दिन बाद ही चन्द्रकान्त को अंतरिया ज्वर आने लगा। डॉक्टर साहब ने उसकी देख-भाल का प्रबन्ध कर दिया। जब उसे ज्वर चढ़ता तो अति को पहुँच जाता। उसे लगने लगा कि वह अब नहीं बचेगा। डॉक्टर साहब उसे तसल्ली देते कि वह जल्द ही ठीक हो जायगा। घबराने की कोई बात नहीं है। एक दिन ज्वर में परेशानी बेहद बढ़ गई। उसी हालत में उसने उठकर अपना बक्सा खोला और उसमें से एक काग़ज़ निकाला। उसने उसे फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वह एक बीमा कम्पनी का दस्तावेज़ था। उसने एक एजेन्ट की बातों में आकर मद्रास में अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ एक बड़ी रक़म के लिए बीमा कराया था। उसके लिए उसने पहली किश्त की ही रक़म चुकाई थी। दूसरी किश्त

की रक़म चुकाने की चिन्ता सर पर सवार थी। उसकी आय की दृष्टि से वह रक़म कुछ ज्यादा थी। अतः उसे उस बीमा की बात से अपने पर एक प्रकार की झुँझलाहट सवार थी। वह उस चिन्ता से हमेशा के लिए मुक्त होना चाहता था। अब बुख़ार की उत्तेजना में दस्तावेज़ को फाड़कर वह मुक्त हो गया। उसके साथ ही वह बुख़ार से भी मुक्त हो गया। वह दूसरे दिन से ही उठकर घूमने-फिरने लगा और काका साहब कालेलकर के नेतृत्व में सफ़ाई विभाग के काम में अपनी सेवायें देने लगा। साथ ही काँग्रेस-अधिवेशन भी देखा। मद्रास कार्यालय से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी प्रचारक' मासिक पत्र का प्रतिनिधि बनकर काँग्रेस में जाने के लिए उसने अपने लिए एक पास प्राप्त कर लिया था।

महात्मा जी उसी साल जेल से छूटे थे। देश ने उन्हें काँग्रेस का अध्यक्ष चुनकर उनके नेतृत्व में अपना विश्वास प्रकट किया। अधिवेशन के अवसर पर प्रतिनिधियों और दर्शकों की अपार भीड़ थी। गान्धी जी का एक छोटा-सा भाषण हुआ। वह तब तक के काँग्रेस के अध्यक्षीय भाषणों में सबसे छोटा भाषण था। उसमें गान्धी जी ने देशवासियों से अपील की कि अहिंसा और रचनात्मक कार्यों के द्वारा अपने को स्वराज्य प्राप्त करने के योग्य बनावें।

बेलगाँव कर्नाटक और महाराष्ट्र की सीमा पर बसा एक शहर है। महाराष्ट्र-संस्कृति की नागरिकों के जीवन पर पूरी छाप है। मराठी भाषा उत्तरीय परिवार की, जिसे आर्य परिवार भी कहा जाता है, भाषा है। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम दक्षिणी या द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। मराठी में हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की भरमार से चन्द्रकान्त को बेलगाँव में ऐसा लगा मानो वह स्वभाषा-भाषी लोगों के मध्य आ गया हो। वहाँ पुरुषों के पहनावे में कोई विशेष अन्तर नहीं है। लेकिन

महाराष्ट्र-स्त्रियों के साड़ी पहनने का ढंग दक्षिणी है। यद्यपि उनकी साड़ियाँ तमिल स्त्रियों की साड़ियां की तरह लम्बी नहीं होतीं। महाराष्ट्रों के भोजन में यह विशेषता है कि वे दक्षिणियों की तरह तीखे और खट्टे स्वाद के प्रेमी नहीं हैं। उल्टा उनकी दाल और तरकारी में भी गुड़ मिला दिया जाता है। काँग्रेस के भोजनालय में सबसे अधिक किसी चीज़ की माँग होती थी तो वह नमक था। महाराष्ट्र लोग एक तरह की मीठी चीज़ बनाते हैं। वे दही को कपड़े में रखकर टाँग देते हैं और कुछ घण्टे तक टँगा छोड़ देते हैं। जब सारा पानी निकल जाता है तब उसमें चीनी, केसर और इलायची डालकर खूब मिलाते हैं। उससे जो बनता है उसे वे श्रीखण्ड कहते हैं। वह अत्यन्त मीठा और स्वादू होता है। मौलाना शौकतअली ने एक सार्वजनिक सभा में श्रीखण्ड की तारीफ़ की।

बेलगाँव काँग्रेस के बाद चन्द्रकान्त ने कुछ दिन हुबली के हिन्दी प्रचारक श्याम जी के साथ बिताये। उसके बाद दयानन्द शताब्दी उत्सव में, जो मथुरा में होने जा रहा था, शामिल होने के लिए वह रवाना हुआ। पहले वह बम्बई गया। वहाँ आर्य-समाज मन्दिर में जाकर ठहरा और घूम-घाम कर शहर देख चुकने के बाद महात्माजी का साबरमती आश्रम देखने के लिए अहमदाबाद गया। बापू आश्रम में नहीं थे। वहाँ सबसे पहले जिस सज्जन से उसकी भेंट हुई वह पण्डित हरिभाऊ उपाध्याय थे—पतले-दुबले शान्ति और संयम की मूर्ति। उनके साथ बातें हो ही रही थीं कि एक लम्बे कद के सज्जन झूमते हुए आते दिखाई दिये, हरिभाऊ जी ने बतलाया कि वह पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी आ रहे हैं। उनके पास आ जाने पर हरिभाऊ जी ने उन्हें यह कहकर चन्द्रकान्त का परिचय दिया कि ये मद्रास के हिन्दी प्रचारक चन्द्रकान्त जी हैं। बनारसीदास जी चन्द्रकान्त को बुलाकर अपने

कमरे में ले गये। मानो वह उनका छोटा भाई हो। चन्द्रकान्त बनारसीदास जी का नाम जानता था। एक बार उसने अखबारों में पढ़ा था कि साबरमती आश्रम के एक हिन्दी शिक्षक ने चर्खा चलाने से इन्कार कर दिया है। वह बनारसीदास जी ही थे। बनारसीदास जी के साथ चन्द घण्टे बिताकर चन्द्रकान्त को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्व-रचित अपनी कविताएँ भी चन्द्रकान्त को सुनाई और दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार कार्य के सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी के साथ बातें कीं।

चन्द्रकान्त का अगला पड़ाव दिल्ली था। रात का समय यात्रा में कट गया। जिस छोटे डिब्बे में चन्द्रकान्त सफ़र कर रहा था उसमें एक और मुसाफ़िर था। उससे बीच-बीच में कई तरह की बातें होती रहीं। वह मुसलमान था। इसलिए चन्द्रकान्त ने गुजरात के मौजूदा हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध के बारे में भी उससे कई सवाल किये। उसने कहा कि खान-पान के सम्बन्ध में भेद-भाव के सिवा और कोई खास भेदभाव हिन्दू-मुसलमानों में नहीं है। जब सवेरा होने को आया तो उस मुसाफ़िर को नमाज़ पढ़ने के पहले मुँह-हाथ धोने के लिए पानी की ज़रूरत पड़ी। लेकिन उसके पास पानी लाने के लिए कोई बर्तन नहीं था। चन्द्रकान्त ने अपना मद्रासी लोटा—कूजा—उसे दे दिया। चन्द्रकान्त मद्रासी लुंगी पहने हुए था। उस मुसाफ़िर के साथ उसने साफ़ हिन्दुस्तानी में बातें कीं। उस पर उसे अपना लोटा भी दे दिया। उस मुसलमान को पूरा यक़ीन हो गया कि लोटा देने वाला मुसाफ़िर भी मुसलमान ही है। अब वह और खुलकर उसके साथ बातें करने लगा। जब एक स्टेशन पर वह उतरा तब चन्द्रकान्त के प्रति शुक्रिया अदा करते हुए बिदा ली। लेकिन उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब चन्द्रकान्त ने उससे कहा, "मियाँ जी, मेरे बारे में आपको एक भ्रम हो गया है। मुझे आप शायद मुसलमान मान बैठे हैं।

लेकिन मैं हूँ हिन्दू और फिर एक ब्राह्मण।" उस मुसलमान मुसाफ़िर के मुँह से निकला, "यह कैसे हो सकता है? आपने अपना लोटा मुझे कैसे दे दिया ?" चन्द्रकान्त ने जवाब दिया, "हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई हैं। मजहब के नाम पर छूतछात का व्यवहार करना ग़लत बात है।"

दिल्ली में चन्द्रकान्त सीधे चाँदनी चौक में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के निवास-स्थान पर गया और स्वामी जी से भेंट करके अपनी यात्रा का उद्देश्य उन्हें बतला दिया। दो दिन दिल्ली में ठहरकर वह मथुरा जाकर श्री नारायण स्वामी से मिला जो शताब्दी उत्सव की स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष थे। उन्हे कुछ सेवा-कार्य लेने की बात कही। स्वामी जी ने उसे दक्षिण भारत से आने वाले प्रतिनिधियों और अतिथियों की सहायता करने का काम सौंपा।

एक दिन शाम को किसी ने उसे ख़बर दी कि एक महिला आपको खोज रही है। अगर आप गाड़ी वालों के अड्डे की तरफ़ जायँ तो शायद भेंट हो जाय। वह आपको न पाकर लौटने की बात कर रही थी। चन्द्रकान्त तेज़ी से उस स्थान पर पहुँचा जहाँ टमटम और इक्के वाले प्रतिनिधियों को उतारने-चढ़ाने का काम करते थे। उसने देखा एक महिला एक टमटम में सवार हो गई है और टमटम रवाना होने को है। उसने दूर से ही टमटम को ठहरने को कहा और जल्दी पास पहुँच गया। इतने में वह महिला टमटम पर से उतर आई। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'प्रणाम'। वह सरस्वती थी। चन्द्रकान्त ने मथुरा के लिए रवाना होने से पहले सरस्वती के दिये अलीगढ़ वाले पते पर एक कार्ड डाल दिया था कि वह मथुरा जा रहा है और मथुरा का पता भी दे दिया था। वह कार्ड सरस्वती को मिल गया और वह चन्द्रकान्त से मिलने मथुरा पहुँच गई। दोनों ६-७ महीनों के बाद मिले थे।

इतने में वह महिला टमटम पर से उतर आई। पृ० ११०.

चन्द्रकान्त ने सरस्वती को दो-तीन बार पत्र भेजा था पर सरस्वती से एक का भी उत्तर उसे नहीं मिला। सरस्वती से फिर भेंट होगी इसकी आशा वह त्याग चुका था। लेकिन जब इस तरह अप्रत्याशित रूप में उससे भेंट हो गई तब वह बहुत आनन्दित हुआ। सरस्वती ने उसे आगरा चलने के लिए कहा और चन्द्रकान्त उसके साथ आगरे के लिए रवाना हो गया। आगरे में एक बड़ा दोमंज़िला मकान था। सारा घर ख़ाली था। सरस्वती अकेले एक हिस्से में ठहरी थी। उसकी मदद के लिए सिर्फ़ एक नौकर था। सरस्वती अपने ज़रूरी सामान और नौकर को लेकर दूसरे दिन चन्द्रकान्त के साथ मथुरा आ गई। चन्द्रकान्त ने एक छोटा-सा खेमा ठीक किया। दोनों उसमें ठहर गये। जब तक उत्सव चला तब तक सरस्वतो अपने हाथ से रोज़ भोजन बनाती थी और दोनों खा-पीकर सभा स्थल पर जाकर विद्वानों के भाषण और भजनीकों के भजन सुनते थे और अन्य समय पुस्तकों की दुकानों में जाकर पुस्तकें देखते और ख़रीदते थे।

उस उत्सव में भारत के सब प्रान्तों से ही नहीं वरन् भारत के बाहर के उन देशों से भी जहाँ भारतवासी जाकर बस गये हैं और जहाँ आर्यसमाजी रहते हैं, प्रतिनिधि आये थे। चन्द्रकान्त को वहाँ कई पुराने परिचित लोग भी मिले। उत्सव एक सप्ताह तक चला। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती के जन्म-दिन का सौवाँ वर्ष मनाने का वह उत्सव स्वभावतः बड़ा महत्त्व-पूर्ण रहा। मथुरा में ही स्वामी विरजानन्द जी के चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द ने अपनी अन्तिम शिक्षा पूरी की थी और वहीं वेदों के सच्चे ज्ञान का प्रचार करने की उन्हें प्रेरणा मिली थी। उस अवसर पर हज़ारों की संख्या में उपस्थित नर-नारियों के उत्साह, उल्लास और परस्पर प्रेम के आदान-प्रदान तथा बड़े-बड़े विद्वानों, महात्माओं और संन्यासियों के व्याख्यान और

प्रसिद्ध भजनीकों के जोशीले भजनों से एक ऐसा आनन्द और स्फूर्तिदायक वातावरण बन गया था कि जीवन में उसे भुलाया नहीं जा सकता।

उत्सव के अन्तिम दिन यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। शामियानों, खेमों और दुकानों से बना विरजानन्द नगर ख़ाली होने लगा। जिसे जो वाहन मिल जाता उसी पर अपना सामान रखकर स्टेशन की ओर जाने लगता। शाम का समय था। चन्द्रकान्त और सरस्वती के सामान भी बँध गये। चन्द्रकान्त अपने लिए एक टाँगा ठीक करने के लिए अपने खेमे से बाहर निकला। जैसे ही वह बाहर निकला कि सामने के खेमे में आग की ज्वाला भड़क उठी। चारों ओर कुहराम मच गया। लोग दौड़ पड़े। पर उनके आने के पहले ही चन्द्रकान्त आग बुझा चुका था। आग ज़मीन पर बिछे पुआल में लगी थी। पुआल पर अख़बार का एक काग़ज़ रखकर उस पर एक छोटी मोमबत्ती को जलती छोड़कर कोई बाहर चला गया था। मोमबत्ती अपना काम पूरा करके काग़ज़ पर फैल गई और उसके साथ ही काग़ज़ में और फिर पुआल में आग लग गई। आग बुझ जाने पर सबों की जबान पर यही था कि ईश्वर की दया से ही सारा नगर भस्मीभूत हो जाने से बच गया। बाद को वे महाशय भी वहाँ पहुँच गये जो जलती मोमबत्ती काग़ज़ पर रख गये थे। वे एक दक्षिण भारतीय थे। उत्तर भारत की ठण्डक का विचार किये बिना घर से निकल पड़े थे। श्री नारायण स्वामी ने उन्हें कम्बल दिया था। उसे वापिस करने के बाद उस ख़ाली खेमे में थोड़े समय के लिए वे आकर ठहर गये। उन्हें इसका ध्यान ही नहीं रहा कि मोमबत्ती लालटेन नहीं है। अब वे अपनी नादानी पर अफ़सोस ज़ाहिर कर रहे थे।

चन्द्रकान्त सरस्वती के साथ आगरे गया। सरस्वती ने कुछ दिनों के लिए वह मकान किराये पर ले रखा था। उसने कहा

कि उसकी माँ ४-५ दिन में यहाँ पहुँचने वाली हैं। तब यह निश्चय हुआ कि चन्द्रकान्त माँ के आने तक रुक जाय और उनसे भेंट करके जाय। सरस्वती ने कुछ लोगों से पहले ही कह रखा था कि उसके एक भाई मद्रास में हैं और हिन्दी प्रचार का काम करते हैं। उसके पुराने परिचितों में आगरा कालेज का एम. ए. क्लास में पढ़ने वाला एक विद्यार्थी था। वह आकर चन्द्रकान्त से मिला। दूसरे दिन कालेज के कुछ और छात्र भी आकर उससे मिले। एक दिन उन छात्रों ने मिलकर चन्द्रकान्त और सरस्वती को एक दावत दी। उसी मकान में सब सामान आगया और सबों ने भोजन किया। चन्द्रकान्त का आगरे में पहली बार आना हुआ था। सरस्वती ने उसे लेजाकर ताजमहल और क़िला आदि दिखाये। ताजमहल देखकर चन्द्रकान्त मुग्ध हो गया। ताजमहल का निर्माण किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं हुआ है। उसमें न कोई रहता है और न उसमें कोई काम ही होता है। वह प्रेम की उद्भुत प्रेरणा और उच्च कोटि की कलात्मकता का एक अनुपम प्रतीक है। बादशाह शाहजहाँ के हृदय में बेग़म मुमताज़महल के लिए जो अगाध प्रेम था वह उसके मर जाने के बाद मूर्त्त रूप धारण करने के लिए तड़प रहा था। ताजमहल उसी का फल है जो एक उत्कृष्ट काव्य की तरह चिरकाल तक सहृदयों के आकर्षण और आनन्द का केन्द्र बना रहेगा। इन विचारों के साथ चन्द्रकान्त ताजमहल को देखकर लौटा।

सरस्वती को नज़दीक से अध्ययन करने का चन्द्रकान्त को उन चार-पाँच दिनों में काफ़ी मौका मिला। सरस्वती अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी। लेकिन बहुत चतुर और व्यावहारिक बुद्धि वाली थी। वह एक सुसंस्कृत परिवार की लड़की थी। उसने अपने चाचा के एक वकील और प्रसिद्ध काँग्रेसी होने का एक बार ज़िक्र किया। पर चन्द्रकान्त को खुलासा कुछ नहीं बतलाया। चन्द्रकान्त ने भी

उसके परिवार के सम्बन्ध में विशेष कुछ जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। चन्द्रकान्त को इतना मालूम हो गया कि वह एक कन्या-पाठशाला खोलने के लिए धन-संग्रह कर रही है। उसी सिलसिले में वह आगरे आई है। सरस्वती चन्द्रकान्त को घर पर छोड़कर दो-तीन बार बाहर चली जाती और लौटकर बतलाती कि अमुक-अमुक से मिलकर आ रही है। उस एम. ए. के विद्यार्थी की बातों से चन्द्रकान्त को यह आभास मिला कि सरस्वती का धन-संग्रह करने के लिए इस तरह घूमना वह अच्छा नहीं समझता।

एक दिन माँजी भी पहुँच गईं। उनके आने के बाद चन्द्रकान्त दो दिन और ठहरकर फिर बिहार अपने घर चला गया। सरस्वती ने उसके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार किया था। पर वही बात माँजी के बारे में नहीं कही जा सकती। माँजी के व्यवहार में शिष्टाचार का भाव ही अधिक था। बिहार पहुँच जाने पर चन्द्रकान्त बराबर सरस्वती के बारे में सोचा करता। उसकी पहली मुलाक़ात, कई महीनों तक उसके सम्बन्ध में पूरी नाजानकारी फिर अप्रत्याशित भेंट और इससे भी अप्रत्याशित करीब दो सप्ताह का साथ—ये सब बातें उसे बहुत आश्चर्यजनक मालूम हुईं। सरस्वती उसे एक पहेली की तरह लगने लगी। वह उसके जीवन में क्यों आई है? उसके सम्बन्ध में चन्द्रकान्त अनेक दृष्टिकोणों से सोचने लगा। पर कुछ निश्चय नहीं कर सका। फिर भी सरस्वती की मैत्री से उसे एक सुख मिलता था। उसे वह खोना नहीं चाहता था।

मद्रास लौटने के पहले सरस्वती से एक बार और भेंट करने की उसके हृदय में एक प्रबल इच्छा उठी और वह एक दिन फिर आगरे पहुँच गया। वह हृदय की एक प्यास लेकर आगरे गया। उसे आशा थी कि सरस्वती के साथ थोड़ा समय आनन्द के साथ

बिताकर वह लौट आयेगा। पर आगरा पहुँचने पर उसने देखा कि सरस्वती एक बहुत व्यस्त कार्यकर्त्री बन गई है। वह सुबह घर से निकल जाती और शाम को देर करके आती। घर में माँजी रहतीं और एक नौकर। वह विद्यार्थी भी माँजी को देखने के लिए आया-जाया करता था।

चन्द्रकान्त प्रेम का भूखा था। प्रेम की सरसता, मधुरता और आत्मीयता का भूखा था। पहले उसे वह सरस्वती से प्राप्त होते प्रतीत हुआ। किन्तु सरस्वती से अब अपनी आशा के अनुसार बातें न पाकर चन्द्रकान्त को निराशा होने लगी। सरस्वती और माँजी उसे रहस्यपूर्ण मालूम होने लगीं। इस बार चन्द्रकान्त जितने दिन वहाँ रहा वह विद्यार्थी रोज़ उससे मिलने के लिए आ जाता। अनेक बातें वे परस्पर अंग्रेज़ी में हा करते थे। कभी-कभी वे माँजी के पास से उठकर अलग बैठकर भी बातें करते थे। इससे माँजी को झुंझलाहट होने लगी। चन्द्रकान्त इस बार तीन दिन उनके यहाँ ठहरा। उसे ऐसा लगने लगा कि वह महज़ एक अनपेक्षित अतिथि है। इससे अधिक वह कुछ नहीं है। जिस सरस्वती के लिए उसके हृदय में प्रेम का समुद्र लहरा रहा था उस सरस्वती का भाव भी उसके इस विचार को पुष्ट करने लगा कि वह सिर्फ़ एक अतिथि है। सरस्वती के प्रति उसके मन में एक विकर्षण पैदा हुआ। उसके प्रति उत्पन्न अनुराग अब विराग में परिणत होने लगा। पहले की सरस्वती उसके मन में एक स्मृतिमात्र रह गई, और अन्त में अपने मन में सरस्वती से सब नेह-नाता तोड़कर और माँ और बेटी से बिदा लेकर वह बिहार लौट गया। उसके कल्पना जगत की सरस्वती एक मृगमरीचिका साबित हुई।

× × ×

मद्रास लौटने पर कार्यालन ने उसे कर्नाटक के प्रधान शहर धारवाड़ में काम करने के लिए भेजा। धारवाड़ बेलगाँव और

हुबली के बीच बसा एक शहर है। असहयोग आन्दोलन शुरू होने के बाद से वहाँ एक राष्ट्रीय महाविद्यालय चल रहा था। चन्द्रकान्त मुख्यतः उस विद्यालय में हिन्दी शिक्षक का काम करने के लिए भेजा गया। वहाँ जाने पर शहर के अन्य स्थानों में भी वह हिन्दी वर्ग खोलकर स्त्री-पुरुषों को हिन्दी सिखाने लगा।

धारवाड़ में उसे अपने काम में एक नया आनन्द आने लगा। वहाँ के लोगों को उसने अधिक मिलनसार पाया। वहाँ उसे कुछ नया काम भी मिला। धारवाड़ में उसे कुछ ऐसे लोग मिले जो अपने को परदेसी कहते थे। वे आपस में अपने घरों में एक तरह की टूटी-फूटी कन्नड़-मिश्रित हिन्दी बोलते थे। वे ज्यादातर संयुक्त प्रान्त के लोग थे। पचास-साठ साल पहले उनके बाप-दादा लड़ाई आदि के सिलसिले में दक्षिण में गये और वहीं बस गये। वहाँ वालों ने उन्हें परदेसी कहा और वह नाम स्थायी रूप से उनके वर्ग का द्योतक हो गया। उनमें ब्राह्मण और राजपूतों के अलावा दूसरी जाति के लोग भी थे। वे भिन्न-भिन्न पेशा किया करते थे। उन्होंने अपने समाज के लिए परदेसी कोऑपरेटिव सोसायटी के नाम से एक सहकारी समिति भी खोल रखी थी। उनका रहन-सहन, पहनावा और बातचीत करने का ढंग सब करनाटकी हो गया था। वे अपनी हिन्दी कन्नड़ के लहजे में बोलते थे। उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन पर मराठी भाषा का अधिक प्रभाव पड़ा था।

चन्द्रकान्त से परिचय बढ़ जाने के बाद उन लोगों को अपने समाज में शुद्ध हिन्दी का प्रचार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपना एक सम्मेलन किया और चन्द्रकान्त के सुझाव पर अपने समाज का नाम परदेसी समाज से बदलकर हिन्दी-भाषी समाज कर देने का निश्चय किया। अपनी कोऑपरेटिव सोसायटी के नाम में परदेसी की जगह 'हिन्दी भाषी' जोड़ देने का भी

निश्चय किया। उस सम्मेलन में एक हिन्दी-भाषी समाज नाम की संस्था बनाने और एक पुस्तकालय खोलने का निश्चय भी हुआ।

धारवाड़ में दूसरी विशेष बात यह हुई कि वहाँ की महिलाओं ने हिन्दी सीखने के प्रति बहुत उत्साह दिखाया। कर्नाटक महिला विद्यालय में और अन्य कई स्थानों पर महिलाओं के लिए हिन्दी वर्ग चलने लगे। नगर की अनेक प्रमुख महिलायें हिन्दी सीखने लगीं।

धारवाड़ के भगिनीमण्डल ने जब महिला हितवाद सप्ताह (फेमिनिस्ट वीक) मनाया तब चन्द्रकान्त को एक व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया। चन्द्रकान्त ने अपने व्याख्यान में कहा, "भगवान जब मानव-समाज का निर्माण करने लगा तब पुरुष को बनाते समय उसके मन में एक निर्माणकर्ता की दृढ़ता, कठोरता और सफल होने की आकांक्षा थी। लेकिन जब वह स्त्री को बनाने लगा तब प्रेम, सौन्दर्य और औदार्य की तूलिका और अनेक रंगों की पेटिका अपने हाथ में ले ली। यही कारण है कि पुरुष और स्त्री की प्रकृति में भेद पाया जाता है। पुरुषों ने आदि काल से स्त्री के प्रति कोमलता का व्यवहार किया है। अगर आज स्त्री पर्दे और चारदीवारी के भीतर बन्द है तो इसकी जड़ में स्त्रियों की रक्षा करने का पुरुष में जो भाव है वही है। कालक्रम से स्त्री अपने कोमल गुणों के कारण अपने व्यक्तित्व को खो बैठी, और कैदी-सी बन गई। और अन्त में पुरुषों के लिए एक गुड़िया बन गई। लेकिन आधुनिक काल में उसमें एक नई चेतना पैदा हुई है जिससे प्रेरित होकर वह यह माँग पेश कर रही है कि उसे भी मनुष्य समझा जाय, और उसके साथ बराबरी का व्यवहार किया जाय।" चन्द्रकान्त के भाषण की समाप्ति पर सारे हॉल में जिस उत्साह से तालियाँ बज उठीं उससे ज़ाहिर था कि धारवाड़ की स्त्रियों को उसका भाषण पसन्द आया। उस दिन

चन्द्रकान्त विशेष रूप से प्रसन्न था। उसकी विशेष प्रसन्नता का कारण वे प्रशंसात्मक शब्द थे जो सभा के अन्त में धन्यवाद का प्रस्ताव रखते समय मण्डल की मंत्रिणी द्वारा कहे गये थे। उनका नाम देवयानी था।

× × ×

एक दिन चन्द्रकान्त को एक एक्सप्रेस तार मिला कि 'पन्द्रह रुपये भेज दो। रास्ते में रोक ली गई हूँ।' तार भेजने वाली सरस्वती थी। पूना स्टेशन से तार भेजा गया था। चन्द्रकान्त ने एक मित्र से उधार लेकर रुपये भेज दिये और एक गहरी चिन्ता में पड़ गया 'तो सरस्वती आ रही है।' दूसरे दिन सरस्वती अपनी माँ और एक नौकर के साथ धारवाड़ पहुँचीं और टाँगा करके स्टेशन से चन्द्रकान्त के डेरे पर पहुँच गईं।

चन्द्रकान्त कहीं बाहर गया हुआ था। वह भी आ गया। घर खोलकर वह उन्हें अन्दर ले गया। सरस्वती ने कहा कि उसके पास से रुपये और टिकट वाला पर्स खो गया। अब वे दोनों चन्द्रकान्त की बहन और चाची बनकर रहने लगीं। एक सप्ताह तक उसने उन्हें अपने घर में रखा। उसके बाद एक दूसरा आरामदेह घर उनके लिए ठीक कर दिया। उनके कथनानुसार वे मैसूर जाने के लिए निकली थीं। लेकिन पूरा डेढ़ महीना धारवाड़ में जमी रहीं। हिन्दी सीखने वाली महिलाएँ उनसे मिलने आतीं और उनसे निमंत्रित होकर ये दोनों उनके घर जाती थीं।

माँजी कट्टरता की मूर्ति थीं। सवेरे उठकर काफ़ी देर तक आँखें बन्द किये पूर्व दिशा की ओर मुँह करके जप किया करती थीं। भोजन बनाने का काम स्वयं किया करती थीं या सरस्वती को स्नानादि के बाद शुद्ध वस्त्र धारण करके बनाना पड़ता था। भोजन करते समय माँजी रसोई के क्षेत्र में, जिसके चौतरफ़ा लकीर खींच दी जाती थी, बैठती थीं और सरस्वती और चन्द्रकान्त लकीर के बाहर बैठकर भोजन करते थे। वे लकीर के भीतर नहीं

जा सकते थे, और न वहाँ की कोई चीज़ छू सकते थे। माँजी भोजन करते समय बायें हाथ से कोई खाद्य-सामग्री नहीं छूती थीं, न गिलास उठाकर पानी पीती थीं। आवश्यकता पड़ने पर दाहिने हाथ से, जो जूठा रहता, चम्मच पकड़कर चावल-दाल आदि बर्तन से निकालतीं और अपनी थाली में दुबारा परसतीं या सरस्वती और चन्द्रकान्त की थाली में परसतीं। चन्द्रकान्त ने उस तरह जूठे हाथ से परसते पहले किसी को नहीं देखा था। उसे बुरा लगा और मन-ही-मन निश्चय किया कि कोई चीज़ घट भी जाय तो वह उनसे दुबारा नहीं लेगा। बाद को जब उसने इसकी चर्चा उठाई तब माँजी ने कहा कि बायें हाथ से परोसने से तो सारी चीज़ अशुद्ध हो जायेगी। जूठे हाथ से तो खाली चम्मच का डण्डा पकड़ा जाता है। उससे कोई चीज़ थोड़े ही जूठी हो सकती है। ऐसा था उनका तर्क।

उनकी दूसरी विशेषता थी नौकर के साथ बात-बात पर झगड़ा करना। नौकर बेचारा बड़ा सीधा-सादा गाँव का आदमी था। लेकिन माँजी को उसके किसी काम से सन्तोष नहीं होता था। कुएँ से पानी खींचते-खींचते नौकर थक जाता था। यह सब करने पर भी उसे माँजी की झिड़कियाँ और अपशब्द सुनने पड़ते थे। वह उत्तेजित होकर कुछ जवाब देकर चले जाने के लिए जब उठ खड़ा होता तब माँजी चन्द्रकान्त को ललकारतीं कि उसके सामने नौकर उनका अपमान कर रहा है और वह चुपचाप खड़ा देख रहा है। चन्द्रकान्त नौकर पर कृत्रिम गुस्सा दिखाकर उसे उपदेश देने लगता। आखिर एक दिन वह नौकर बहुत दुखित होकर चला गया। यह था चन्द्रकान्त की 'चाची' और 'बहन' से बने परिवार का हाल। कभी-कभी वे दृश्य मुलाक़ातियों को भी देखने को मिल जाते। फलतः चन्द्रकान्त की चाची की विलक्षणतायें चन्द्रकान्त के जानकारों की मण्डली में एक विनोद

का विषय बन गई।

उन तीनों के भोजन और नाश्ते का सारा प्रबन्ध चन्द्रकान्त को करना पड़ा। सब उधार खाता चल रहा था। एक बार मनी-आर्डर से सरस्वती के नाम कहीं से रुपये आये। सरस्वती उसे लेने के लिए चन्द्रकान्त को लेकर पोस्ट ऑफ़िस गई। पोस्ट ऑफ़िस से लौटते समय चन्द्रकान्त की बात मानकर सरस्वती ने चन्द्रकान्त को कुछ रुपये दे दिये। माँजी को जब मालूम हुआ तब वे सरस्वती पर आग-बबूला हो गई और उसकी बेवकूफ़ी के लिए उसे आड़े हाथों लिया। उसके कुछ ही दिन बाद माँजी और सरस्वती कन्या-पाठशाला के लिए धन-संग्रह करने मैसूर के लिए रवाना हो गईं।

× × ×

अपने कार्य के सिलसिले में चन्द्रकान्त का जिन कुछ परिवारों से परिचय बढ़ गया था उनमें देवयानी का भी परिवार था। देवयानी अन्य हिन्दी सीखने वाली महिलाओं की तरह नहीं थी। उसमें समाज-सेवा का विशेष उत्साह था। अपने मधुर स्वभाव के कारण वह सबों की प्रिय थी। चन्द्रकान्त ने देवयानी को देखा, चर्म-चक्षुओं से नहीं, हृदय-चक्षुओं से। उस नववयस्क अज्ञात प्रस्फुटित लावण्य मूर्ति के मुखारविन्द पर एक सरलता थी पर चंचलता-रहित, माधुर्य था पर मादकतारहित, एक उदासी थी पर वेदनारहित। उसकी आँखों में तेज था पर जलानेवाला नहीं, हँसी में एक मनोहारिता थी पर लुभानेवाली नहीं। उसका व्यक्तित्व असाधारण रूप से सुन्दर और प्रभावशाली था। उसके देखने से मन की चंचलता दूर हो जाती थी और हृदय पवित्र हो जाता था। चन्द्रकान्त ने उसे पहले दूर से देखा, फिर पास से देखा और ज्यों-ज्यों उसके सम्पर्क में आया वह उसके प्रभाव से अपना सुख-दुख, शोक-सन्ताप सब कुछ भूल गया। उसे लगा

कि वह इस जीवन की सीमाओं और विकारों को अतिक्रम करके एक नवीन पूर्णता, नवीन आनन्द और नवीन परितृप्ति का सुखास्वादन करने लगा है। मलयानिल की तरह शीतल, जूही की तरह सुरभित और संगीत की तरह मधुर वह मंजुल मूर्ति चन्द्रकान्त के हृदय के तारों को झंकरित करने लगी।

उसने चन्द्रकान्त के हृदय को एक नये रंग में रंग दिया। उसका जीवन संयम और सन्तोष, तप और त्याग का जीवन था। वह जीती थी तो दूसरों की सेवा के लिए और कर्म करती थी तो दूसरों का कष्ट हरने के लिए। उसमें अगर कोई वेदना थी तो वह करुणा में परिणत हो गई थी। वह एक बाल-विधवा थी—फूल-सी कोमल, कमल-सी पावन और हँसी-सी आह्लादकारी।

चन्द्रकान्त के मन, हृदय और आत्मा पर वह चाँदनी की तरह छा गई। चन्द्रकान्त उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते एक नई अनुभूति में विभोर रहने लगा। वह एक नई दुनिया का प्राणी बन बैठा। चन्द्रकान्त ने उसके साथ अपना एक सम्बन्ध जोडा, दुनिया में निकटतम सम्बन्ध। उसने उसे 'मातृ-हृदय' कहा और अपने को 'शिशु' कहा। उसने कहा, "वह संयमी है। मुझे भी संयमी बनना होगा। वह त्यागी है, मुझे भी त्यागी बनना होगा। वह पवन में फैल जाने वाली सुगन्ध है, मुझे भी सुगन्ध बनना होगा।"

उसने अपने मन की इस नयी अवस्था में प्रवेश ही किया था कि उसे एक सम्मेलन में शामिल होने के लिए बम्बई जाना पड़ा। वह अखिल भारतीय सारस्वत सम्मेलन था। धारवाड़ के उसके कई मित्र उसमें शामिल होने जा रहे थे। दक्षिण भारत में पश्चिमी तट पर बम्बई से लेकर ट्रावनकोर के कोयलोन शहर तक सारस्वत लोग फैले हुए हैं। गोवा, कारवार, मंगलोर, कोचीन आदि शहरों में उनकी प्रधानता है। किसी ज़माने में उनके पूर्वज पंजाब से

चलकर दक्षिण गये और वहीं बस ग ये । वे जहाँ-जहाँ जाकर बसे वहीं की भाषा और संस्कृति उन्होंने अपना ली। इसलिए दक्षिण भारत के सारस्वतों में जहाँ अधिकांश कोंकणी बोलने वाले हैं वहाँ मराठी, कन्नड़ और मलयालम बोलने वाले भी हैं। धारवाड़ में बसे सारस्वतों में हिन्दी के लिए बहुत उत्साह था। उनमें कुछ ऐसे थे जो हिन्दी को दक्षिण के सारस्वतों द्वारा मातृ-भाषा के तौर पर अपनाये जाने के विचार के समर्थक थे । वे अखिल भारतीय सारस्वत सम्मेलन में हिन्दी के समर्थन में एक प्रस्ताव पास कराना चाहते थे । ऐसे मित्रों की प्रेरणा से चन्द्र-कान्त मद्रास हिन्दी प्रचार कार्यालय के प्रतिनिधि के तौर पर सम्मेलन में शामिल होने बम्बई के लिए रवाना हुआ।

चन्द्रकान्त रास्ते ही में था कि एक स्टेशन पर बम्बई का एक अखबार पढ़ने को उसे मिला। उसे पढ़कर वह शोक में डूब गया। उसमें छपा था कि स्वामी श्रद्धानन्द महाराज की उनके कमरे में एक मुसलमान ने हत्या कर दी । स्वामी जी ने उन दिनों नव-मुस्लिमों को फिर हिन्दू धर्म में लाने के लिए शुद्धि-आन्दोलन शुरू किया था। मुसलमान उससे रुष्ट हो गये थे। एक धर्मान्ध मुसलमान उनसे कुछ प्रश्न पूछने का कारण बतलाकर उनके कमरे में घुसा और उसने स्वामी जी पर वार करके उनकी हत्या कर दी। इस तरह भारत की एक महान आत्मा, आर्यसमाज के प्रधान नेता और गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक का अकस्मात् अन्त हो गया । चन्द्रकान्त का एक आर्यसमाजी होने के नाते स्वामी जी से एक आध्यात्मिक सम्बन्ध था । वह उनके सम्पर्क में भी आ चुका था । दिल्ली में उनका अतिथि भी रह चुका था। स्वामी जी की मृत्यु उसे एक व्यक्तिगत क्षति की तरह दुखदाई मालूम हुई। बम्बई पहुँचने पर मालूम हुआ कि शाम को चौपाटी पर एक शोक-सभा होने वाली है । चन्द्रकान्त

उसमें शरीक होने के लिए गया। सभा सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास की अध्यक्षता में हुई। चन्द्रकान्त ने ट्रेन में ही स्वामी जी के बलिदान पर कुछ पंक्तियों की एक तुकबिन्दी लिखी थी। अपनी श्रद्धांजलि के तौर पर उसने उस सभा में उसे पढ़कर सुनाया।

उस समय सरस्वती और उसकी माँ बम्बई में ही थीं। वे 'सरदारगृह होटल' में ठहरी थीं। चन्द्रकान्त उनसे मिलने गया। देखा, माँ बेटी बिल्कुल खुशहाल हैं। स्पष्ट था कि बम्बई में प्रस्तावित कन्या-पाठशाला के लिए धन-संग्रह का काम सफलता के साथ हो रहा था। वहाँ चन्द्रकान्त ने उनसे अंतिम विदा ली। हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और कमला देवी भी उसी होटल में ठहरे हुए थे। चन्द्रकान्त ने उनसे परिचय किया। एक दिन वह ऐलिफेण्टा गुफ़ा देखने निकला। चटोपाध्याय दम्पति का भी उस दिन वहीं जाने का कार्यक्रम था। नाव पर बैकवाटर्स पार करते हुए उनसे भेंट हो गई। अच्छा मौक़ा पाकर चन्द्रकान्त ने अपनी कुछ रचनाएँ हरीन्द्र को पढ़ सुनाईं और हरीन्द्र ने उसे काव्य पर अपने विचार सुनाये। नाव से उतरकर जब सब लोग पैदल गुफ़ा की तरफ़ जा रहे थे तब कमला देवी और उनकी सहेली पिछड़ गईं। दल के पुरुष लोग उनके आने तक रुक गये। उनके पास आ जाने पर हरीन्द्र ने उनके पिछड़ जाने की बात को लेकर फबती सुना दी। बस, कमला देवी को बात लग गई। उन्होंने कहा, स्त्रियाँ चाहें तो पुरुषों से भी आगे निकल सकती हैं और यह कह कर दौड़ना शुरू कर दिया। एक-दो फर्लांग तक वे लगातार दौड़ती चली गईं। ऐसा लगा मानो कमला देवी स्त्रीवर्ग की प्रतिनिधि होकर यह बतला देना चाहती हैं कि पुरुष स्त्रियों के सम्बन्ध में जो हेय विचार रखते हैं, उन्हें अपने मन से निकाल दें।

बम्बई सम्मेलन में राष्ट्रभाषा हिन्दी को सीखने का प्रस्ताव

पास हुआ। करावार के सारस्वतों का जो अलग सम्मेलन हुआ उसमें हिन्दी को दक्षिण के सारस्वतों की मातृभाषा के तौर पर स्वीकार करने का प्रस्ताव लाया गया था। किन्तु अन्त में राष्ट्र-भाषा के तौर पर ही उसे अपनाने का प्रस्ताव पास हुआ।

बम्बई से लौटने के एक-दो महीने के बाद चन्द्रकान्त को मद्रास कार्यालय से पत्र मिला कि उसे तुरन्त मद्रास आ जाना चाहिए। उसके स्थान पर धारवाड़ में काम करने के लिए एक-दूसरे प्रचारक को भेज दिया गया। उन दिनों मद्रास कार्यालय का वायुमण्डल अशान्त हो गया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के, जिसकी तरफ से मद्रास में हिन्दी प्रचार का कार्य हो रहा था, अधिकारियों की नीति से मद्रास कार्यालय के व्यवस्थापक शर्मा जी का मतभेद कुछ दिनों से बढ़ता जा रहा था। मतभेद का मुख्य कारण सम्मेलन के अधिकारियों का अधिकारवाद था। उस मतभेद की एक कड़ी अज्ञात रूप से चन्द्रकान्त भी बन गया था। सम्मेलन के अधिकारी चन्द्रकान्त को हिन्दी प्रचार के लिए आसाम भेजना चाहते थे। व्यवस्थापक पंडित हरिहर शर्मा ने उसका विरोध किया। वे चन्द्रकान्त को दक्षिण भारत से बाहर भेजने के पक्ष में नहीं थे। ऐसी ही कई बातों को लेकर जब मतभेद पराकाष्ठा को पहुँच गया तब मद्रास के गण्यमान्य हिन्दी प्रेमियों ने मिलकर महात्मा गांधी को यह सुझाव दिया कि मद्रास के हिन्दी प्रचार का कार्य सम्मेलन से स्वतन्त्र कर दिया जाय और उसके लिए महात्मा जी की ही अध्यक्षता में एक स्वतन्त्र संस्था बनाई जाय। महात्मा गांधी ने यह सुझाव मान लिया। फलस्वरूप मद्रास प्रचार कार्यालय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के रूप में परिवर्तित हो गया। महात्मा जी उसके आजीवन अध्यक्ष बनाये गये। श्री राजगोपालाचार्य और श्री पट्टाभिसीतारामैया उपाध्यक्ष बनाये गये। राजाजी को

महात्मा जी ने सभा का डाइरेक्टर बना दिया।

चन्द्रकान्त मद्रास चला गया। सभा के सब विभागों का पुनःसंगठन किया गया। पहले सारा कार्य पण्डित हरिहर शर्मा अपने एक सहायक पण्डित हृषीकेश शर्मा की सहायता से करते थे। अब दो और कार्यकर्ता बढ़ा लिये गये। एक चन्द्रकान्त था और दूसरे थे सत्यनारायण जी। सत्यनारायण जी को सभा का परीक्षा विभाग दिया गया और चन्द्रकान्त को सभा के मासिक पत्र 'हिन्दी प्रचारक' के सम्पादक और मद्रास शहर के संगठक के पद पर नियुक्त किया गया। चन्द्रकान्त ने सभा के प्रधान मन्त्री हरिहर शर्मा के परामर्श से दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के कार्य पर अंग्रेज़ी में एक लम्बी रिपोर्ट लिखी जिसकी हिन्दी रूपरेखा पण्डित हृषीकेश शर्मा ने तैयार की थी।

मद्रास में चन्द्रकान्त दो-तीन हिन्दी वर्ग स्वयं चलाने लगा। एक वर्ग एक अंग्रेज़ का था। वह एक व्यापारी कम्पनी का प्रधान था। वह बहुत शिष्टतापूर्वक पेश आता था। जब चन्द्रकान्त उसके बंगले पर पहुँचता तब वह कमरे से बाहर आकर उससे हाथ मिलाता, और तब फिर दोनों कमरे में जाते और पढ़ाई शुरू होती। उसी तरह वर्ग की समाप्ति पर वह अपने शिक्षक को बिदा करने बाहर आता। पढ़ाई के साथ-साथ देश के राजनीतिक प्रश्नों पर भी थोड़ी-बहुत चर्चा हो जाया करती थी। उसमें उस अंग्रेज़ को विशेष दिलचस्पी थी। एक दिन उसने मद्रास के तत्कालीन मंत्रिमण्डल के एक व्यक्ति के सम्बन्ध में फैली हुई अशोभन अफ़वाह पर चर्चा शुरू कर दी। चन्द्रकान्त ने जवाब दिया कि वह व्यक्ति आपकी उत्तम से उत्तम शिक्षा पाये हुए है। इंगलैण्ड में वर्षों रहकर कई उपाधियाँ भी ली हैं। फिर भी अगर उसमें चरित्र की कमी पाई जाती है तो इसका श्रेय अंग्रेज़ी शिक्षा और अंग्रेज़ी सल्तनत को ही मिलना चाहिए। वर्ग ख़त्म होते

पर अपने शागिर्द के साथ हाथ मिलाकर वह उससे विदा हुआ। आज की बात-चीत से उसे विशेष प्रसन्नता थी, क्योंकि आज उसने उस अंग्रेज़ को एक मार्के का जवाब दिया था। रायपुरम् रोड पर ट्राम को छूटते देखकर वह दौड़ा। जोश में तो था ही। अतः उछलकर ट्राम के पायदान पर खड़ा हो गया। लेकिन वह राँग साइड (गलत बाज़ू में) चढ़ा। भीतर बैठे एक आदमी ने तमिल में उससे कुछ कहा। वह बिना पूरा सुने खिड़की का डण्डा पकड़ मुसकराने लगा। इतने में ट्राम बिजली के खम्बे के पास से गुज़री जो ट्राम लाइन की बगल में ही गड़ी थी। खम्बे में छः-सात फुट की ऊँचाई पर एक बकसा लगा हुआ था। चन्द्रकान्त का सिर उस बक्से से टकरा गया। लेकिन वह गिरा नहीं। ट्राम खड़ी कर दी गई। वह भीतर ले लिया गया। सिर से खून बहने से उसकी सफ़ेद चादर और कुर्ते पर लाल निशान पड़ गये। एक मुस्लिम सज्जन उसे एक डिस्पेन्सरी में ले गये। वहाँ सिर में पट्टी बँधवाकर वह अपने कार्यालय को लौटा। दो-चार दिन तक वह उस अंग्रेज़ को पढ़ाने नहीं जा सका। और जिस दिन गया उस दिन वह अंग्रेज़ सज्जन घर पर नहीं थे। उसके लिए एक पत्र छोड़ गये थे। उसमें लिखा था कि वे नगर से बाहर जा रहे हैं। इसलिए आगे क्लास नहीं होगा।

मद्रास में उसने अपने वेश में एक परिवर्तन कर लिया। वह कुर्ता और चादर काषाय रंग में रंगकर पहनने लगा। शाम को भोजन के बदले दूध और फल लेना शुरू कर दिया। यह सब देवयानी से प्राप्त प्रेरणा का फल था। वह देवयानी से दूर होकर अपने को देवयानी के और निकट अनुभव करने लगा। उसने सोचा—'देवयानी को कर्म की चक्की में रात-दिन पिसने के सिवा और क्या सुख है। उसने अपने स्नेह और विश्वास से मेरे जीवन को कितना निर्मल और स्वच्छ बना दिया है। क्या

देवयानी को भुलाकर मैं आमोद-प्रमोद का जीवन अपना सकता हूँ ?' देवयानी के सम्पर्क में आकर चन्द्रकान्त को अनुभव हुआ कि जीवन में एक ही चीज़ है जिसे पाकर मनुष्य भूख-प्यास को भी सह लेने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। घोर कठिनाइयों में भी एक अद्भुत शक्ति का अनुभव करता है और जिसके कारण मृत्यु का भी भय छूट जाता है। वह है एक पवित्र हृदय का स्निग्ध-प्रेम। देवयानी में चन्द्रकान्त को ऐसे ही प्रेम की अनुभूति हुई थी।

चन्द्रकान्त ने निश्चय किया कि वह जीवन के सुख-भोग का त्याग करेगा। वह संन्यासी बनेगा। इस विचार से उसे बड़ी शान्ति मिली। इस निश्चय से उसमें एक बल और प्रसन्नता के भाव का संचार हुआ। उसका लक्ष्य स्पष्ट हो गया। उसका मार्ग भी स्पष्ट हो गया और वह निःसंशय हो गया। उसने निश्चय किया कि वह अपने जीवन को अधिक संयमी बनाने का एक साल तक अभ्यास करेगा और उसके बाद विधिवत् संन्यास लेगा।

× × ×

उस साल महात्मा जी स्वास्थ्य-लाभ के लिए मैसूर गये। उनकी अध्यक्षता में बंगलोर में प्रथम कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सम्मेलन करने का निश्चय हुआ। बंगलौर से चन्द्रकान्त को बुलावा आया कि कर्नाटक के एक भूतपूर्व प्रचारक की हैसियत से वह सम्मेलन को सफल बनाने में योग दे। चन्द्रकान्त बंगलौर पहुँच गया। उसे स्वागतकारिणी समिति का एक मन्त्री बनाया गया। वह सम्मेलन के काम में तन-मन से लग गया। सम्मेलन का उद्घाटन महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने किया।

सम्मेलन के प्रारम्भ होने का समय था। सफ़ेद पजामा और काषाय रंग में रंगा कुर्ता पहने और गले में उसी रंग में रंगी एक चादर डाले चन्द्रकान्त अपने कुछ सहयोगियों के साथ बाहर फाटक पर सम्मेलन में आने वाले प्रतिनिधियों और अतितियों का स्वागत

कर रहा था। फाटक के पास एक टाँगा ठहरा। उसमें से चार म हलायें उतरीं। उनमें देवयानी भी थी। देवयानी ने कृपकाय चन्द्रकान्त को देखा, आगे बढ़ी और उसके चरण छूकर प्रणाम किया। सार्वजनिक रूप से चन्द्रकान्त का कितना बड़ा मान देवयानी ने किया। वह क्षण देवयानी और चन्द्रकान्त दोनों के लिए उदात्त क्षण था।

सम्मेलन में कई प्रस्ताव पास हुए। हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने सुन्दर हिन्दी भजन गाकर सम्मेलन का कार्यक्रम और भी आनन्ददायक बना दिया। चन्द्रकान्त ने देवयानी और अन्य महिलाओं को अपने साथ ले जाकर बंगलोर के कई दर्शनीय स्थान दिखाये। देवयानी और चन्द्रकान्त साथ-साथ घूमे। दूकानों में जाकर कुछ नमूने की चीज़ें खरीदीं और होटल में जाकर कॉफ़ी पी। प्रेम, श्रद्धा और आत्मीयता की भावना से अनुप्राणित ये दोनों प्राणी साथ-साथ ऐसे घूमे मानो स्वप्न-लोक में हों।

अन्तिम दिन मध्याह्न का समय था। देवयानी ने अकेले चन्द्रकान्त के कमरे में प्रवेश किया। चन्द्रकान्त उठा और अत्यन्त हर्षित होकर उसका स्वागत किया और उसे बिठाया। दोनों दीवार का सहारा लेकर आमने-सामने फ़र्श पर बिछी कालीन पर बैठ गये। दोनों एक दूसरे की तरफ़ नज़र गड़ाये बैठे रहे। दोनों कुछ कहना चाहते थे, अपना हृदय उँड़ेलकर एक-दूसरे के सामने रख देना चाहते थे। हृदय में अनन्त भाव, अनन्त आकांक्षायें एक साथ उमड़ रही थीं, किन्तु शब्दों में उन्हें वे कैसे व्यक्त कर सकते थे ? उनकी मूकता बोल रही थी, उनके नयन सुन रहे थे, और उनके हृदयों के स्पन्दन संगीत बनकर उन्हें अदृश्य जगत के प्रगाढ़ सुमिलन में सराबोर कर रहे थे। वे स्त्री-पुरुष होने की बात भूल गये। वे सिर्फ़ दो आत्मा थे। अशरीरी, निर्विकार, निष्कपट। स्थूल भेदभाव और भिन्नता की दीवार ढह गई। एक मन, एक

हृदय, एक विचार, एक आकांक्षा। सम्पूर्ण आत्मसमर्पण ! निस्तब्धता को भंग करते हुए देवयानी ने कहा—

"मैं तुम से एक बात कहना चाहती हूँ।"

"कहो।"

"मैं तुम से अभिन्न हूँ।"

आह उसके वे शब्द ! मानों आकाश से पुष्पों की वर्षा हो गई। चन्द्रकान्त की आँखों में आनन्दाश्रु छलक आये। कुछ बोलना उसके लिए असम्भव था। देवयानी ने ही आगे कहा, "हम दोनों बापू के पास चलें।"

"क्यों ?"

"बापू से कह दें।"

"क्या ?"

"हम एक साथ मिलकर देश की सेवा करना चाहते हैं।"

चन्द्रकान्त सोचने लगा। एक क्षण के बाद बोला, "बापू क्या करेंगे ?"

"हम बापू से आश्रम में ही रहने की अनुमति माँगेंगे।"

चन्द्रकान्त फिर सोचने लगा। देवयानी की उस इच्छा, उस आकांक्षा के पीछे कितनी बड़ी तड़प थी, कितना बड़ा आग्रह था ! देवयानी की आँखें सजल हो गई थीं।

चन्द्रकान्त आखिर बोला, "देवयानी, हमें किस ने मिलाया है ? किसने यह जीवन का दुर्लभ क्षण दिया है जबकि हम अपने को एक दूसरे में प्रतिबिम्बित पा रहे हैं। हम अपनी जीवन-नौका उसी के अदृश्य हाथों में छोड़ दें। उसी की इच्छा पूर्ण होवे।"

देवयानी ने चन्द्रकान्त के वचन सुनकर अपने आँसू पोंछ लिये। विषाद-भार से मानो उसके सुकोमल मुख-मण्डल पर प्रकाश की एक रेखा दौड़ गई। वह ज़रा मुस्कराई। दोनों को लगा कि वे एक विकट क्षण और एक गहरी खाई को पार कर गये। वे

प्रसन्न मुद्रा में उठे और कमरे से निकलकर कॉफ़ी क्लब में कॉफ़ी पीने चले गये ।

उसी दिन देवयानी अपनी सहेलियों के साथ धारवाड़ के लिए रवाना हो गई । चन्द्रकान्त स्टेशन पर उसे बिदा करके लौट आया और दो दिन और बंगलोर में ठहरकर सम्मेलन सम्बन्धी सब काग़ज़ ठीक करके मद्रास लौट गया । मद्रास आकर उसने एक उद्‌गार लिखा और देवयानी के पास भेज दिया—

मेरे प्रेम, मेरे हृदय के राजा, मेरे ईश्वर !

मैं मरने की तैयारी कर रहा था । लेकिन तेरे लिए अब मैं जीऊँगा ।

मैं तेरी प्रतीक्षा करूँगा । यदि मेरी प्रतीक्षा व्यर्थ जाय तो भी तेरी प्रतीक्षा के आनन्द के लिए मैं जीऊँगा ।

मैं तेरे दर्शन के लिए रात-दिन तेरी आराधना करूँगा । यदि तेरा दर्शन न भी प्राप्त हो तो भी तेरे ध्यान के आनन्द के लिए अब मैं जीऊँगा ।

मैं तेरे सुखद-मिलन के लिए तुझ से भक्ति करूँगा । यदि तुझ से मिलन न भी हो तो भी तेरी भक्ति के आनन्द के लिए अब मैं जीऊँगा ।

मैं तेरी आशाओं की पूर्ति के लिए अपने सारे सुख का त्याग करूँगा । यदि मैं तेरी आशाओं की पूर्ति न भी कर सका तो भी अपने हृदय-पुष्प से तेरी पूजा करने के लिए अब मैं जीऊँगा ।

मैं अपने को तुझ पर बलिदान कर देने के लिए तपस्या करूँगा । यदि मेरी तपस्या व्यर्थ जाय तो भी तपस्या की सुखद-पीड़ा को भोगने के लिए अब मैं जीऊँगा ।

× × ×

चन्द्रकान्त को आशा थी कि देवयानी धारवाड़ पहुँचकर

उसे पत्र लिखेगी। वह रोज़ उसके पत्र की प्रतीक्षा में उत्सुक रहने लगा। लेकिन कोई पत्र नहीं आया। तब चन्द्रकान्त अपनी शान्ति, अपना उत्साह और अपनी प्रसन्नता खोने लगा। देवयानी ही उसकी शान्ति, उसकी स्फूर्ति और उसकी प्रेरणा का स्रोत हो गई थी। उससे पत्र न पाकर वह अपने को निर्बल पाने लगा।

एक दिन उसे एक मोटा रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़ा मिला। उस पर उसका नाम और पता देवयानी की ही लिखावट में लिखा हुआ था। चन्द्रकान्त का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। उसने सोचा, इसमें प्रतिदिन के लिखे देवयानी के पत्र हैं। किसी कारणवश वह पहले इन्हें भेज नहीं सकी होगी। प्रेम और स्नेह से उसके पत्रों को निर्विघ्न रूप से पढ़ने के लिए वह लिफ़ाफ़ा लिये दफ़्तर से उठकर अपने कमरे में चला गया और पत्र पढ़ने के लिए आरामकुर्सी पर बैठ गया। तब उसने उस लिफ़ाफ़े को खोला। पर यह क्या? लिफ़ाफ़े में रखे हुए सब पत्र चन्द्रकान्त के ही पत्र थे। उसी के सब पुराने पत्र और बंगलोर से लौटने के बाद उसने जो पत्र भेजे थे वे भी। उसने इस आशा से कि देवयानी का भी कोई पत्र उसमें होगा, एक-एक पत्र को अलग-अलग करके सावधानी से खोज की। लेकिन उस बड़े लिफ़ाफ़े में देवयानी का कोई पत्र नहीं था। उसके हाथ की लिखी एक छोटी पुर्जी भी नहीं थी। यह सोचकर कि उसके ही किसी पत्र के कोने पर देवयानी ने कुछ लिख दिया होगा, वह एक-एक पत्र पर नज़र दौड़ा गया। पर व्यर्थ। चन्द्रकान्त विस्मय में डूब गया, दुख-सागर में डूब गया। ...तो देवयानी ने उसके सारे पत्र लौटा दिये हैं? क्या यह परस्पर के सम्बन्ध को तोड़ने का प्रमाण नहीं है? क्या देवयानी ने प्रेम के उस धागे को तोड़ दिया है, जिसके कारण उसके लिए पृथ्वी पर स्वर्ग उतरा-सा मालूम होता था। देवयानी का ऐसा कर सकना विश्वास योग्य नहीं था पर उसने ही तो उसके सारे पत्र वापिस

कर दिये हैं। इसका प्रमाण लिफ़ाफ़े पर की उसकी लिखावट थी। 'ऐसा क्यों हुआ? कैसे हुआ? वह कैसे उन पत्रों को लौटा सकी जो हृदय के पवित्रतम भावों से लिखे गये थे? उसने लौटा देने के बदले उन्हें फाड़कर फेंक क्यों नहीं दिया? जला क्यों नहीं दिया? वह इतनी निष्ठुर, इतनी हृदयहीन, इतनी कृतघ्न कैसे हो गई? क्या उसकी देवयानी जिसे उसने स्वर्ग की देवी समझा, हृदय का देवता समझा, इतनी विचार-शून्य, भाव-शून्य और कच्ची निकली?' असह्य विषाद और वेदना से चन्द्रकान्त की आत्मा चीत्कार कर उठी।

अगले दिन उसे एक दूसरा लिफाफा मिला। खोलकर देखा तो वह देवयानी के भाई का पत्र था। वह एक अत्यन्त संक्षिप्त पत्र था। उसमें चन्द्रकान्त को आदेश दिया गया था कि वह आगे देवयानी से पत्र-व्यवहार न करे। बस उस छोटे पत्र से देवयानी द्वारा उसके सारे पत्रों के लौटाये जाने का रहस्य खुल गया।

देवयानी ने अपने घरवालों के दबाव के कारण ही उसके सब पत्र लौटा दिये हैं। चन्द्रकान्त के हृदय में एक विद्रोहाग्नि भड़क उठी। उसने उस मनोवृत्ति, उस व्यवस्था और उस परम्परा को नष्ट कर देने का संकल्प किया जो मानव-हृदय की सुन्दरतम् भावनाओं को निर्दयतापूर्वक कुचल देती है और मनुष्य का मूल्यांकन बाज़ारू तरीके से या रूढ़ि के आधार पर करती है।

देवयानी चन्द्रकान्त के जीवन में एक परी की तरह आई थी, उषा और ज्योत्स्ना की तरह आई थी, एक मलय मारुत की तरह आई थी। उसने अपनी झलक से चन्द्रकान्त को विभोर किया, अपने स्पर्श से आत्मविस्मृत किया और अपनी लहरों से उसे झकझोर दिया। उसके ध्यान में चन्द्रकान्त ने आनन्द के अश्रु गिराये और वेदना के गीत गाये। लेकिन अब? अब वह क्या करेगा?

चन्द्रकान्त का वैरागी बनने का निश्चय और संन्यासी बनने का संकल्प और भी दृढ़ हो गया। अब वह एक विद्रोही बनेगा और बीहड़ जीवन-पथ पर आगे बढ़ेगा—एकाकी, नितान्त एकाकी।

६

रम्य प्रदेश में

मद्रास में डाक्टर अन्सारी की अध्यक्षता में काँग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। उस अवसर पर एक राष्ट्रभाषा सम्मेलन करने का निश्चय हुआ। कुछ सालों से काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के साथ-साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन करने की भी प्रथा चल पड़ी थी। सम्मेलन के लिए माननीय श्री रामदास पन्तुलु की अध्यक्षता में एक स्वागतकारिणी समिति बनाई गई। स्वागत-समिति के मंत्रियों में एक मन्त्री चन्द्रकान्त भी चुना गया। स्वागत-समिति के कार्यालय का काम उसके सुपुर्द हुआ। सिर पर सम्मेलन का कार्य-भार आ जाने से चन्द्रकान्त को व्यक्तिगत जीवन के उतार-चढ़ाव और धक्कों के बारे में सोचने के लिए समय ही नहीं मिला। सम्मेलन श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में हुआ। काँग्रेस अधिवेशन में उपस्थित हिन्दी प्रदेश के प्रतिनिधियों के अलावा अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधि और नेतागण भी सम्मिलित हुए। मद्रास शहर के अनेक नर-नारी भी निमंत्रित थे। महिला सेवा-सदन की लड़कियों ने मंगलाचरण और राष्ट्रीय गीत गाये। सरोजिनी नायडू ने अपने अनुपम पुरज़ोर शैली में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने का समर्थन किया और मद्रासियों से हिन्दी सीखने की अपील की। उन्होंने कहा, "लिबास से भ्रम हो सकता है पर ज़बान से भ्रम का नाम भी नहीं रह सकता। जब उत्तर से दक्षिण तक सारे देश में एक ज़बान बोली और समझी जाने लगेगी तभी यह कौम आज़ाद हो सकती है।"

मद्रास काँग्रेस में साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव

पास हुआ। इंगलैण्ड की पार्लमेण्ट ने भारत को राजनीतिक अधिकार की अगली किश्त देने के पहले देश की स्थिति की जाँच के लिए वह कमीशन भारत में भेजने की घोषणा निकाली थी। लेकिन उसमें एक भी भारतीय नहीं था। सारे देश को इससे निराशा हुई। काँग्रेस ने कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पास करके देश को स्वतन्त्र करने के अपने निश्चय को फिर दुहराया।

काँग्रेस के अधिवेशन के बाद चन्द्रकान्त के सामने एक नया प्रस्ताव आया। उसे कोचीन राज्य में जाकर हिन्दी प्रचार का काम शुरू करने को कहा गया। कोचीन भारत के पश्चिमी किनारे अरब समुद्र के तट पर स्थित एक छोटा-सा राज्य है। (अब उसे पड़ोसी ट्रावनकोर राज्य से मिलाकर ट्रावनकोर और कोचीन का संयुक्त राज्य कहा जाता है।) मलाबर ज़िला मद्रास प्रान्त का एक अंग है। कोचीन और ट्रावनकोर के साथ मलाबार ज़िले को मिलाकर केरल प्रान्त कहते हैं। केरल की भाषा मलयालम है और वहाँ के लोगों को मलयाली कहते हैं।

मद्रास में चन्द्रकान्त दो मलयाली घरों में हिन्दी सिखाने जाया करता था। एक कोल्लगोड़ (पालघाट ज़िला) के राजा सर वासुदेव का घर था और दूसरा काँग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष सर शंकरन् नायर का। चन्द्रकान्त केरल प्रान्त के 'प्राकृतिक सौन्दर्य' और वहाँ की विशेष सामाजिक प्रथाओं के बारे में पहले से ही कुछ-कुछ सुन चुका था। उक्त घरों में जाने का अवसर पाकर केरल के बारे में उसकी जानकारी और भी बढ़ गई। साथ-साथ केरल देखने की इच्छा भी।

इसलिए जब चन्द्रकान्त के सामने कोचीन जाने का प्रस्ताव आया तब उसने उसका सहर्ष स्वागत किया और एक दिन कोचीन

की राजधानी एरणाकुलम के लिए रवाना होगया। मद्रास से रवाना होकर जब उसकी गाड़ी शोरणूर जंकशन पर पहुँची तब उसने मलयाली स्त्री-पुरुषों को अपने स्वाभाविक रूप में और अपनी प्रान्तीय भाषा बोलते हुए देखा और उसे लगा कि इन लोगों के बीच में काम करना इतना मुश्किल नहीं होगा। शोरणूर से कोचीन जाने वाली गाड़ी उन दिनों न तो ब्रॉड गेज थी, न मद्रास से कोचीन-हार्बर तक थ्रू ट्रेन थी। उन दिनों कोचीन-हार्बर स्टेशन भी नहीं बना था।

मद्रास बंगाल की खाड़ी के तट पर बसा है तो एरणाकुलम अरब समुद्र के तट पर। मद्रास में रहते समय चन्द्रकान्त सुबह-शाम ट्रिप्लीकेन 'बीच' पर वायु-सेवन के लिए चला जाता था। एरणाकुलम में समुद्र-तट दूर होने से वह सम्भव नहीं था। किन्तु उसके बदले समुद्र से सम्बद्ध झील का तट था जहाँ शहर के नर-नारी वायु-सेवन के लिए जाते थे। नगर की दो-तीन बातों की तरफ़ उसका ध्यान सबसे पहले आकृष्ट हुआ। पहली बात यह थी कि एरणाकुलम में मकान बनाने की प्रथा भिन्न थी। बड़े-छोटे सब मकान खपरैल के थे। पश्चिम तट पर अधिक वर्षा होने के कारण मकानों के ऊपर छतें नहीं बनाई जातीं। दूसरी बात यह देखने में आई है कि मकान एक-दूसरे से सटाकर नहीं बनाये जाते। सब अलग-अलग थे और प्रत्येक मकान के लिए घिरा हुआ एक-एक अहाता था। चारों तरफ़ हरियाली नज़र आती थी। सारा शहर नारियल के पेड़ों का बाग़ मालूम पड़ता था। दूसरी विशेषता जो चित्ताकर्षक मालूम हुई वह थी नगर के नर-नारियों का स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण करना। रंगीन कपड़े पहने बहुत कम नर-नारी दिखाई पड़े।

मलयाली पुरुष लुंगी पहनते हैं। स्त्रियों के लिए भी लुंगी पहनने की प्रथा है। लुंगी के ऊपर ब्लाऊज़ और उसके ऊपर एक चादर।

चादर को वे इस सुदृढ़ता से बदन पर रखती हैं कि वह साड़ी का ही आँचल भाग मालूम होती है। एरणाकुलम पर्दा प्रथा से मुक्त था। अनेक छोटी उम्र की बच्चियों से लेकर वयस्क स्त्रियों तक का मन्दिर, गिरजा, स्कूल-कॉलेज और हाट-बाज़ार के लिए सड़कों पर स्वच्छन्दतापूर्वक इधर से उधर आना-जाना इस बात का प्रमाण था कि यह स्त्री-स्वातन्त्र्य का देश है।

चन्द्रकान्त को एरणाकुलम पहुँचे मुश्किल से एक सप्ताह हुआ होगा कि एक दिन एक आदमी ने आकर खबर दी कि कोचीन महाराजा की पुत्री हिन्दी सीखना चाहती हैं। उसे राजमहल में बुलाया गया है। चन्द्रकान्त जब राजमहल में गया तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उससे हिन्दी सीखने की इच्छा रखने वाली महिला उसकी मद्रास की एक हिन्दी विद्यार्थिनी है। वह सर शंकरन् नायर की पुत्रवधु थी। मद्रास में सर शंकरन् नायर के साथ वह भी चन्द्रकान्त से हिन्दी सीखती थी। वास्तव में सीखने वाली तो वही थी। सर शंकरन् तो बातें करने में ही अधिक उत्साह दिखाया करते थे। वे कहा करते थे कि वे हिन्दी इसलिए सीखना चाहते हैं कि उत्तर भारत के लोगों को हिन्दी में बोलकर समझा सकें कि गान्धी जी का आन्दोलन देश के लिए सर्वथा अहितकर है। सर शंकरन् की उम्र उन दिनों ६० साल के लगभग थी। लेकिन उस उम्र में भी उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनकी स्फूर्ति तथा जिन्दादिली उनकी अन्दर की प्रतिभा और शक्ति को प्रकट करती थी। उनकी पुत्रवधु कोचीन के महाराजा की पुत्री थी, यह बात चन्द्रकान्त को एरणाकुलम आने के बाद ही मालूम हुई। सप्ताह में तीन दिन राजमहल में जाकर उसके लिए वर्ग लेना तय हुआ। राजमहल एरणाकुलम से सात मील दूर है। उन दिनों एरणाकुलम के काण्वेण्ट की मदर सुपीरियर महाराजा की पौत्री को पढ़ाने के

लिए पैलेस की कार पर सप्ताह में तीन बार महल जाया करती थीं। मदर सुपीरियर के साथ ही चन्द्रकान्त के आने-जाने की व्यवस्था कर दी गई।

मद्रास में रहते समय चन्द्रकान्त केरल की विशिष्ट सामाजिक प्रथाओं के बारे में थोड़ा-बहुत सुन ही चुका था। एरणाकुलम आकर वह पूरा-पूरा समझ गया। केरल में मातृयात्मक पद्धति प्रचलित है जिसके अनुसार कुल-माताओं से चलता है। अर्थात् पुत्रियों की सन्तान ही कुल के या परिवार के नाम और सम्पत्ति की अधिकारिनी होती है। इस प्रथा के अनुसार राजा की पत्नी रानी नहीं कहलाती न उसकी पुत्री राजकुमारी कहलाती है। राजा की बहनें ही राजकुमारी कहलाती हैं और उनमें कोई जब पुरुष के अभाव में या उसके नाबालिग़ होने की हालत में राजगद्दी पर बैठती है तो वह महारानी कहलाती है। केरल में घर में लड़के-लड़कियों का बराबर साम्पत्तिक अधिकार माना जाता है और पिता की जगह पर मामा को ही प्रमुख माना जाता है।

चन्द्रकान्त जिस समय एरणाकुलम पहुँचा उस समय कोचीन लेजिस्लेटिव कौंसिल का अधिवेशन हो रहा था। सारे राज्य से कौंसिल के सदस्य एरणाकुलम में एकत्रित हुए थे। लोगों को हिन्दी प्रचार की आवश्यकता बतलाने के लिए एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें ज़ोरदार भाषण हुए। एरणाकुलम में हिन्दी प्रचार का काम जिस व्यक्ति के विशेष उत्साह से शुरू हुआ वह श्री इग्नेशिस थे। वे कोचीन के एक ईसाई सज्जन थे। उन दिनों वे हिन्दी प्रचार सभा के प्रचार मन्त्री के पद पर नियुक्त हुए थे। असहयोग-आन्दोलन में पड़कर उन्होंने शुरू से काँग्रेस के अधीन रचनात्मक कार्य किया था। श्री इग्नेशिस के प्रयत्न से कोचीन लेजिस्लेटिव कौंसिल में हिन्दी को स्कूलों में अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाने का प्रस्ताव एक मुस्लिम सदस्य ने पेश किया और वह पास

हो गया। हिन्दी तुरन्त अनिवार्य विषय तो नहीं बनाई गई पर ऐच्छिक विषय के तौर पर उसे स्कूलों में स्थान मिल गया। दक्षिण भारत में कोचीन राज्य में ही पहले-पहल हिन्दी को स्कूलों में स्थान मिला। राज्य भर में हिन्दी सीखने के उत्साह की लहर फैल गई। हर शहर व गाँव से हिन्दी प्रचारक की माँग आने लगी। कोचीन की स्त्रियों ने हिन्दी सीखने में अपूर्व उत्साह दिखाया। एरणाकुलम का 'स्त्री-समाज' हिन्दी के काम का प्रधान केन्द्र बन गया। हिन्दी विद्यार्थिनी मण्डल नाम का एक संगठन बनाया गया। मण्डल की नियमित रूप से बैठकें होने लगीं जिनमें हिन्दी विद्यार्थिनियाँ हिन्दी में बोलने का अभ्यास करने लगीं। एक दिन मण्डल की मंत्रिणी ने, जिनका नाम संध्या देवी था, एक नई महिला से चन्द्रकान्त का परिचय कराया। वे पहले-पहल मण्डल की सभा में उस दिन आई थीं। उनकी दो छोटी बहिनें चन्द्रकान्त के हिन्दी क्लास में शामिल होकर बड़े उत्साह से हिन्दी सीख रही थीं।

चन्द्रकान्त उनको देखते ही सोचने लगा कि उसने उन्हें पहले कहीं देखा है। क्योंकि वह चेहरा बिल्कुल नया नहीं मालूम हुआ। वह पतली-दुबली, प्रसन्न मुद्रा और मुक्त हास वाली महिला थीं। आँखों में एक स्थिरता थी और गहराई में प्रवेश करके देखने की तीक्ष्णता थी जिसे उनकी आँखों पर पड़े रोल्ड-गोल्ड के फ्रेम वाले चश्मे भी नहीं छिपा सकते थे। औपचारिक परिचय के बाद उन्होंने चन्द्रकान्त से कहा, "मैं भी हिन्दी सीखना चाहती हूँ। लेकिन मैं तो स्कूल बन्द होने के बाद ही आपके हिन्दी क्लास में शामिल हो सकूँगी।" बातें अंग्रेज़ी में ही हुईं। दक्षिण भारत में अंग्रेज़ी ही तो माध्यम का काम करती है। चन्द्रकान्त को इतना मालूम हो गया कि वे किसी गर्ल्स स्कूल की शिक्षिका हैं। अपने निवास को लौट आने के बाद ही उसे पूरा-पूरा स्मरण हुआ कि उसने उन्हें पहले कहाँ देखा था। उसने उन्हें महाराज के पेलैस से मदर

सुपीरियर के साथ कार में लौटते समय प्रायः हर बार एरणाकुलम से एक रिक्से में बैठकर कार के आने की दिशा में जाते देखा था। कार के पास से गुज़रते समय वे हर बार मदर सुपीरियर को हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए प्रणाम किया करती थीं । उनका नाम रंजनी था ।

रंजनी की बहनों का नाम, जो हिन्दी सीखती थीं, भावना और लक्ष्मी था । भावना ने बी. ए. तक पढ़कर छोड़ दिया था और लक्ष्मी स्कूल की फाइनल क्लास में पढ़ती थी। एक दिन लक्ष्मी ने चन्द्रकान्त से कहा, "पण्डित जी, हमारे पिता जी आप से मिलना चाहते हैं। एक दिन हमारे घर आने की कृपा करें।"

"पण्डित जी को घर बुलाने पर दक्षिणा देनी पड़ेगी।"

"आपको दक्षिणा की क्या आवश्यकता है? हमारे घर आइयेगा तो हम आपका कॉफ़ी से सत्कार करेंगी।"

चन्द्रकान्त उसकी हाज़िरजवाबी से ख़ुश होकर खिलखिला पड़ा और उसके घर जाकर उसके पिता से मिलने का वचन दिया।

उन लड़कियों के पिता एक अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर थे । जब चन्द्रकान्त उनसे मिलने के लिए उनके यहाँ गया तब उन्होंने बड़े आदर के साथ उसका स्वागत किया। चन्द्रकान्त को उनसे परिचय करके बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके बाद वह उस घर में हर दूसरे-तीसरे दिन आने-जाने लगा। घर के अन्य व्यक्तियों से भी उसका परिचय बढ़ा।

रंजनी के घराने का नाम उद्यान-वन था। वह एरणाकुलम का एक पुराना घराना था। उस घराने के दो व्यक्ति कोचीन के दीवान रह चुके थे। चन्द्रकान्त ने यह भी सुना कि उस घराने के दो युवक इङ्गलैण्ड पढ़ने गये और वहीं ब्याह करके बस गये। रंजनी के तीन भाइयों में दो की मृत्यु हो चुकी थी। एक जिनका

नाम माधवन था, बड़े मिलनसार और विनोदप्रिय सज्जन थे। वे कोचीन सेक्रेटेरियट में काम करते थे। भावना और लक्ष्मी के अतिरिक्त रंजनी की दो बहिनें और थीं। सबसे बड़ी बहन अपने पति के साथ किसी दूसरे स्थान में रहती थीं। रंजनी की दूसरी बड़ी बहन एरणाकुलम के एक गर्ल्स स्कूल में शिक्षिका थीं। उनका विवाह चन्द महीने पहले ही हुआ था। रंजनी और दूसरी दो छोटी बहिनें अविवाहिता थीं।

लक्ष्मी को चन्द्रकान्त 'छोटी बच्ची' कहने लगा। उसने हिन्दी सीखने में बड़ी उन्नति दिखाई। दो ही तीन महीनों में हिन्दी में छोटी-मोटी कहानियाँ और लेख लिखने लगी। भावना एक अत्यन्त भावुक कवि-हृदय लड़की थी। वह अंग्रेजी में कवितायें लिखा करती थी। रंजनी एक 'मैटर ऑफ़ फैक्ट' युवती थीं। उन पर गृह-प्रबन्ध की भी थोड़ी ज़िम्मेवारी थी। इन तीनों के साथ चन्द्रकान्त का सम्पर्क दिनोंदिन बढ़ने लगा। चन्द्रकान्त उनके यहाँ जब-जब जाता तब-तब उनके हिन्दी-अध्ययन में मदद करता। एक बार उन्होंने चन्द्रकान्त से उसकी लिखी एक पुस्तक पढ़ने की इच्छा प्रकट की। चन्द्रकान्त ने पढ़ाना शुरू कर दिया। मलयालम एक संस्कृतप्रधान भाषा है। अतः मलयालिओं को हिन्दी की उच्च शैली में लिखी चीजें समझने में कठिनाई नहीं होती। उस अध्ययन के बीच एक दिन रंजनी ने अपने दिवंगत तीसरे भाई की अंग्रेजी में लिखी कविताओं की पाण्डुलिपि चन्द्रकान्त को दिखाई। उन्हें पढ़कर चन्द्रकान्त को बड़ा दुख हुआ कि वैसा भावनाशील कवि-हृदय युवक अकाल ही काल-कवलित हो गया।

× × ×

चन्द्रकान्त एक महिला को हिन्दी सिखाने जाया करता था जो शहर की एक प्रमुख महिला थीं। उन्हीं की अध्यक्षता में

एरणाकुलम में स्त्रियों की पहली हिन्दी सभा हुई थी। उनके पति का नाम कृष्ण मेनोन था। श्री मेनोन एक वयोवृद्ध वकील थे। ये दम्पति एरणाकुलम के साहित्यिक और सामाजिक जीवन में विशेष स्थान रखते थे। एरणाकुलम में हिन्दी विद्यार्थियों ने एक हिन्दी विद्यार्थी मण्डल स्थापित करने का जब निश्चय किया तब उसमें अध्यक्षता करने के लिए श्री मेनोन को निमन्त्रित किया गया। कोचीन के महाराजा ने श्री मेनोन को 'साहित्यकुशलन' और श्रीमती मेनोन को 'साहित्यसखी' की उपाधि देकर दोनों को सम्मानित किया था। श्री मेनोन स्थानीय थियोसोफ़िकल सोसायटी और कई अन्य संस्थाओं के अध्यक्ष थे। जब उन्होंने चन्द्रकान्त की निवास सम्बन्धी असुविधाओं की बात सुनी तब उसे थियोसोफ़िकल सोसायटी में एक कमरा दे दिया।

एक दिन चन्द्रकान्त अपने वर्गों से अवकाश पाकर रात को जब अपने कमरे को लौटा तब उसे ख़बर मिली कि श्रीमती मेनोन का नौकर उसे दो बार खोजने आया था और एक पत्र उसके लिए छोड़ गया है। उस पत्र में लिखा था—

"प्रिय चन्द्रकान्त जी,

आज मेरे पुत्र शंकरन् का विवाह है। इसके साथ निमन्त्रण-पत्र भेज रही हूँ। मैं इसे आपको समक्ष देना चाहती थी लेकिन आप दो दिन से मेरे घर आये ही नहीं। आप अवश्य मुहूर्त के समय विवाह-स्थल पर पधारियेगा।"

मुहूर्त का समय हो गया था। चन्द्रकान्त एक रिक्से पर वधु के घर गया जो शहर में ही था। वहाँ जाने पर उसे कई वकील मित्र मिले जो उससे हिन्दी सीखते थे। एक मलयाली विवाह का रस्म-रिवाज देखने का उसके लिए वह पहला अवसर था।

वधु के अहाते में घर के सामने एक बड़ा मण्डप बनाया गया था और फूल-पत्तों से उसे ख़ूब सजाया गया था। मण्डप में एक

तरफ़ पीतल का एक बड़ा दीप रखा था जिसे मलयालम में (विलक) कहते हैं। दीप के पास पूजा की सामग्री रखी थी। सारा मण्डप निमन्त्रित स्त्री-पुरुषों से भरा था। ठीक मुहूर्त के समय कुछ स्त्रियों के साथ वधु दीप के पास आई। वर जो मण्डप में पहले ही आ चुका था, उठा और दीप के सामने वधु को एक साड़ी भेंट की, उसके गले में एक हार और फूलों की माला डाल दी और उसे अँगूठी पहना दी। तब वधु ने वर के गले में एक माला डाली और उसे भी एक अँगूठी पहनाई। उसके बाद दोनों ने दीप की तीन बार परिक्रमा की। अभ्यस्त स्त्री-पुरुषों ने शंखनाद की तरह मुँह से एक मंगल-सूचक ध्वनि निकाली। तत्पश्चात् अतिथियों का पान-सुपारी और इत्र से सत्कार किया गया। और इस प्रकार शुभ विवाह का कृत्य चन्द मिनटों में सम्पन्न हो गया।

विवाह-कार्य के बाद भोज का कार्यक्रम शुरू हुआ। चन्द्रकान्त होटल में भोजन कर चुका था। फिर भी मित्रों के आग्रह से उसे उनके साथ बैठना पड़ा। अन्त में वह शंकरन को, जो स्थानीय कॉलेज में प्रोफेसर थे, हार्दिक बधाइयाँ देकर और श्री मेनोन से बिदा लेकर चला आया।

दूसरे दिन जब वह उद्यान-वन पहुँचा तब रंजनी, भावना और लक्ष्मी ने उससे पिछली रात के भोज सम्बन्धी अनुभव के बारे में पूछना शुरू किया। उनके भाई माधवन जो भोज में चन्द्रकान्त के पास ही कहीं बैठे थे, पहले ही रिपोर्ट पहुँचा चुके थे कि पण्डित जी ने कुछ खाया नहीं, सिर्फ़ पायसम का स्वाद चखा। उस दिन चन्द्रकान्त को मालूम हुआ कि श्री मेनोन रंजनी की मातामही के भाई हैं।

× × ×

एक दिन रंजनी ने चन्द्रकान्त को उद्यान-वन में एक भोज में आने के लिए निमन्त्रित किया। वह उसकी मातामही की वर्षगाँठ

के अवसर का भोज था । चन्द्रकान्त ने भोज के लिए आना स्वीकार कर लिया। लेकिन उस दिन भोज के समय वह उद्यान-वन नहीं गया । चन्द्रकान्त को उद्यान-वन में अपने घर जैसा ही सुख और आनन्द मिलता था। लेकिन उसका उपभोग वह एक कृपण की तरह ही करना चाहता था। साधारण चाय ही हर विज़िट के अवसर पर लेने में उसे संकोच होता था। वह एक शिक्षक है, एक शिक्षक के नाते ही उन सबों से उसका परिचय हुआ है और सम्पर्क बढ़ा है, यह विचार उसके मन में सर्वोपरि रहा करता था। इसलिए चाय पीने की सीमा के बाहर जाकर घरेलू भोज में शरीक होना उसने आवश्यक नहीं समझा। उस दिन वह होटल में रोज़ की तरह भोजन करने भी नहीं गया। अपने कमरे में पड़ा रहा। जब वह सायंकाल उद्यान-वन गया तब लड़कियों ने कहा, "आप भोज के लिए क्यों नहीं आये ? हमने बहुत देर तक आपकी प्रतीक्षा की । जब आप नहीं आये तब हमें बहुत दुख हुआ।" चन्द्रकान्त ने पहले कुछ जवाब नहीं दिया। फिर बोला, "मैंने आज होटल में भी भोजन नहीं किया है, कुछ बचा-खुचा हो तो लाकर सामने रख दो।" छोटी बच्ची लाने के लिए दौड़ गई और पासयम, पापड़, उप्पेरी आदि लाकर सामने रख दिये।

उस घटना के बाद चन्द्रकान्त ने रंजनी में एक परिवर्तन देखा। रंजनी में सबसे अधिक खुशमिज़ाजी थी । उसके बात-व्यवहार में बच्चों की-सी सरलता और निष्कपटता थी। लेकिन अब उसका खुलकर हँसना-बोलना कम हो गया। चन्द्रकान्त जब उद्यान-वन जाता तब वह भी पहले की तरह भावना और छोटी बच्ची लक्ष्मी के साथ बैठक में आकर बैठ जाती । पढ़ने-पढ़ाने का काम कुछ समय तक पूर्ववत् होता और चन्द्रकान्त चला जाता। पर वातावरण में पहले जैसी प्रफुल्लता नहीं रही।

एक दिन चन्द्रकान्त को डाक से विवाह का एक निमन्त्रण-पत्र

मिला । उसने उसे खोलकर देखा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ । उसे देखकर वह एक साथ ही घोर विस्मय और विषाद में पड़ गया । वह देवयानी के विवाह का निमन्त्रण था । 'तो क्या देवयानी ने विवाह करना स्वीकार कर किया है ?' यह प्रश्न बार-बार उठकर उसके हृदय और मस्तिष्क में तूफ़ान पैदा करने लगा । एक विचार उसके मस्तिष्क में उठा—'काश, मैं पृथ्वीराज होता जो विवाह-मण्डप से संयोगिता को उठा ले भागा था।' और उसके साथ ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट की एक रेखा फैल गई ।

देवयानी—उसकी सुन्दरतम भावनाओं की प्रेरिका, उसकी उच्चतम आकांक्षाओं की वेदी, जिसने अपने स्निग्ध प्रेम से उसके जीवन में एक नया प्रकाश और आनन्द भर दिया था, जिसके सुख-दुख का विचार करके चन्द्रकान्त ने संन्यासी हो जाने का संकल्प किया था—ने अब विवाह करने का निश्चय किया है ! किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह करना स्वीकार कर लिया है ! और उसके विवाह का निमन्त्रण-पत्र उसके पास भेजा गया है ! कैसी विधि-विडम्बना है । मन का संकल्प और विकल्प, विश्वास और अविश्वास, अनुराग और विराग चन्द्रकान्त के मन में पानी के बबूले की तरह उठे और लोप हो गये । चन्द्रकान्त ने देवयानी के साथ अपने सम्बन्धों का कभी विश्लेषण नहीं किया था । देवयानी एक सुन्दर, सुपुष्ट, व्यक्तित्वसम्पन्न युवती थी । उसकी आँखों में एक आकर्षण था । मुँह पर गम्भीर संयम की मुद्रा थी । किन्तु जब वह मुस्करा देती, ज़रा हँस देती तो ऐसा लगता था मानो फूलों की वर्षा हो गई । किन्तु वह एक विधवा थी । बाल-विधवा थी तो क्या, विधवा ही तो थी । हिन्दू संस्कृति का भक्त चन्द्रकान्त एक सुधारवादी होते हुए भी, विधवा-विवाह का समर्थक होते हुए भी विधवाओं के प्रति परम्परागत संस्कारजनित सम्मान और

पवित्र भाव रखने वाला था। और देवयानी के सम्बन्ध में तो उसने हमेशा उसी की दृष्टि से सोचा, उसी के सुख-दुख, शान्ति-सन्तोष और उन्नति-उत्कर्ष की दृष्टि से सोचा और उसमें सहायक बना। अगर देवयानी की तरफ़ से उसके साथ विवाह का प्रस्ताव उठता तो वह अपने को अत्यन्त धन्य मानता और कृतज्ञतापूर्वक उसे स्वीकार करने में अपना गौरव समझता। किन्तु अपनी तरफ से वह कोई इच्छा नहीं कर सकता था, कुछ माँग नहीं सकता था। वह सिर्फ़ इतने से ही सन्तुष्ट था कि देवयानी अपने मानस-जगत में, अपने हृदय के अन्तरतम प्रदेश में उसे अपना समझे। इस अपनापन के विश्वास और अनुभूति से सब कुछ, सब अभिलषित सुख उसे मिल गया, ऐसा वह मानता था। लेकिन उस निमन्त्रण ने उस अपनत्व के विश्वास और अनुभूति पर एक गहरा आघात किया, जो सर्वथा अप्रत्याशित था। महीनों से देवयानी के साथ उसका पत्र-व्यवहार बन्द था। किन्तु उसका अन्त ऐसा होगा इसकी उसे स्वप्न में भी कल्पना नहीं हुई थी।

तीर की चोट खाये हिरण की-सी उसकी हालत हो गई। उसे अब एक वैद्य की आवश्यकता थी। एक अत्यन्त सहृदय वैद्य की जो उसके दर्द के मर्म को समझता और प्यार के हाथों से मरहमपट्टी करता।

चन्द्रकान्त उस निमन्त्रण-पत्र को जेब में डाले, हठात् खिंचता हुआ उद्यान-वन की ओर चला गया। उद्यान-वन की लड़कियों ने उसका स्वागत किया। चायभरी प्याली भी उसके सामने आगई जिसे एक अन्यमनस्कता के साथ चन्द्रकान्त ने उठाकर पी लिया। रंजनी ने चन्द्रकान्त की खिन्नता को मन ही मन नोट किया। वह अपनी कुर्सी खींचकर उसके पास बैठ गई और उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। दोनों एक दूसरे की तरफ़ ताकते चुप बैठे रहे। दोनों कुछ कहना चाहते थे। पर

जबान मदद नहीं कर रही थी। रंजनी उन दिनों स्वयं किसी संघर्ष से होकर गुज़र रही थी। लेकिन चन्द्रकान्त को पीड़ित देखकर वह अपनी बात भूल गई। उसने पूछा, "क्या बात है?"

चन्द्रकान्त ने कुछ उत्तर नहीं दिया। एक क्षण हतप्रभ बैठा रहा। तब उसने एक काग़ज़ का टुकड़ा उठाया और उस पर सिर्फ़ इतना लिख दिया, "आज से मैं भग्न-हृदय हो गया, लक्ष्य-हीन हो गया।" रंजनी ने उसे उठा लिया और पढ़ा। उसकी आँखों से आँसू की बूँदें निकलीं और उसके कपोलों को भिगोते हुए उस काग़ज़ के टुकड़े पर गिर पड़ीं। मानों उस काग़ज़ पर लिखे अक्षरों को मिटा देना चाहती हों। उस काग़ज़ के टुकड़े को हाथ में लेकर रंजनी मौन भाव से कुछ सोचती रही। तब उसने उसके टुकड़े-टुकड़े करके हाथ से मसल दिये। उसके बाद दोनों मौन बैठे रहे। आँखों ने जबान का काम किया। थोड़ी देर के बाद चन्द्रकान्त उठा और कमरे से चुपचाप निकल गया।

× × ×

देवयानी के विवाह का निमन्त्रण पाकर चन्द्रकान्त के स्वप्नों के तार टूट गये। अब उससे मधुर संगीत निकलने की आशा नहीं रही जिससे प्रेरित होकर देवयानी को आत्मिक और नैतिक बल देने के लिए ही उसने त्याग के पथ पर चलने का निश्चय किया था। वह निश्चय अब व्यर्थ हो गया। देवयानी का विवाह जिस व्यक्ति से होने जा रहा था वह एक स्वजातीय धनाढ्य व्यक्ति था—कई बच्चों का पिता जो हाल ही में अपनी दूसरी पत्नी खो चुका था। ऐसे व्यक्ति की जीवन-यात्रा सुलभ बनाने के लिए देवयानी के रिश्तेदारों ने उसके साथ देवयानी का विवाह कर देने का निश्चय किया। देवयानी—संयम की प्रतिमूर्ति देवयानी उस व्यक्ति से विवाह करने के लिए तैयार हो गई।

चन्द्रकान्त कई दिनों तक उद्यान-वन नहीं गया। रंजनी के

हाथों उस दिन उस कागज़ के टुकड़े का फाड़ा जाना उसके मन को एक सर्वथा नई दिशा की ओर मोड़ने वाला सिद्ध हुआ। उद्यान-वन के साथ वह एक सूक्ष्म आत्मीयता का सम्बन्ध अनुभव करने लगा था। उसकी यह आंतरिक इच्छा थी कि कोई ऐसी बात न हो जाय जिससे उद्यान-वन से उसका सम्बन्ध टूट जाय।

एक दिन एक पत्रवाहक ने आकर उसे एक पत्र दिया। वह रंजनी का पत्र था। उसमें लिखा था—"आप कई दिनों से इधर नहीं आये। हम सब चिन्तित हैं। आज ज़रूर दो मिनट के लिए आने की कृपा कीजियेगा।" चन्द्रकान्त को वह पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। उसने सोचा, इस अनजान देश में ऐसा भी कोई है जिसे उसके बारे में थोड़ी चिन्ता होती है। यह विचार उसे सुखदायी मालूम हुआ। वह शाम को उद्यान-वन चला गया और बातों ही बातों में देवयानी के विवाह की बात रंजनी और भावना को सुना दी। देवयानी के बारे में वे सब चन्द्रकान्त से पहले ही कुछ सुन चुकी थीं। किसी ने कोई टिप्पणी नहीं की। पर रंजनी के हृदय में चन्द्रकान्त के लिए जो सहज स्नेह-भाव था वह एक गहरी सहानुभूति में परिणत हो गया। उसे लगा, काश, वह चन्द्रकान्त की वेदना को कम कर सकती। चन्द्रकान्त से वह सहानुभूति छिपी नहीं रह सकी। उसके सूक्ष्म अनुभव से उसके हृदय का बोझ कम हो गया। उस दिन वह अपने मन में एक नई शान्ति का भाव लेकर वहाँ से विदा हुआ।

× × ×

हिन्दी परीक्षाओं का परिणाम प्रकाशित हो जाने के बाद जब मद्रास से प्रमाण-पत्र आगये तब उत्तीर्ण हिन्दी विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों में प्रमाण-पत्र और पुरस्कार बाँटने के लिए एक बृहद् सभा की गई जिसमें शहर के अनेक गणमान्य नर-नारी निमंत्रित होकर पधारे। सभा की अध्यक्षा थीं श्रीमती लक्ष्मी कुट्टी नेति-

यारअम्मा (कोचीन के तत्कालीन यलय राजा की पत्नी)। विद्यार्थिनियों ने हिन्दी में प्रहसन और गाने का भी कार्यक्रम रखा था। हिन्दी-प्रचार के सम्बन्ध में एरणाकुलम में वह एक महत्त्वपूर्ण जलसा था। हिन्दी सीखने वाले एक अंग्रेज़ दम्पति भी उसमें आये थे। छोटी लड़कियों का ड्रामा देखकर वह बहुत खुश हुए और अगले दिन लड़कियों को इनाम देने के लिए पच्चीस रुपये का एक चेक चन्द्रकान्त के पास भेज दिया। उस अवसर पर सबसे ज्यादा खुशी उद्यान-वन में थी, क्योंकि दक्षिण भारत भर में प्रथम आने के उपलक्ष्य में लक्ष्मी को हिन्दी प्रचार सभा से पुरस्कार में बीस रुपये की पुस्तकें मिली थीं। जलसे के दूसरे दिन चन्द्रकान्त जब उद्यान-वन गया तो विशेष मिष्टान्न आदि से उसका सत्कार हुआ। लक्ष्मी ने कहा, यह मेरी गुरु-दक्षिणा है। जलसे के बारे में बातें होती रहीं। जब बातें खत्म हो गईं तब रंजनी ने चन्द्रकान्त को एक कागज़ दिया। उस पर लिखा था—

आवश्यकता है

एक पंजाबी युवक के लिए एक वधु की। लड़की बी ए पास होनी चाहिए। उसमें देश-सेवा की लगन होनी चाहिए। सभा में व्याख्यान देने वाली होनी चाहिए। जात-पात का भेद नहीं माना जायगा। पत्र-व्यवहार का पता, पो० बॉ० नं० ३६०००।

चन्द्रकान्त उसे पढ़कर मुस्कराया। उसने पूछा।

"यह कहाँ से आया है?"

"माधवी ने भेजा है।"

"शायद किसी अख़बार से नकल करके भेजा है?"

"नहीं।"

"तब?"

"उसने मेरे साथ शरारत की है।"

"ऐसा क्यों सोचती हो ?"

"वह ऐसी ही है।"

"लेकिन वह तो तुम्हारी मित्र है।"

"मित्र होने से क्या ? उसने मेरे साथ मज़ाक़ किया है।"

"ऐसा क्यों सोचती हो ? उसका उद्देश्य तुम्हारा हित करना भी हो सकता है।"

"वह मेरा हित करने वाली होती कौन है ?"

"तब ?"

"तब ? अब ज़रा इसे भी पढ़िये।"

इतना कहकर रंजनी ने एक दूसरा काग़ज़ चन्द्रकान्त के सामने रख दिया। उसमें लिखा था--

आवश्यकता है

एक तमिल युवक के लिए एक मैट्रिक पास लड़की की। छोटी बच्चियों को पढ़ाने मे होशियार होनी चाहिए। संगीत जानना जरूरी है। जाति और प्रान्त का कोई बन्धन नहीं है। उत्तर भेजने का पता पो० बॉ० नं० ३६०००।

चन्द्रकान्त इसे पढ़कर हँस पड़ा। वह बोला—"शाबाश ! इस जवाब के लिए बधाई।"

रंजनी भी जो इतने समय तक गम्भीर बनी हुई थी, मुस्कुरा दी। चन्द्रकान्त खिड़की के बाहर देखता हुआ कुछ समय तक मौन बैठा रहा। रंजनी ने कहा, "मालूम होता है कि किसी विचार में तल्लीन हैं !"

चन्द्रकान्त फिर भी मौन धारण किये रहा। रंजनी फिर बोली, "आपको देखकर कोई यही कहेगा कि आप कोई बड़ी समस्या हल करने में लगे हैं ?"

"सचमुच मेरे सामने एक समस्या आ खड़ी हुई है।"

"क्या मैं सुन सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं।"

"तो सुना दीजिये।"

"वही निश्चय नहीं कर पाया हूँ।"

"क्या ?"

"तुमको सुनाऊँ कि नहीं ?"

"मेरे सुनने लायक न हो तो न सुनाइये।"

"वही निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।"

"अच्छा तो मैं निश्चय करने में मदद करूँगी।"

"ठीक है करो।"

"आपको ठीक से नींद आती है ?"

"मतलब ?"

"अर्थात रात को बिस्तरे पर पड़े-पड़े कुछ सोचते तो नहीं रहते ?"

"बहुत सी बातें सोचता रहता हूँ। जैसे अगले दिन क्या करना है, कहाँ हिन्दी क्लास लेने जाना है..."

"नहीं-नहीं, कोई ऐसी बात जिससे कोशिश करने पर भी नींद जल्दी नहीं आती ?"

"हाँ, कभी-कभी वर्ग शुल्क के रुपये कमरे में रख देता हूँ तो जब तक मद्रास को भेज नहीं देता तब तक उसके चोरी चले जाने का डर बना रहता है और नींद नहीं आती।"

यह सुनकर रंजनी हँसी। बहुत दिनों के बाद वह उस दिन उस तरह खुलकर हँसी। चन्द्रकान्त ने कहा, "तुम्हें विश्वास नहीं होता क्या ?"

"आपकी मदद करना बहुत मुश्किल है ? आप एक कठिन व्यक्ति हैं।"

"ऐसा तुम मानती हो ?"

"अगर नहीं हैं तो साफ़ तौर पर क्यों नहीं कह डालते कि आपकी समस्या क्या है ?"

"अगर उसका सम्बन्ध तुम्हीं से हो तब ?"

"तब जल्द से जल्द कह डालिये जिससे मैं भी जान जाऊँ ।"

"कहीं सुनकर ख़ुशी के मारे लोट-पोट होने लगीं तो ?"

"असम्भव है ।"

"कहीं दुख के मारे सुध-बुध खो बैठीं तो ?"

"वह और भी असम्भव है ।"

"अच्छा तो सुनो । मेरा काम बहुत बढ़ गया है ।"

"तो ?"

"उद्यान-वन की विज़िट मुझे कम करनी होगी ।"

"यहाँ ट्यूशन फ़ीस नहीं मिलती इसीलिए ?"—मुस्कुराते हुए रंजनी ने कहा ।

चन्द्रकान्त कुछ जवाब नहीं दे सका । तब रंजनी ने कहा, "हमारी हिन्दी-पढ़ाई में मदद तो करते ही हैं । कुछ फीस भी ले लिया कीजिये ।"

चन्द्रकान्त ने कहा—

"तुम ने समझा नहीं, रजनी ! ट्यूशन फीस की बात नहीं है । वास्तव में काम के बढ़ने का भी कारण नहीं है । तुम लोगों से मुझे जो सौहार्द-भाव प्राप्त है, ईर्ष्यालू लोग उसे सहन नहीं कर सकते । कुछ आदमियों का ऐसा स्वभाव होता है कि जो दूसरों की मित्रता या उन्नति देखकर जलते हैं और नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते हैं ।"

रंजनी गम्भीर होकर सुन रही थी । चन्द्रकान्त की बातें समाप्त हो जाने पर भी वह चुप बैठी रही । चन्द्रकान्त ने आगे कहना शुरू किया,

"मुझे तुम्हारे यहाँ आने से जो सुख मिलता है वह और कहीं

नहीं मिलता। यह सच्ची बात है। फिर भी मैं यह बेहतर समझता हूँ कि मैं उद्यान-वन में आना कम करदूँ। आना बिलकुल बन्द कर देने का मेरा विचार नहीं है। रोज़ न आकर सप्ताह में एक-दो बार आया करूँगा।"

"आप ऐसा दूसरों की ईर्ष्या से डरकर करना चाहते हैं?"

"नहीं, तुम लोगों की ख़ातिर।"

"सो कैसे?"

"मैं कदापि यह सहन नहीं कर सकता कि मेरे कारण किसी को तुम लोगों की तरफ़ उँगली उठाने का मौका मिले।"

"ओह! यह बात है।"

"मैं तुम लोगों के अच्छे नाम को अधिक महत्त्व देता हूँ।"

इतनी बातचीत के बाद दोनों चुप रहे। दोनों कुछ सोचने लगे। अन्त में चन्द्रकान्त उठते हुए बोला, "इस समय विदा लेता हूँ। मेरी बातों से दुख पहुँचा हो तो क्षमा करना।" और वह चला गया।

रंजनी के ऊपर इस बातचीत की एक ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई। हमेशा की तरह वह उस दिन चन्द्रकान्त को गेट तक पहुँचाने नहीं गई। चन्द्रकान्त के जाते ही जिस बड़ी आरामकुर्सी पर वह बैठा था उसी पर पड़ गई। और अपने आँसुओं को पोंछते हुए अपने को सँभालने की कोशिश करने लगी।

चन्द्रकान्त के कान में कुछ दिन पहले यह भनक पड़ी थी कि कुछ लोग उसका नाम रंजनी से जोड़ने लगे हैं। उसी समय उसके मन में यह विचार उठा कि वह उद्यान-वन जाना बन्द करदे जिससे यह बात आप से आप समाप्त हो जाय। फिर उसने सोचा कि एकाएक ऐसा करना ठीक नहीं होगा। उसके दिल में यह भी विचार उठा कि उसका दिल साफ़ है तब कुटिल लोगों द्वारा फैलाई अफ़वाह को महत्त्व देकर वह कोई नई बात क्यों करे। इस उधेड़-

धुन में उसका उद्यान-वन पूर्ववत आना-जाना बन्द रहा। लेकिन रंजनी ने जब एक सहेली का मज़ाक में भेजा हुआ 'वधु की आवश्यकता' वाले विज्ञापन का कागज़ उसे दिखाया तब फिर उसके मन में यह विचार उठा कि उद्यान-वन आना-जाना कम कर देना ही ठीक होगा। और उसने रंजनी के सामने अपना विचार प्रकट कर दिया।

उसके बाद चन्द्रकान्त के मन में बार-बार यह प्रश्न उठने लगा कि रंजनी से उस तरह की चर्चा करके उसने भूल तो नहीं की। इससे उसे कितना मानसिक कष्ट पहुँचा होगा। और दूसरों की फैलाई अफ़वाहों से डरकर वह कुछ करे यह विचार भी उसे अपने लिए शोभनीय नहीं मालूम हुआ। वह रंजनी से फिर जल्दी मिलकर अपनी तसल्ली कर लेने के लिए अधीर हो गया कि उस बातचीत का रंजनी के ऊपर कोई बुरा असर तो नहीं पड़ा।

दूसरे दिन जब वह उद्यान-वन पहुँचा तब रंजनी अपने अहाते में टहल रही थी। वह चन्द्रकान्त के पास आ गई और पूछा, "अच्छे तो हैं?"

चन्द्रकान्त कुछ नहीं बोला। दोनों बैठक में जाकर बैठ गये। भावना और लक्ष्मी भी आ गईं। कुछ इधर-उधर की बातें होने लगीं। इतने में माँ ने नौकर के हाथ चन्द्रकान्त के लिए चाय भेज दी। रंजनी ने उस समय की बात-चीत में खुलकर भाग लिया। चन्द्रकान्त भीतर ही भीतर प्रसन्न हुआ कि पिछले दिन की बात-चीत का कोई बुरा असर उस पर नहीं पड़ा है।

भावना और लक्ष्मी किसी काम से चली गईं। जब चन्द्रकान्त भी जाने के लिए उठा तब रंजनी ने उसे एक पत्र दिया और कहा कि अवकाश में इसे पढ़ियेगा। चन्द्रकान्त ने वहाँ से अपने होटल जाकर भोजन किया। फिर अपने कमरे में पहुँचकर बिजली जलाई

और बिछौने पर लेटे-लेटे पत्र पढ़ना शुरू किया।

मध्य-रात्रि
१५ नवम्बर

प्रिय चन्द्रकान्त,

आधी रात की इस वेला में मैं यह पत्र लिखने बैठी हूँ। रात्रि की एकान्त नीरवता में, हृदय के अन्तस्तल में, और उसी के स्पन्दन में, एक संगीत का अनुभव करना मेरा नित्य का प्रिय कार्य हो गया है। आपको देखने के पहले, आपसे मिलने के पहले, आपके हृदय के अगाध प्रेम का अनुभव करने के पहले मैं क्या थी और आज क्या हो गई हूँ? आपसे मुझे उस लोक की झाँकी मिली है जहाँ संसार के सुख-दुख, शोक और विषाद भी मधुर हो जाते हैं। जहाँ मैं और तू का भेद नहीं रह जाता और जहाँ आत्मोत्सर्ग में आत्मानन्द का अनुभव होता है। लेकिन आपके साथ जैसे-जैसे मेरा परिचय और सम्पर्क बढ़ा वैसे-वैसे मेरे हृदय के भाव आपके प्रति नये रूप धारण करने लगे। मैं अपने ऊपर सन्देह करने लगी, अपनी नई स्फूर्तियों, नये उल्लासों और नई वेदनाओं से डरने लगी और उन्हें अवांछनीय समझकर उनको उन्मूल कर देने की कोशिश में लग गई। लेकिन उस प्रयत्न में मुझे सफलता नहीं मिली। वे और भी बलवती हो गईं और उसके साथ ही मुझे एक नई दृष्टि मिली—एक नई अनुभूति जो एक साथ ही आनन्ददायक और कष्टदायक दोनों थी। आज इस पत्र द्वारा मैंने आपको सब कुछ बता देने का निश्चय किया है। अब अकेले उस भार को सहन करना मेरे लिए मुश्किल हो गया है।

आपने अनजाने मुझे कितना प्रभावित किया है, कितना बदल दिया है। आपने मेरे हृदय के अन्धकारपूर्ण गह्वर में एक मधुर प्रकाश भर दिया है। आपके जीवन में मुझे एक दिव्य प्रेम

का दर्शन हुआ है, जिसे मैं आपके सुन्दर सेवामय जीवन का रहस्य समझती हूँ।

आपको अपने गुरू और बन्धु के रूप में पाकर मैंने एक अपूर्व आनन्द और गौरव का अनुभव किया है।

आप जान ही चुके हैं कि मेरे दो बड़े भाई स्वर्गवासी हो गये हैं। आपको शायद यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे स्वर्गीय दूसरे भाई और आप में एक सूक्ष्म सादृश्य है। हमारे परिचय के प्रारम्भ में ही उस सादृश्य की ओर मेरा ध्यान गया था। मुझे ऐसा लगा था कि मेरे दिवंगत भाई आपके रूप में मेरे सामने आ गये हैं। एक बार पिताजी ने भी उस सादृश्य का ज़िक्र किया था। उस अनुभूति ने बलपूर्वक मुझे आपकी तरफ़ विशेष रूप से आकृष्ट किया।

अपने दोनों पुत्रों को खोकर मेरी माता के दुख का पारावार नहीं था। उनके वियोग में वे रात-दिन आँसू बहाया करती थीं। एक दिन मैंने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "माँ, अब तो वे लौट-कर आने वाले हैं नहीं। सबको तो एक न एक दिन जाना ही है। फिर भगवान् की इच्छा मानकर धीरज धरने का ही प्रयत्न करना चाहिए न ? तुम मुझे ही उन पुत्रों में से एक समझो और अपने दुख को कम करो। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं पूर्ण हृदय से तुम्हारी सेवा करने में अपना सुख मानूँगी' और इसके लिए मैं विवाह के बन्धन में भी नहीं पड़ूँगी। वैसे भी विवाह और आमोद-प्रमोद की बातों में मेरी दिलचस्पी नहीं थी और आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने में मेरा मन लगता था। आपके सम्पर्क में आने पर मेरी भावनाओं को और भी पुष्टि और स्फूर्ति मिली। मुझे ऐसा लगने लगा कि मेरा आनन्द पूर्ण हो गया। किन्तु बहुत दिन बीतने नहीं पाये कि इस आनन्द की गहराई से एक अशान्ति, एक विकलता की लहर उठी। मेरा मन आपके निकटतम सान्निध्य के

लिए व्यग्र रहने लगा । वह पिपासा मुझे सताने लगी कि आप हमेशा मेरे पास ही रहते। जब आप हमारे घर आते और जाने लगते तब भीतर ही भीतर यह चाह होती कि आप कुछ समय और रहें। मेरे हृदय की वह पिपासा एक ज्वाला का रूप धारण करने लगी और मैं उसमें जलने लगी । मैं डरने लगी' आपसे नहीं बल्कि स्वयं अपने आप से। मेरे कारण आपके पवित्र जीवन में कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय, मैं आपकी उन्नति में बाधक न बन जाऊँ, इस डर से मैं अपने आपको आपसे दूर रखने की कोशिश करने लगी। मैंने निश्चय किया कि आगे आपके साथ मैं औपचारिक सम्बन्ध ही रखूँगी। लेकिन यह कहते मुझे ग्लानि हो रही है कि मैं अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुई।

मैंने प्रकट रूप में अपने को आपसे अलग रखा है तो अन्तर-जगत् में एकात्माभाव अनुभव किया है। प्रकट रूप में अधिक बातें करनी छोड़ दी हैं तो मानस जगत् में अभिन्न हो गई हूँ। मैं धीरे-धीरे अनुभव करने लगी हूँ कि किसी तरह का बाहरी भेद-भाव, सीमा और बन्धन मुझे आपसे अलग नहीं रख सकता। मैं आध्यात्मिक जगत् में आपसे अलग नहीं रह सकती।

शायद इस पत्र को पढ़कर और मेरी सब बातें जानकर आप मुझ से रुष्ट हो जायँगे, मेरे बारे में आपके विचार बदल जायँगे, मुझसे आप घृणा करने लग जायँगे। लेकिन आप यह बात न भूलियेगा कि अपने हृदय को खोलकर आपके सामने रखे बिना शान्ति के साथ रहना मेरे लिए असम्भव हो गया है।

आपने हमारे घर आना-जाना कम कर देने की बात उठाई है। मैं पूछती हूँ, 'क्या यह आवश्यक है ? क्या यह जानकर भी कि आप मेरे निकटतम सुहृद, बन्धु और गुरु हैं और आपसे प्राप्त बल और प्रकाश का सहारा मेरे लिए कितना आवश्यक हो गया है, आप हमारे साथ अपना सम्पर्क कम करने की बात

सोचेंगे ? आज मैं अपने को निरी एक नारी, निर्बल, अपूर्ण, आधारान्वेषी नारी पा रही हूँ। इसलिए यह मेरी आपसे हार्दिक विनती है कि आप इस नगर में जब तक रहें मुझे कुछ और सीखने दें, अपने दिव्य प्रेम से कुछ और प्रेरणा ग्रहण करने दें।

श्रद्धासिक्त

रंजनी

× × ×

चन्द्रकान्त बिछावन पर पड़े-पड़े पत्र को कई बार पढ़ गया। इस पत्र ने रंजनी को उसके सामने सर्वथा एक नये रूप में प्रस्तुत किया। रंजनी में इतनी गहराई होगी, उसने नहीं सोचा था। वह उस पत्र को छाती पर रखे, उसके बारे में सोचते-सोचते निद्रा के वशीभूत हो गया। दूसरे दिन सवेरे जब वह उठा तब पत्र को अपनी खाट के नीचे गिरा पड़ा देखा। उसका सबसे पहला काम पत्र को उठाकर फिर से पढ़ना था। उस पत्र की बातों को लेकर निद्रावस्था में भी उसके मन में एक द्वन्द्व चल रहा था। वह पत्र उसी के लिए लिखा गया था इस विचार से बीच-बीच में उसे एक ख़ुशी हुई। किन्तु उसका प्रभाव अधिकांशतः उसे चिन्तित बनाने वाला ही था। वह मन ही मन गुनगुनाने लगा,

"इश्क वह चीज़ है पत्थर को दम में आग करे,
लगाये दिल वही खुदा जिसको खराब करे॥"

उसके मन के सामने सरस्वती और देवयानी घूम गईं। वह भूली हुई चपल आँखों वाली मनोरमा भी याद आ गई। उसे अपने ऊपर एक झुँझलाहट पैदा हुई। उसने अपने को मूर्ख कहा, सिड़ी कहा और न जाने क्या-क्या कहा। उसने सोचा—'नौकरी तो वह करता है एक ऐसी संस्था में जिसमें ७५) मासिक से अधिक किसी को वेतन देने का नियम नहीं है, उस पर जो कुछ कमाता है उसमें से भी अपने ऊपर एक छोटी रक़म ही खर्च कर सकता है।

उसी पर घर की सारी ज़िम्मेदारी है। फिर भी मन में हौसले उठते हैं आसमानी। रंजनी की तुलना में वह क्या है? रंजनी एक भोली-भाली युवती है, दुनिया का उसे कोई अनुभव नहीं, निरी भावुक है। उसे मालूम नहीं कि इस तरह के पत्र का दुनिया क्या अर्थ लगायेगी।

वह उस पत्र को हाथ में पकड़े कुछ सोचता रहा। तब उसने कहा—'इस अमूल्य पत्र को सुरक्षित रखने का मेरे पास स्थान नहीं है।' और तब, उस पत्र को उसने अपने हाथों से फाड़ डाला, उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और एक लम्बी साँस ली। फिर उन टुकड़ों को एक-एक करके चुन लिया और जिस लिफ़ाफ़े में रखकर वह आया था उसी में उन टुकड़ों को रख दिया। कमरे से बाहर जाकर एक आदमी से दियासलाई माँगकर लाया और उस लिफ़ाफ़े में आग लगा दी।

शाम को वह रोज़ की तरह उद्यान-वन गया और ऐसा भाव प्रकट किया मानो कुछ हुआ ही नहीं। रंजनी ने भी अपने व्यवहार या बात में कुछ नयापन नहीं दिखाया। ऐसा लगा कि पिछली शाम की बात एक स्वप्न की तरह आई और चली गई। लेकिन एक असर दोनों पर छोड़ गई। रंजनी के हृदयाकाश में छाये काले बादल साफ़ हो गये और चन्द्रकान्त की आँखों में एक नूतन परिचय और अनुभूति की झलक आ गई। दोनों ने एक दूसरे के उस अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन को नोट किया। दोनों मन ही मन प्रसन्न हुए और अपनी प्रसन्नता को हवा में बिखेर दिया।

× × ×

चन्द्रकान्त कोचीन जाने के बाद वहाँ के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। दूध जैसे सफ़ेद वस्त्र धारण करने वाले स्त्री-पुरुषों के बीच काषाय में रंगे कुर्ता और चादर पहनकर

रहना उसे अच्छा न लगा। अतः वहाँ जाने के चन्द दिनों के बाद उसने रंगीन कुर्ता पहनना छोड़ दिया। अविवाहित रहने और संन्यासी बनने के लिए उसे काषाय वस्त्र अनिवार्य नहीं मालूम हुआ। फिर उसने सोचा कि संन्यासी बनने के मूल में आजीवन अविवाहित रहने की ही तो उसकी भावना है। इसके लिए संन्यासी बनने की क्या आवश्यकता है? बिना संन्यासी बने भी वह अविवाहित रहकर देश-सेवा का काम कर सकता है। वास्तव में संन्यासी बनने के विचार से उसके मन पर एक बड़ा बोझ पड़ गया था। संन्यासी बनने के पीछे जो शुष्क त्यागवाद है उससे उसे शान्ति तो नहीं मिली थी। लेकिन निषिद्ध और ग्राह्य का संघर्ष उसके मन में सदा बना रहता था। उसके हृदय में एक सहज सरसता थी। सौन्दर्य के प्रति उसमें एक अनुराग था जो आर्यसमाज की शिक्षा-दीक्षा और तत्वज्ञान के अध्ययन से भी कुण्ठित नहीं हो सका था। अरब समुद्र के तट पर की हवा-हरियाली और वहाँ के नर-नारियों के मधुर व्यवहार ने उसकी सौन्दर्य-भावना को जगाने का ही काम किया। शंकराचार्य के उस रम्य प्रदेश में जाकर वह 'जगत मिथ्या' की ओर नहीं वरन् इस तत्वज्ञान की ओर आकृष्ट हुआ कि भोग में योग की सिद्धि ही वास्तविक पुरुषार्थ है। इससे उसके मन, हृदय और बुद्धि में एक सन्तुलन का आविर्भाव हुआ और संघर्ष की समाप्ति हुई।

एक दिन वह थका-मांदा उद्यान-वन पहुँचा। उस दिन उसे अपनी साइकिल पर कुछ अधिक चक्कर लगाना पड़ा था। रंजनी उसे ऊपर दोमंज़िले पर बुला ले गई। दोमंज़िले पर वह पहले कभी नहीं गया था। ऊपर जाने पर वह क्या देखता है कि वहाँ भावना और लक्ष्मी के अलावा संध्या देवी और दो-तीन अन्य हिन्दी सीखने वाली महिलायें भी उपस्थित हैं। लम्बे हॉल के बीच में एक बड़ी मेज़ रखी थी। उस पर खादी का एक सुन्दर मेज़पोश

पड़ा था। बीच में ताजे फूल-पत्तों के गुलदस्ते रखे थे। मेज़ के चारों तरफ़ तरतीब से कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक तरफ़ एक सोफ़ा था। हॉल में प्रवेश करते ही चन्द्रकान्त की सब चीजों पर नजर पड़ी। लेकिन एक चीज़ ऐसी थी जिसे उसने देखकर भी नहीं देखने का भाव प्रकट किया। वह था उसका फ़ोटो जिस पर खादी की एक माला डाल दी गई थी। वह एक छोटी मेज़ पर अलग एक तरफ़ खड़ी करके रख दी गई थी। फ़ोटो में शीशा नहीं लगा था। फ़ोटो के सामने फूल रखे हुए थे। अगरबत्ती जल रही थी। उद्यान-वन में वह आयोजन उसकी वर्षगाँठ मनाने के लिए किया गया था। चन्द्रकान्त के जीवन में वर्षगाँठ मनाने का वह पहला अवसर था। उसने पिछले साल संकल्प किया था कि २५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर वह विधिपूर्वक संन्यास आश्रम में प्रवेश करेगा। लेकिन उसे वह भूल चुका था और उस दिन उसे भुला देना ही उसको प्रियकर लगा। भाई माधवन भी आ गये। माता जी ने मिठाइयों और फलों की तश्तरियाँ ऊपर भेज दीं। कॉफ़ी भी आ गई। उसके बाद छोटी लक्ष्मी ने मलयालम में स्व-रचित एक कविता पढ़ी और चन्द्रकान्त का उसकी २५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में अभिनन्दन करते हुए शुभ कामनायें प्रकट कीं। जब वह अपनी कविता पढ़ रही थी तब माता जी भी आ गईं और खड़ी-खड़ी सुनती रहीं। कविता-पाठ समाप्त होने पर माधवन ने चन्द्रकान्त के लिए अपनी शुभकामनायें प्रकट करते हुए तश्तरियों की तरफ़ सबों का ध्यान आकृष्ट किया। ग्रामोफ़ोन रेकार्ड के संगीत का आनन्द लेते हुए सबों ने प्रीति-सत्कार का आनन्द लिया। अन्त में चन्द्रकान्त ने माधवन और रंजनी तथा अन्य सबों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि आज का दिन मेरे जीवन में एक अपूर्व दिन है। यह वर्षगाँठ मनाकर आपने मेरे जीवन की रजत-जयन्ती मनाई है। यह दिन

हम सबों के लिए भावी मंगल का सूचक सिद्ध हो, यही प्रभु से मेरी प्रार्थना है।

× × ×

चन्द्रकान्त के पास मद्रास से सूचना आई कि महात्मा जी के परामर्श से दक्षिण भारत में सेठ जमनालाल बजाज के नेतृत्व में हिन्दी प्रचारार्थ एक शिष्टमण्डल भ्रमण करेगा। शिष्ट-मण्डल के भ्रमण का कार्यक्रम भी उसके पास आ गया। चन्द्र-कान्त ने एरणाकुलम के हिन्दी-प्रेमियों के सम्मुख यह सुझाव रखा कि शिष्टमण्डल के एरणाकुलम आने के अवसर पर प्रथम केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सम्मेलन किया जाय। सबों को वह सुझाव पसन्द आगया। श्रीमती लक्ष्मी कुट्टी नेतियारम्मा की अध्यक्षता में एक स्वागतकारिणी समिति बना दी गई। सम्मेलन महाराजा कालेज के विशाल हॉल में ट्रावनकोर के रिटायर्ड जज श्री के. जी. शेषअय्यर की अध्यक्षता में हुआ। सेठ जमनालाल बजाज ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। उस अवसर पर हिन्दी विद्यार्थियों ने हिन्दी में मेवाड़-पतन नाटक का अभिनय किया। उक्त शिष्ट-मण्डल में श्री राजगोपालाचार्य भी (सम्मिलित) थे। राजाजी के द्वारा स्थानीय गर्ल्स हाई स्कूल के हिन्दी पुस्तकालय का उद्-घाटन कराया गया। स्कूल की हेड मिस्ट्रेस श्रीमती वेलायुध मेनोन ने राजाजी का स्वागत करते हुए एरणाकुलम की स्त्रियों में एक साल में हिन्दी प्रचार का जो काम हुआ था उसका परिचय दिया। राजाजी ने एरणाकुलम की स्त्रियों को उनकी सफलता के लिए बधाई देते हुए कहा कि हिन्दी को सिर्फ ऐच्छिक विषय के तौर पर पढ़ाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इसे एक अनिवार्य विषय के तौर पर स्कूलों में स्थान मिलना चाहिए। जिससे दक्षिण भारत का एक भी विद्यार्थी हिन्दी से अनजान नहीं रहे।

सम्मेलन के लिए चन्द्रकान्त को विशेष परिश्रम करना पड़ा था। उसका असर उसके स्वास्थ्य पर पड़ा। उसने स्वास्थ्य-सुधार के लिए एक लम्बी छुट्टी लेकर बिहार जाने का निश्चय किया। हर साल सिर पर नये-नये काम आ जाने के कारण तीन-चार साल से वह छुट्टी नहीं ले सका था। एरणाकुलम से उसके बिदा होने के पूर्व वहाँ के हिन्दी विद्यार्थी और विद्यार्थिनी-मण्डलों के तत्वावधान में एक सार्वजनिक सभा करके उसे एक शानदार बिदाई दी गई। चन्द्रकान्त सबों से मिल-मिलाकर एक दिन एरणा-कुलम से रवाना हो गया। बिदाई की सभा में हिन्दी सीखने वाले एक वकील ने अपने भाषण में चन्द्रकान्त की सफलताओं का ज़िक्र करते हुए कहा, "Ceasar came, Ceasar saw and Ceasar conquered".

(सीज़र आया, सीज़र ने देखा और सीज़र ने जीता।)

ट्रेन में बैठने के बाद अगर कोई एक ख़ास व्यक्ति था जिसके बारे में चन्द्रकान्त सबसे ज्यादा सोच रहा था तो वह रंजनी थी। उसे उस वकील मित्र की उक्ति भी स्मरण हो रही थी कि 'सीज़र केम, सीज़र सॉ एण्ड सीज़र कॉंकर्ड'। पर अब वह एक व्यंग की तरह चुभ रही थी।

७

हृदयोद्गार

सुबोधपुर
३ मार्च

रंजनी,

तुम लोगों से अलग होने पर अब मेरे लिए तुम लोगों का स्नेह ही है जो मेरी प्रसन्नता का कारण बना रहेगा। मैं कल ही यहाँ पहुँचा हूँ। पर ऐसा लगता है कि कुछ वहीं छोड़ आया हूँ। पूज्य मातामही, माताजी और पिताजी को मेरा सादर प्रणाम कहना और भाई माधवन, भावना, लक्ष्मी और सबों को मेरा स्नेह।

शुभैषी
—चन्द्रकान्त

× × ×

उद्यान-वन
३ मार्च

प्रिय चन्द्रकान्त,

आशा है, आप सकुशल घर पहुँच गये होंगे और वहाँ सब प्रसन्न होंगे। अब चूँकि पहले की तरह यहाँ आपके दर्शन की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है, हृदय में एक रिक्त स्थान अनुभव हो रहा है जिसे भरने के लिए सिवा आह और सिसकियों के और कुछ नहीं है। अब जबकि वास्तव में आप चले गये हैं, यह अनुभव होने लगा है कि मैंने क्या खो दिया है। मैं एक माता, एक बहन और एक विरहिनी की मिश्रित भावनाओं से विह्वल हो रही हूँ। आपके जाने के बाद मैंने कुछ उद्गार लिखे हैं। उन्हें नीचे लिखती हूँ—

मेरी अज्ञानता दूर कर मुझे ज्ञान-ज्योति की ओर आकृष्ट करने कौन आया ?

जब मैं आलस्यपूर्ण निद्रा में पड़ी थी तब मुझे जागृत करके कर्तव्य की ओर प्रेरित करने कौन आया ?

जब मेरा चंचल मन अतृप्ति की लपटों से घिरकर झुलसने लगा तब मेरे मन को शीतलता प्रदान करने कौन आया ?

जब मैं अपनी निर्बलता के कारण अपने पथ पर विचलित होने लगी तब मुझे दृढ़ता प्रदान करने कौन आया ?

जब मेरा शुष्क हृदय आनन्दहीन भविष्य की कल्पना से निष्प्राण होने लगा तब उसे प्रेम-सुधा से प्राणवान बनाने कौन आया ?

और अब, जब कि मैं विरह-वेदना से विह्वल हो जाती हूँ मुझे दुर्लभ दर्शन देकर आनन्दित करने कौन आता है ?

जब कि निराशा की अग्नि मेरे हृदय को जलाने लगती है तब उसे प्रेम की शीतलता प्रदान करने कौन आता है ?

जब कि एक अप्राप्य मिलन के लिए मेरा मन व्यग्र हो उठता है तब उसे आत्मस्पर्श से परितृप्त करने कौन आता है ?

और जबकि जीवन-संघर्ष की पीड़ा से व्याकुल हो उठती हूँ तब ईश्वरेच्छा पर आत्मसमर्पण करने का गुरुमन्त्र देने कौन आता है ?

× × ×

जहाँ वास्तविक महानता है उसे देखना और सराहना,
जहाँ वास्तविक सुन्दरता है उसे देखना और आह्लादित होना,
जहाँ वास्तविक गुण है उसे देखना और मानना,
मानुषिक है, स्वाभाविक है ।
किन्तु लघुता में महानता देखना,
कान्तिहीन में कान्ति देखना,

और गुणहीन में गुण देखना,
दैविक है, आध्यात्मिक है।
भले का भला चाहना,
भले को भला कहना,
भले का भला करना,
मानुषिक है, स्वाभाविक है।
किन्तु सबों को भला कहना,
सबों का भला चाहना,
और सबों का भला करना,
दैविक है आध्यात्मिक है।

× × ×

हे बालिके, तू इतनी तन्मयता से यहाँ क्या देख रही है? क्या तू बालू पर उन पूर्व-परिचित पहियों और पदों के चिन्ह खोज रही है?

तू इतनी तल्लीनता से क्या सुन रही है? क्या तू उस पूर्व-परिचित वंशी की मधुर तान सुनने की इच्छा कर रही है?

तू अपने कक्ष में दीप जलाये क्यों बैठी है? क्या तू उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रही है?

किन्तु हे बालिके, यह सब अब व्यर्थ है। क्योंकि वह तो चला गया। तुझ से विलग हो गया। अब तू उसकी स्मृति से ही सन्तोष कर। —रंजनी

× × ×

चन्द्रकान्त और रंजनी एक-दूसरे के बहुत घनिष्ट सम्पर्क में आ गये थे। पर आपस में व्यक्तिगत बातें नहीं की थीं। अब जबकि उन दोनों के बीच ढाई हज़ार मील का फ़ासला था, तब वे एक दूसरे का अभाव तीक्ष्णता के साथ अनुभव करने लगे और एक दूसरे के सम्मुख अपना हृदय खोलकर रखने के लिए तड़पने

लगे। दोनों ने एक दूसरे को एक ही दिन अपना पहला पत्र लिखा। उनके पत्र एक ही दिन डाक से रवाना होकर एक-दूसरे को पार करते हुए अपने गम्य स्थान के लिए रवाना हुए।

चन्द्रकान्त ने अपने दूसरे पत्र में रंजनी को लिखा—"मैं कई तरह से अपने को व्यस्त रखने की कोशिश कर रहा हूँ। शाम को टहलने जाता हूँ और किसी कुज में बैठकर गुनगुनाने लगता हूँ 'बन बंशी बजावत बनवारी'। माँ पूछती है,'यहाँ मन नहीं लगता क्या?' मैं उत्तर देता हूँ, 'यहाँ किस चीज़ का अभाव है? मैं तो जहाँ जाऊँ वहीं आनन्द मनाऊँ।' देखो, कैसी बड़ी बातें करता हूँ। पर सच तो यह है कि यह गाते-गाते नहीं थकता कि,

"किस की ख़िरामनाज़ ने क़ब्र में हमको हिला दिया,
चैन से सो रहे थे हम किसने हमें जगा दिया।"

रंजनी ने अपने दूसरे पत्र में लिखा—प्रतिदिन आपके पत्र की प्रतीक्षा में रहती हूँ। यहाँ तो अब अमावस की ही एक लम्बी रात हो गई है, और चकोर चाँदनी के लिए तरस रहा है। कई साल पहले माँ को एक व्रत के सिलसिले में मैंने १२ दिन तक मन्दिर में जाकर भजन करने का वचन दिया था। स्कूल बन्द हो जाने के बाद वह शुरू कर दिया। प्रतिदिन प्रातः ४-५ बजे के बीच स्नानादि से निवृत होकर भावना के साथ मन्दिर जाती थी और ८ बजे तक मन्दिर के प्रांगण में परिक्रमा करते हुए भजन करती थी। समुद्र से आने वाली शीतल समीर का स्पर्श बड़ा सुखद मालूम पड़ता था। पूर्व दिशा में मेघमण्डल का विविध रंग धारण कर क्रीड़ा करना भी एक मनोरम दृश्य उपस्थित करता था। देवालय के भीतर से एक मधुर गीत और वाद्यघोष निकलकर हृदय में एक अपूर्व आनन्द की सृष्टि करता था। सायंकाल पश्चिम आकाश के चित्ताकर्षक रंगमंच पर अस्ताय-मान सूर्य की आँख-मिचौनी क्रीड़ा मन को विकल कर देने वाली

होती थी। प्रातः, मध्यान्ह और सायं, प्रतिदिन तीन बार मन्दिर जाने का कार्यक्रम था। समय आसानी से कट जाता था। किन्तु आज भजन का वह कार्यक्रम भी समाप्त हो गया। अब समय कैसे कटेगा?

जब कोई काम नहीं रहता तब आरामकुर्सी पर पड़ जाती हूँ और अपने को अद्वैत राज्य की प्रजा समझकर शान्ति का अनुभव करने का प्रयत्न करती हूँ। माँ कहती हैं, चन्द्रकान्त अपने घर पहुँच गये होंगे तब उनकी माँ को कितना हर्ष हुआ होगा। उसे मैं देख पाती तो कितनी प्रसन्न होती।

यहाँ एक ग्रुप फोटो खिंचवाया है। उसमें मेरे अलावा संध्या और भावना हैं। देखने वाले मुस्कराकर पूछते हैं कि उत्तरीय वेश में यह किस के लिए लिया गया है। मेरी मूकता ही उसका उत्तर होती है। एक प्रति आपके पास भेजना चाहती हूँ। कोई आपत्ति तो नहीं है? नीचे का उद्गार भी पढ़िये।

फूल कुम्हला गया है। मधु सूख गया है और पंखुड़ियाँ झड़ गई हैं। परन्तु उसका सौरभ वायु में छाया हुआ है। हे सौरभ, तू ही वास्तव में सत्य है. तू ही शाश्वत है। मैं तुझ में मिलकर एक हो जाऊँ।

गान समाप्त हो गया है। वाद्य हटा दिया गया है और गायक भी चला गया है। पर गाने का राग अन्तरिक्ष में प्रति-ध्वनित हो रहा है। हे राग, तू ही सत्य है, तू ही स्वर्गीय है। मैं तुझ में मिलकर एक हो जाऊँ।

सूर्य अस्त हो गया है। उष्णता समाप्त हो गई है। प्रकाश चला गया है। परन्तु नक्षत्र की क्षीण ज्योति झिलमिल कर रही है। हे झिलमिल ज्योति, तू ही सत्य है, तू ही स्थिर है। मैं तुझ में मिलकर एक हो जाऊँ।

ग्रीष्म बढ़ गया है। नदियाँ सूख गई हैं। झील और सरोवर

जल-रहित हो गये हैं। पर क्षीणकाय स्रोत प्रवाहित हो रहा है। हे स्रोत, तू ही सत्य है, तू ही अमर है । मैं तुझ में मिलकर एक हो जाऊँ।

आँधी का झोंका आता है और निकल जाता है। उसके साथ ही सारा कोलाहल भी समाप्त हो जाता है। पर मन्द पवन सर्वदा चलायमान रहता है । हे पवन, तू ही सत्य है, तू ही सम है। मैं तुझ में मिलकर एक हो जाऊँ।

—रंजनी

× × ×

उद्यान-वन

प्रिय चन्द्रकान्त,

आपका पत्र मिला, जिसकी मैं इतनी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। आप जिस दिन गये उस दिन से एक पत्र पाने के लिए मैं कितनी अधीरता से प्रतिदिन डाकिये के आने की प्रतीक्षा करती थी और प्रतिदिन पत्र न पाकर निराश होती थी । वह उत्सुक प्रतीक्षा आज सफल हुई । तो वहाँ जाने के बाद आपका मन अशान्त रहता है? आप यहाँ अपने घोर परिश्रम के कारण बहुत कमजोर और दुबले हो गये थे । वहाँ घर पर मन को शान्त रख कर अपना स्वास्थ्य पूर्णतः सुधार लेना चाहिए । मैं जानती हूँ, वहाँ माँजी हैं जो अपने हृदय के सम्पूर्ण वात्सल्य से अपने प्यारे पुत्र के स्वास्थ्य को सुधारने के सब उपाय करेंगी। लेकिन आप अपने मन को प्रसन्न और शान्त नहीं रखेंगे तो स्वास्थ्य कैसे सुधरेगा? काश, मैं पास में होती! पर यहाँ से सिवा आहें भरने के और क्या कर सकती हूँ? मेरी भावुकता के लिए क्षमा करेंगे। कल रात को मैंने निम्नलिखित उद्गार लिखा —

मैं अपने स्वजनों के मध्य में हूँ। चारों ओर कोलाहल हो रहा है। सामने मैं कई प्रकार के दृश्य देख रही हूँ । किन्तु मेरा मन

इनसे दूर भागता है और एक एकान्त में तल्लीन होना चाहता है। आज यही मेरा विनोद है, यही मेरा आनन्द है।

मैं चारों ओर आमोद-प्रमोद और हास-विलास की उन्मादिनी रंगरेलियाँ देख रही हूँ। किन्तु मेरा मन कहीं दूर से आने वाली पुकार को सुनकर उस ओर प्रधावित हो रहा है। आज यही मेरा विनोद है, यही मेरा आनन्द है।

मैं रजनी के निविड़ अन्धकार की निस्तब्धता में एकाकी बैठी हूँ। दुनिया निद्रा में निश्चिन्त पड़ी है। किन्तु मेरा मन दूर, बहुत दूर से आते हुए प्रकाश की रेखा को देखकर एक नई चेतना का अनुभव कर रही है। आज यही मेरा विनोद है, यही मेरा आनन्द है।

—रंजनी

पुनश्च—पूज्य पिता जी अस्वस्थ हो गये हैं।

× × ×

चन्द्रकान्त का गाँव शहर से बहुत दूर गंगा के पास बसा था। पास का डाकखाना पाँच मील दूर था। डाकिया पास के गाँव में लगने वाली हाटों के दिन सुबोधपुर का कोई आदमी मिल जाने पर उसके हाथ गाँव की सब चिट्ठियाँ भेज देता था। वह आदमी अपनी सुविधानुसार जो चिट्ठी जिसकी होती उसे दे देता या उसके पास किसी के हाथ भिजवा देता था। इस व्यवस्था से चिट्ठियाँ पाने वालों को देर से मिलती थीं। कभी-कभी खो भी जाती थीं। सुबोधपुर पहुँचने के बाद रंजनी की तीन चिट्ठियाँ चन्द्रकान्त को एक दिन एक साथ मिलीं। उन्हें पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उत्तर में लिखा—

प्रिय रंजनी,

तुम्हारे तीन पत्र आज मुझे एक साथ मिले। मैं तो सोचने लगा था कि तुम लोगों को अब मेरी याद भी नहीं होगी। लेकिन वह मेरी भूल थी। अपने आखिरी पत्र में तुमने अपनी भावुकता

के लिए क्षमा माँगी है। क्या भावुकता बुरी चीज़ है? हृदय की भावना का घनीभूत हो जाना ही तो भावुकता है? जिसके हृदय में किसी भाव को ग्रहण करने की अधिक शक्ति रहती है, जिसे सहानुभूति, स्नेह, प्रेम और सौन्दर्य का बोध अधिक होता है वही भावुक होता है न? भावुकता एक आत्मगत (Subgective) प्रवृत्ति है। मुझ से कोई पूछे—"तुम बुद्धिवादी कहलाना पसन्द करोगे या भावुक?" तो मेरा उत्तर भावुक कहलाने के पक्ष में ही होगा। तुम्हारे ये सुन्दर उद्गार तुम्हारी भावुकता के ही परिणाम तो हैं। ऐसी भावुकता को मैं प्रणाम करता हूँ।

फोटो भेजने के सम्बन्ध में तुम्हारा प्रश्न भी विचित्र है। तुम मुझे कितना कम जानती हो, कितने अधूरे रूप में जानती हो, इसी से इस तरह का प्रश्न पूछती हो। तुम नहीं जानतीं कि मैं एक दुखित और व्यथित हृदय हूँ। दुख में ही सुख मानने का मुझे अभ्यास जैसा हो गया है। सुख क्या है—मुझे मालूम नहीं। दुख के टुकड़े करके देखना ही मेरे अपने जीवन का विनोद और आनन्द हो गया है। विधाता ने मुझे दुख ही खिलौने के तौर पर दिया है। मैं तुम्हें क्या लिखूँ? कितना लिखने का मन होता है। लेकिन अपने को व्यक्त नहीं कर सकता। सोचता हूँ, नहीं करना चाहिए और नहीं करूँगा। शायद तुम मुझे कृतघ्न समझोगी। लेकिन ऐसा समझना मेरे साथ अन्याय करना होगा। अगर मैं तुम्हें लम्बे पत्र नहीं लिखूँ तो उसका कारण मेरी असमर्थता समझकर मुझे क्षमा कर देना।

सुनन्दा को उसके सुसराल से बुलवा लिया है। वह अपने छोटे लल्ला को लेकर आई है। उसके आने से अब खूब दिल-बहलाव हो जाता है। लल्ला बड़ा नटखट है। हमेशा मेरी गोदमें ही रहना चाहता है। गाय का दूध गिलास में लिये पिलाने के लिए मुझे उसे गोद में लेकर घुमाना पड़ता है और बीच-बीच में एक-

एक घूँट पिलाना पड़ता है । एक साथ वह पीता ही नहीं । मानों अधिक देर तक मेरी गोद में बने रहने का एक उपाय उसे मालूम हो गया है । पूज्य पिताजी की अस्वस्थता के बारे में सुनकर मैं दुखी हुआ। आशा है, अब वे अच्छे हो गये होंगे।

शुभैषी
—चन्द्रकान्त

× × ×

प्रिय चन्द्रकान्त,

आपके पत्र से यह जानकर हर्ष हुआ कि प्यारी सुनन्दा अपने लाड़ले के साथ आ गई है। आह, मैं वहाँ होती तो मैं भी आपकी गोद में लाड़ले को खेलते देखती।

आपने अपने पत्र में लिखा है कि "कितना लिखने को मन होता है, लेकिन अपने को व्यक्त नहीं कर सकता । सोचता हूँ, नहीं करना चाहिए और नहीं करूँगा।" आपकी नहीं लिखने की इच्छा का कारण आपकी असमर्थता तो हो नहीं सकती । तब और क्या कारण हो सकता है ? मैं तो आपके साथ एक बच्चे की-सी स्वच्छन्दता का अनुभव करती हूँ। अण्ट-सण्ट सब कुछ लिख डालती हूँ। मुझे कुछ छिपाना नहीं आता । कुछ छिपाना चाहती भी नहीं। आपको मैंने जैसा देखा है, जैसा सोचा और समझा है, जैसा पाया है और आपसे जो कुछ सीखा है, सब दृष्टियों से मैं आपके सामने निःशंक और निर्भय हो गई हूँ। अब मुझे भावुक कहलाने में कोई संकोच या डर नहीं है । लेकिन भावुक शब्द के बारे में मेरे मन में जो कल्पना है उसके अनुसार आपको मैं भावुक नहीं कह सकती । आप अपने भावों को व्यक्त करना नहीं चाहते तो न कीजिए। अब आपका निर्मोहीपन मुझे डरा नहीं सकता। आपने मुझ में कितना परिवर्तन कर दिया है! देखिये मैंने आज कैसा उद्गार लिखा है—

अपने पौधे को सींच-सींच कर इसके पुष्पित होने की मैं कितनी प्रतीक्षा कर रही थी, जिससे उसके सुन्दर पुष्पों से मैं अपना श्रृंगार करती।

अब मेरा पौधा पुष्पित हो गया है। मेरी वाटिका खिल उठी है। उसे देखकर मैं मुग्ध हो रही हूँ।

मेरे पौधे के पुष्प अपने सौरभ को चतुर्दिक फैलाकर जगत को आनन्दित कर रहे हैं। उसे देखकर मैं मुग्ध हो रही हूँ।

मेरे पौधे के पुष्प मेरे हृदय में एक नूतन आनन्द की सृष्टि कर रहे हैं। और अब मैं उन्हें अपने श्रृंगार के लिए तोड़ना नहीं चाहती।

—रंजनी

× × ×

चन्द्रकान्त ने उत्तर में लिखा—

प्रिय रंजनी,

तुम्हारे पत्र पाना और पढ़ना क्या है एक ऐसे लोक में पहुँच जाना है जहाँ न इस लोक की लघुता है, न ससीमता है और न कोई बन्धन है। और जहाँ आत्मा को प्रभात के शीतल समीर के स्पर्श का और उषा के दर्शन का आनन्द प्राप्त होता है। तुम्हारी कविताओं में जीवन के सच्चे तत्व ज्ञान का संगीत रहता है। मनुष्य का हृदय एक पुष्प की तरह है। वह प्रेम की उष्णता और समीर पाकर अपनी पंखुड़ियों को क्रमशः खोलता है और विश्व में अपने सौरभ से नवप्राण का संचार करता है। तुमने अपनी कविता में मेरे दिल की ही बात लिखी है। पौधे को सींचने में सुख मानना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

छोटा लल्ला घसकते-घसकते मेरे पास आ गया है। अब मुझे लिखने नहीं देगा। अभी थोड़ी देर पहले मेरी गोद में बैठे-बैठे आइने की तरफ़ देख रहा था और उसने अपने प्रतिबिम्ब

को कोई दूसरा बच्चा समझकर उसे ध्यान से देखता था। कभी-कभी मेरी तरफ़ भी देख लेता था। गोद से उतरने की इच्छा उसे नहीं थी। पता नहीं उसके छोटे मस्तिष्क में क्या-क्या विचार उठे और लुप्त हो गये। सोचता हूँ कि मनुष्य एक दूसरे की आँखों में क्या अपना ही प्रतिबिम्ब नहीं देखता! उसके ही भाव और विचार लौटकर उसके पास नहीं आ जाते! मनुष्य का सुख-दुख, हर्ष और विषाद बहुत कुछ उसकी अपनी ही शक्ति और दृष्टि का परिणाम नहीं है! मैं यह सोचकर उदास हो रहा हूँ कि मैं कितना अयोग्य हूँ, असमर्थ हूँ, गुणहीन हूँ। तुम्हारे पत्र और तुम्हारी कविताओं से मुझे एक ढाढ़स प्राप्त होता है और एक शान्ति मिलती है जो और किसी चीज़ से नहीं मिल सकती। इसलिए मेरा अनुरोध है कि तुम मेरे पत्रों के गुण-दोष का विचार किये बिना बराबर मुझे कुछ लिखती रहना। सबों के लिए प्यार सहित,

—चन्द्रकान्त

× × ×

रंजनी ने लिखा—

प्रिय चन्द्रकान्त,

आपका पत्र मिला। आपने मेरी खूब प्रशंसा की है। और अपने को अयोग्य, असमर्थ और गुणहीन कहा है। किन्तु वास्तविक बात तो कुछ और ही है। आप अपने को जो भी समझें, दुनिया आपको जो भी समझे, मैं तो इतना पूर्ण सच्चाई के साथ कह सकती हूँ कि मैं आज जो कुछ भी हूँ, वह सब आपके कारण ही हूँ।

प्यारा लल्ला आपका मनोरंजन करता रहता है, यह जानकर मुझे खुशी हो रही है। मैं भी अब बच्चों में विशेष दिलचस्पी लेने लगी हूँ। शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं बच्चों से सदा दूर भागने वाली रही हूँ। मैं उनसे आनन्दित नहीं होती या उनके लिए मेरे हृदय में प्रेम नहीं है सो बात

नहीं है। सिर्फ उनके लिए जो धीरज चाहिए, जो सहिष्णुता चाहिए, उसका मुझ में बहुत अभाव रहा है। एक बार बच्चों को लेकर मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं। यद्यपि वे पंक्तियाँ मेरी आज की मनोदशा का चित्रण ठीक-ठीक नहीं करतीं तथापि एक समय मैं कैसी थी इसका थोड़ा बहुत आभास आपको उनसे मिल जायगा। वे इस प्रकार हैं—

शिशुओं को गोद में लेकर उनसे उन्हीं की तरह मधुर तोतली बोली में बोलने, उन पर वात्सल्य की वर्षा करके उन्हें रिझाने और हँसा-खिलाकर उन्हें प्रसन्न करने की कला में मैं अनभिज्ञ हूँ।

शिशुओं के लिए हृदय में जो सहानुभूति चाहिए, जो कोमलता चाहिए और जो सहृदयता चाहिए उसका मुझ में अभाव है। मैं शिशुओं को दूर से ही प्यार कर सकती हूँ।

हे ईश्वर! तू ने मुझे स्त्री रूप देकर स्त्री का हृदय क्यों नहीं दिया? नारी की दुर्बलता तो तू ने दी पर माता का वात्सल्य क्यों नहीं दिया?

हे ईश्वर! तू मुझे माता नहीं बनाना। मैं इस गौरव के अयोग्य हूँ।

इस पत्र को समाप्त करने के पहले मैं अपने एक और नये उद्गार की भी नकल नीचे देती हूँ—

मैं अपनी वीणा के तार ठीक करने और उससे तान मिलाकर अपना स्वर ऊँचा करने का प्रयत्न करती हूँ। किन्तु, हाय, न उसकी तंत्री ठीक होती है न मेरा स्वर उठता है।

हे नाथ! तुझे अपना गीत सुनाने के लिए मैं कितनी आतुर हूँ। तेरे चरणों में बैठकर मैं अपने को कितनी निर्भय और निःशंक पाती हूँ। किन्तु मेरा कण्ठ गद्गद् हो मेरा साथ नहीं दे रहा है।

हे नाथ! मैं अपने आनन्द को प्रकट करने के लिए नृत्य करने को उठ खड़ी होती हूँ। किन्तु मेरी आँखें एकटक तुमको

देखती रह जाती हैं और अविरल आनन्दाश्रु मुझे आत्मविस्मृत बना देते हैं।

हे नाथ! मैं तुझे अपना गीत सुनाने में असमर्थ हो रही हूँ।

--रंजनी

उस पत्र को भेजने के बाद कई दिनों की विकल प्रतीक्षा के बाद रंजनी को चन्द्रकान्त का एक लिफ़ाफ़ा मिला। उसे खोलकर पत्र निकालकर उसने पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—

हे दिव्य प्रेम को पुजारिन, मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर किन शब्दों में दूँ? यदि मैं कवि रहता तो सुन्दर गीतों की रचना करके मैं तुम्हारी स्तुति करता और तुम्हारे पास उन्हें भेंटस्वरूप भेजकर कृतार्थ होता। किन्तु मैं क्या करूँ? मैं अपनी अयोग्यता पर खीज रहा हूँ।

हे पवित्र प्रेम की उपासिके, तुम पुष्प की तरह सुन्दर हो और वीणा की तान की तरह मधुर हो। तुम्हें जागृति में भी तुरीयावस्था का आनन्द प्राप्त है। मैं अन्धकार में भटकने वाला पुरुष क्या करूँ? मैं अपनी असमर्थता पर खीज रहा हूँ।

हे प्रेमव्रती सुमुखी, तुम सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की अनुभूति से अनुप्राणित हो। विश्व में अपना वीणा से दिव्य गान का राग प्रसारित कर रही हो। मैं अविवेकी पुरुष क्या करूँ? मैं अपनी जड़ता पर खीज रहा हूँ।

हे प्रेम-योगिनि, तुमने तो प्रेम के रूप में ही ईश्वर को पहचाना है और प्रेमाचार हा तेरा अभिसार है। मैं पामर पुरुष क्या करूँ? मैं अपनी तुच्छता पर खीज रहा हूँ।

हे प्रेमस्वरूपिणी, मैं केवल अपने भाग्य को सराह सकता हूँ कि मुझे तुम्हारे दर्शन प्राप्त हुए हैं, मैंने तुम्हारे शब्द सुने हैं और मुझे तुम्हारे कर-कमलों से लिखे पत्र प्राप्त होते हैं।

रंजनी, ऊपर मैंने इस पत्र का मंगलाचरण लिखा है। उसे पढ़कर हँसना नहीं। अब नीचे अपनी कई साल पहले लिखी कुछ

पंक्तियों की नक़ल भेजता हूँ।

सुख

सुख हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं की परिपूर्ति का ही नाम नहीं है। वास्तविक सुख इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न-काल की मनःस्थिति का नाम है।

सुख की प्रगाढ़ता इच्छाओं और आवश्यकताओं की परिपूर्ति पर इतनी निर्भर नहीं है जितनी कि वह किसी प्रिय कार्य के अनुष्ठान के उत्साह की अदम्यता पर निर्भर है।

मनुष्य अपूर्ण है, वह इच्छाओं और आवश्यकताओं के बिना नहीं रह सकता। वह इसलिए भी इच्छाओं और आवश्यकताओं के बिना नहीं रह सकता क्योंकि वह सुख के बिना नहीं रह सकता।

सुख में इच्छा और आवश्यकता निहित है, सुख अपरिहार्य है; क्योंकि यह अपने में ही प्रेरणा और परिणाम दोनों है। यह सारे संघर्षों और संग्रामों का स्रोत और लक्ष्य है।

जीवन के अन्तर और बहिर भाग, दो प्रकार की इच्छाओं और आवश्यकताओं को जन्म देते हैं। एक से आत्मा का अन्दर से विकास होता है और दूसरे से आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। पहला प्रकार पूरक (Complementary) होता है और दूसरा प्रकार सहायक (Supplementary)।

पूरक इच्छाओं और आवश्यकताओं की परिपूर्ति के अभाव में मनुष्य अपूर्ण बना रहता है और जीवन के प्रति उसमें उत्साह उत्पन्न नहीं होता। सहायक इच्छाओं और आवश्यकताओं की परिपूर्ति का अभाव उसे अकर्मण्य बना देता है और वह क्रिया-शक्ति खो बैठता है।

पहले प्रकार की इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति से

उल्लास और आनन्द उत्पन्न होता है और दूसरे प्रकार की इच्छायें और आवश्यकतायें मनुष्य को साहसी और महत्वाकांक्षी बनाती हैं। पूरक भाग उत्कर्ष और पूर्णत्व के लिए अपेक्षित है तो सहायक भाग सफलता और प्रगति के लिए।

अन्तर्जीवन के आनन्द और प्रेरणा हमारे बाह्य जीवन को क्रियाशील और साहसी बनाती है। आनन्द और प्रेरणा स्त्रियात्मक गुण है। कर्म और साहस पुरुषात्मक गुण है। आनन्द के बिना जीवन शुष्क है, कर्म के बिना जीवन सुस्त है।

जब आनन्दमूलक प्रवृत्ति और कर्ममूलक इच्छा संतुलित होती है और साथ-साथ परितुष्ट होती है तब इससे शरीर और मन की जो स्थिति होती है उसको सुख कहते हैं।

प्रम

प्रेम एक नाम नहीं है एक स्वभाव है, एक भ्रान्ति नहीं है, एक गति है। प्रेम जीवन का नियम है और इसमें ऐसी शक्तियाँ हैं जो विश्व का हिला देती हैं।

प्रेम एक निषेधात्मक (Negative) वस्तु नहीं है न यह निष्क्रिय है। प्रेम न दूसरों के प्रति घृणा के अभाव का नाम है न जीवन के प्रति सिर्फ अहिंसा की भावना का नाम है। वह दूसरों के कष्टों के प्रति भावुक (Sentimental) अनुकम्पा भी नहीं है।

प्रेम विधेयात्मक (Positive) है क्योंकि इसमें एक सहज गुण निहित है जिसे आनन्द कहते हैं। प्रेम क्रियात्मक है क्योंकि उसकी परितुष्टि उस आनन्द की अभिव्यक्ति में है।

प्रेम से आनन्द का आविर्भाव होता है। प्रेम आनन्द का स्रोत है जो हृदय को परिपूर्ण बनाता है।

जीवन क्या है प्रेम करना है, और प्रेम करना क्या है अनुभूति प्राप्त करना और कर्म करना है। प्रेम जीवन का तत्वज्ञान

है और कर्म जीवन की कला है।

प्रेम जीवन है—पूरक के रूप में। कर्म जीवन है—सहायक के रूप में। प्रेममूलक इच्छायें और आवश्यकतायें 'पूरक' हैं और कर्ममूलक इच्छायें और आवश्यकतायें 'सहायक' हैं।

प्रेम तत्वदर्शन है, कर्म अभिव्यक्तिकरण है।

प्रेममयता मानव के भावनामूलक अंश का चरम लक्ष्य है। इसकी रहस्यपूर्ण सर्वसंग्राही प्रकृति इच्छा को परिष्कृत और बुद्धि को चमत्कृत बना देती है।

मनुष्य का नैतिक उत्कर्ष सामाजिक हित के साथ अपनी वैयक्तिक आकांक्षाओं को समन्वित कर देने में है, आत्माभिव्यक्ति और आत्मसम्पूर्णता के लिए अपनी आत्मा को सार्वभौम आत्मा के साथ तादात्म्य कर देने में है।

सार्वभौम आत्मा के साथ तादात्मीकरण प्रेमाकांक्षा की सर्वोच्च परिपूर्ति है, साथ ही वह मनुष्य के बौद्धिक आग्रह की भी परितुष्टि है।

प्रेमाकांक्षा का रहस्य (Secret) मानव का यह अवचेतन भाव है कि सर्वप्राणियों का मूल तत्वत: एक है जो अनेक हो जाता है और फिर एक हो जाना चाहता है।

जब सारभौम आत्मा के साथ मनुष्य का भावुक और बौद्धिक तादात्मीकरण क्रियात्मक रूप धारण कर लेता है तब चरम रूप से उसकी इच्छा (Will) के आग्रह को परिपूर्ति होती है।

विकासोन्मुख प्रेम का जीवन, हृदय, बुद्धि और इच्छा की संस्कृति और संवृद्धि है, जीवन की पूर्णता है।

प्रेम करना सरल है पर प्रेम की पूर्णता साधित करना सरल नहीं है। प्रेम करना फूलों की शय्या पर शयन करना नहीं है, न दिवास्वप्न देखना है। प्रेम करना व्यथित होना है, दुखित होना नहीं। अनुराग करना है, अनुरक्त होना नहीं। आत्मदान

करना है, अधिकार करना नहीं।

सेवा

आनन्द आत्मगत (Subjective) और वस्तुगत (Objective) दोनों है। इच्छा (Will) उससे सशक्त होकर आनन्दप्रद कर्मों में अपनी परितुष्टि पाती है।

जब मनुष्य की 'इच्छा' प्रेम की आनन्दप्रद प्रवृत्तियों से परिचालित होती है तब उसका कर्म उक्त प्रवृत्तियों से अनुशासित होता है और उसका जीवन 'सेवा' का जीवन हो जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसका सुख अभिन्न रूप से समाज में सन्निहित है। समष्टि-निरपेक्ष सुख-साधना आत्म-वंचना है। भूलभुलैया है।

सेवा पर-सुख की बाधाओं को दूर करने और दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का स्वेच्छापूर्वक किया गया कर्म है। श्रान्त को साहसी बनाना, अशान्त को शान्ति देना, निर्बल को बलवान बनाना, भयातुर का भय दूर करना, अज्ञानी को विवेक देना और निराश को आशान्वित करना भी सेवा है।

सेवा मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है। सेवा आनन्द की अभिव्यक्ति है, जीवन की चरम कला है।

सुख समन्वय है, साधना है। प्रेम तन्मयता है, आत्म-विस्मृति है। सेवा समर्पण है, उत्सर्ग है। —चन्द्रकान्त

उपर्युक्त पत्र भेजने के बाद चन्द्रकान्त ने कई दिनों तक रंजनी का कोई पत्र न पाकर लिखा,

रंजनी,

कई दिनों से तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला है। नियमित रूप से तुम से पत्र पाने की प्रतीक्षा करना मेरी आदत-सी

हो गई है। मैंने डाक से सीधे पत्र मँगवाने का प्रबन्ध कर लिया है। ठीक समय पर पत्र न पाने का कारण डाकिये की असावधानी नहीं हो सकती। इसलिए मैं स्वभावतः चिन्तित हूँ कि तुमने पत्र क्यों नहीं भेजा है? तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न? पूज्य पिता जी और घर के अन्य लोग सकुशल हैं न?

इधर हमारे गाँव में एक असाधारण काण्ड हो गया है। इस इलाके के ज़मींदार का अंग्रेज़ मैनेजर मार डाला गया है। ज़मींदार के व्यवहार से गाँववाले क्षुब्ध हो उठे थे और उसको ही ख़त्म कर देने पर तुल गये थे। पर ज़मींदार घटनास्थल पर स्वयं नहीं आया। अपने मैनेजर को भेजा। गाँव वाले पहले ही से मोर्चाबन्दी करके तैयार थे। मैनेजर दलबल के साथ घोड़े पर सवार होकर आया। गाँव के सिवाने पर भिड़न्त हो गई। दोनों दलों के कितने ही लोग घायल हुए। कितने ही को मैनेजर की बन्दूक के छर्रे लगे। मैनेजर स्वयं लाठी और भाला के प्रहार से आखिर में मारा गया। गाँववालों पर ज़मींदार ने ख़ून का मुक़दमा दायर कर दिया है। सूर्यकान्त इस काण्ड में पड़ने से बालबाल बच गया। मेरे गाँव के लोग अशिक्षित है, जाहिल हैं। लेकिन वे अपमान नहीं सह सकते। अपनी आनबान पर हँसते-हँसते जान दे देते हैं। फिर भी जो कुछ हुआ वह बहुत बुरा हुआ है। सब कुछ हो चुकने के बाद मुझे ख़बर मिली। अब मुझसे ये लोग कुछ सहायता चाहते हैं। मुझे एक-दो दिन के लिए पटना और कलकत्ता जाना होगा। इस काण्ड से अब कितने ही घर तबाह हो जायेंगे। ज़मींदार लगान वसूल न होने के कारण गाँव में आकर गाँववालों को गालियाँ दे गया था और कह गया था कि अगले दिन आकर खेत में लगा उनका अनाज कटवा लेगा। उसी का यह परिणाम है।

एक और बात लिखकर इस पत्र को समाप्त करूँगा। इधर

एक हाथ देखने वाला पहुँच गया था। गाँववाले अपना-अपना हाथ दिखाकर अपने भाग्य की बातें जानने के लिए उस पर मानो टूट पड़े। लोगों ने मुझे भी अपना हाथ दिखाने के लिए बाध्य किया। उसने मेरा हाथ देखकर जो कुछ कहा वह संक्षेप में नीचे लिखता हूँ।

'हाथ में भाग्य-रेखा बिल्कुल अस्पष्ट है। अर्थात् मैं अपने भाग्य का निर्माण करने के लिए स्वतन्त्र हूँ। पहले से कुछ निश्चित नहीं। एक प्रभावशाली चिन्ह सूचित करता है कि मेरा विवाह सुखद होगा। विद्या और बुद्धि मुझ में अधिक नहीं है। स्वभाव से मैं स्वतन्त्र विचार वाला, शान्त और आत्माभिमानी हूँ। मैं अपने सब काम अच्छी तरह करूँगा। पर एक बड़ा आदमी नहीं बन सकता। मुझे एकान्त-जीवन अधिक अच्छा लगेगा।'

ऐसी ही कितनी ही बातें वह हाथ देखने वाला मेरे बारे में समझा गया है। उस बेचारे को मालूम नहीं था कि मैं हस्तरेखा के फलाफल में विश्वास नहीं रखता। मैं इस विषय की कई पुस्तकें पढ़ चुका हूँ। प्रसिद्ध हस्तरेखा शास्त्री चेरो ने अपनी पुस्तक के अन्त में लिखा है कि चरित्र का ही दूसरा नाम भाग्य है (Character in destiny)।

अन्त में यह लिखना है कि मैं इस महीने के अन्त में दक्षिण भारत के लिए रवाना हो जाऊँगा। सभा मुझे मंगलापुरम् भेजना चाहती है। अगर मंगलापुरम् जाने का कार्यक्रम नहीं बदला तो मैं वहाँ जाने के पहले एरणाकुलम एक दिन के लिए आकर तुम सबों से एक बार और मिलूँगा। सबों से मेरा स्नेह और नमस्कार कह देना। —चन्द्रकान्त

रंजनी ने जब इस पत्र को पूरा किया तो उसके हृदय में आनन्द की लहरें हिलोरें लेने लगीं। उसने मन में कहा—तो वे

आ रहे हैं । हम लोगों को देखने के लिए आ रहे हैं। हे ईश्वर, तू कितना दयालू है ! उसने चन्द्रकान्त को तुरन्त निम्नलिखित पत्र भेजा—

प्रिय चन्द्रकान्त,

आपका यह पत्र आपके सब पत्रों में सुन्दर है। इससे मुझे जो प्रसन्नता हुई वह वर्णनातीत है। इतने दिनों की मेरी विकलता-पूर्ण प्रतीक्षा और प्रार्थना व्यर्थ न होगी। मेरे मन में तरह-तरह की आशंकायें हो रही थीं। लेकिन आज प्रातः मैं शय्या से प्रसन्न भाव से उठी। गत वर्ष का आज का दिन आपको स्मरण है? आज मातामही की वर्षगाँठ का दिन है। गत वर्ष आप मेरा भोज का निमन्त्रण स्वीकार करके भी नहीं आये थे। गत वर्ष आज के दिन मेरी आँखों से दुखाश्रु गिरे थे। किन्तु आज मेरी आँखों से आनन्दाश्रु गिर रहे हैं। क्योंकि आज आपका पत्र यह सुखद सम्वाद लाया है कि आप यहाँ आकर हम लोगों को फिर दर्शन देंगे। आपने लिखा है कि आप एक दिन के लिए आयेंगे। एक दिन के लिए ही सही। आयेंगे तो। मैं संध्या को भी खबर भेज दूँगी। उसे भी तो आपने लिखा ही होगा। हाँ, एक बार फिर हम मिलेंगे। कैसी गुदगुदी पैदा करने वाली खुशखबरी है। आप यहाँ आने की निश्चित तारीख़ अवश्य लिखियेगा।

कई दिनों से मुझे आपका स्वप्न नहीं हुआ था। वैसे तो आपके बारे में मेरा स्वप्न देखना एक साधारण बात हो गई है। आज ब्रह्म मुहूर्त में एक स्वप्न हुआ। देखा, 'एक बड़ी सभा हो रही है। कोई बड़े नेता अध्यक्ष-पद पर बैठे हैं। सभा में किसी अन्तर-राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि चुना जाना है। कई नाम प्रस्तावित हुए। उनमें आपका नाम भी था। मत लेने के बाद जब मतों की गिनती हुई और नतीजा घोषित किया गया तब मेरा हृदय आनन्द से उछलने लगा। आपको सबसे अधिक मत मिले

थे। आप निर्वाचित प्रतिनिधि घोषित किये गये। अध्यक्ष और कई सज्जनों ने आपको बधाइयाँ दीं। आपने सुन्दर शब्दों में सबों का धन्यवाद दिया। सभा विसर्जित होने पर आप उद्यान-वन आये। हम भी आपके साथ-साथ ही आईं। उस दिन आप उद्यान-वन में ही ठहरे।'

क्या आप किसी सभा में गये थे? आपकी हस्तरेखाओं के सम्बन्ध में 'पामिस्ट' ने जो कुछ कहा है मेरे मत में अधिकांश ठीक ही है। आप चाहे मानें या न मानें। आपके मंगलाचरण के बारे में क्या कहूँ? बड़ा अच्छा व्यंग है। आपकी सूक्तियाँ फिर पढ़ूँगी। आपने इसे कब लिखा था? आप कितने गूढ़ हैं! अपने एक उद्गार के साथ इस पत्र को समाप्त करती हूँ।

हे मेघराज, चारों ओर काले-काले बादलों को समेटकर इतना भयंकर रूप बनाये अब तू क्या सोच रहा है?

सारा नभोमण्डल लालिमा से आच्छादित हो रहा है। बिजली की कड़क और बादलों के गर्जन से सब प्राणी आतंकित हो रहे हैं। हे मेघराज, तेरी क्या इच्छा है?

हे मेघराज, क्या तू वसुन्धरा से रूठा हुआ है? तू दूर, इतनी दूर जाकर जो अपना प्रताप दिखा रहा है, इसमें तेरा क्या उद्देश्य है?

हे मेघराज, क्या तुझे अपने भैरव ताण्डव का अभिमान है? तू वसुन्धरा के ही हृदय से उच्छ्वसित हुआ था। तू उसके क्रोड़ से दूर कब तक भटकता रहेगा?

—रंजनी

८

ज्वार-भाटा

मद्रास पहुँचने पर चन्द्रकान्त को अपनी सभा से मंगलापुरम् जाने का आदेश-पत्र मिला । और वह मद्रास से रवाना हो गया। शोरनूर जंक्शन मंगलापुरम् के रास्ते में पड़ता है। वहाँ उतर कर वह कोचीन की गाड़ी में, जो प्लेटफ़ॉर्म के दूसरी तरफ़ लगी थी, जा बैठा । और जल्दी पहुँचने की अधीरता के साथ ढाई-तीन घण्टे में वह एरणाकुलम पहुँचा। स्टेशन से वह सीधे अपने मित्र चन्द्रहासन के घर गया । चन्द्रहासन के परिवार के सभी लोग हिन्दी-प्रेमी थे। सभी को उसने हिन्दी सिखाई थी। इसलिए उस परिवार के साथ उसका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हो गया था।

शाम को चन्द्रकान्त उद्यान-वन पहुँचा तो रंजनी को उत्सुक प्रतीक्षा में पाया । रंजनी के माता-पिता ने उससे कुशल-मंगल पूछा। भावना और लक्ष्मी बहुत हर्षित हुई । दोनों, चन्द्रकान्त को रंजनी के साथ बैठक में छोड़कर नाश्ता लाने चली गईं। चन्द्रकान्त और रंजनी करीब चार महीनों के बाद मिलकर एक-दूसरे को मुग्ध दृष्टि से देखते रहे मानो कह रहे हों कि यह मिलन कितना आनन्ददायक है। इतने में भावना और लक्ष्मी नाश्ता और कॉफ़ी लेकर पहुँच गई। चन्द्रकान्त ने कहा, "तुम लोग तो नाश्ता पानी कराने की फ़िक्र में ऐसी पड़ गई मानो मैंने सुबोधपुर छोड़ने के बाद कुछ खाया-पीया ही नहीं।"

लक्ष्मी ने हँसते हुए कहा, "दीदी ने भी अभी तक कॉफ़ी नहीं ली है। कहा कि आपके आने पर लूँगी।"

"अच्छा, यह बात है! रंजनी, तब शुरू कीजिये।"

"वह ऐसे ही कह रही है।"—रंजनी ने कहा।

भावना ने दो कपों में कॉफ़ी डालकर दोनों के सामने रख दी। और लक्ष्मी ने बड़ी तश्तरी से उप्पुम्मा निकालकर दो छोटी तश्तरियों में उनके सामने रखते हुए कहा, "आपको और दीदी को उप्पुमा बहुत पसन्द है न? इसलिए मैंने स्वयं बनाया है। चखकर देखिए, कैसा बना है?"

"जब तुम ने बनाया है तब तो बिना चखे ही कह सकता हूँ कि बहुत बढ़िया बना है।"

"नहीं, नहीं पहले चखिये तब कहिये। झूठ-मूठ प्रशंसा मैं नहीं चाहती।"

"अच्छा तो लो, चखकर अपने मत की पुष्टि किये देता हूँ। (थोड़ा चखकर) वाह, वाह, छोटी बच्ची का बनाया हुआ उप्पुम्मा है। खाने में हलुवा-जैसा स्वाद।"

"झूठ, झूठ, बिल्कुल झूठ! नमकीन उप्पुम्मा कहीं हलुवा-जैसा स्वाद हो सकता है?"

सबों की हँसी से कमरा गूँज उठा। चन्द्रकान्त ने कहा, "सच कहता हूँ, उप्पुम्मा बहुत अच्छा बना है। जी चाहता है, सारा का सारा मैं ही चट कर जाऊँ। दीदी के लिए एक प्लेट और लाना पड़ेगा।"

"हाँ, लाऊँगी।"

रंजनी ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं इस समय कुछ खाना नहीं चाहती। मैं सिर्फ़ कॉफ़ी लूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है? छोटी बच्ची जो नाराज़ हो जायगी। उसने हम दोनों के लिए बनाया है"—चन्द्रकान्त ने कहा। रंजनी ने एक चम्मच में थोड़ा-सा लेकर मुँह में डाल लिया और कहा, "बस, मैं ले चुकी।"

भावना बोली, "अब किसी को नाराज़ होने की ज़रूरत नहीं

होगी।"

उसके बाद चन्द्रकान्त अपनी यात्रा के कुछ अनुभव सुनाने लगा। थोड़ी देर के बाद भावना यह कहते हुए उठी कि संध्या ने आपके नाम एक पत्र भेजा है। और एक कोने में रखी मेज़ की दराज़ से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर चन्द्रकान्त के सामने रख दिया। चन्द्रकान्त ने लिफ़ाफ़े से पत्र निकालकर पढ़ा।

बेला-निकुंज
२८ जून

प्रिय भाई जी,

प्रणाम। आज आपके दर्शन के लिए मैं भी उद्यान-वन आने वाली थी। किन्तु माँ अस्वस्थ हो गई हैं और उन्हें छोड़कर आने में मैं असमर्थ हूँ। आप हमारे यहाँ ज़रूर आयेंगे ही। लेकिन मेरी बड़ी इच्छा है कि हम सब अर्थात् आप, रंजनी, भावना और मैं एक साथ, थोड़ी ही देर के लिए क्यों न हो, ज़रूर मिलें। आप कल तीन बजे हमारे यहाँ आने की कृपा करें। मैं रंजनी और भावना को भी आने के लिए लिख रही हूँ। आशा है, कल हम सब ज़रूर मिलेंगे।

सस्नेह, आपकी बहन
—संध्या

पत्र पढ़ने के बाद चन्द्रकान्त ने रंजनी और भावना से पूछा, "संध्या का निमन्त्रण स्वीकार है न?"

भावना—"हाँ, हम दोनों कल बेला-निकुंज जायेंगी।"

चन्द्रकान्त—"मैं भी ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा।"

थोड़ी देर तक गपशप करने के बाद जब चन्द्रकान्त जाने के लिए बैठक से निकला तब माधवन बाहर से आते दिखाई पड़े। चन्द्रकान्त को देखते ही बोले, "अहा, चन्द्रकान्त, आ गये! स्वागतम्-स्वागतम्! अच्छे तो रहे?" और पास पहुँचकर प्रेम पूर्वक चन्द्रकान्त से हाथ मिलाया। चन्द्रकान्त ने कुशल प्रश्न के

बाद पूछा, "आपका टेनिस खेल नियमित रूप से चलता है न?"

"हाँ-हाँ, वह तो चलता ही है। बिना एक-दो सेट खेल चैन नहीं पड़ता। ऐसी आदत हो गई है।"

"निस्सन्देह बड़ी अच्छी आदत है। व्यायाम का व्यायाम और मनबहलाव का मनबहलाव। एक पंथ दो काज"—चन्द्रकान्त ने कहा।

"कहाँ ठहरे हैं? दो-चार दिन यहाँ रहियेगा न?"

"चन्द्रहासन के यहाँ ठहरा हूँ। कल चला जाऊँगा।"

"अच्छा, फिर भेंट होगी।" कहकर माधवन ने हाथ जोड़कर बिदा ली और चले गये। चन्द्रकान्त भी रंजनी से फिर संध्या के घर मिलने की बात कहकर बिदा हुआ।

दूसरे दिन जब वह संध्या के घर पहुँचा तो वहाँ रंजनी और भावना संध्या के साथ बातें करती हुई मिलीं। तीनों उठकर खड़ी हो गईं। एक कुर्सी खींचकर बैठते हुए चन्द्रकान्त ने संध्या से पूछा, "माता जी कैसी हैं?" तीनों अपनी-अपनी जगह पर बैठ गईं। संध्या ने उत्तर दिया, "कल से अच्छी हैं। आपके आने की खबर मैंने उन्हें दे दी है। आप मिल लीजियेगा। सब समाचार ठीक है न?"

भावना—"कल इतनी जल्दी में थे कि कुछ बातें ही नहीं कीं। सुनन्दा घर पर ही है न? लल्ला कुछ बोलने लगा है? माता जी की तबीयत कैसी है? और सूर्यकान्त और चाचाजी कैसे हैं?"

चन्द्रकान्त (मुस्कराते हुए)—"यह तो प्रश्नों की बौछार हो गई। एक व्याख्यान के लिए कई पॉयण्टस् मिल गये। तुम्हीं कहो, किस सवाल का जवाब पहले दूँ?"

रंजनी—"किसी से भी शुरू कर सकते हैं। माँजी के बारे में ही सुनाइये।"

चन्द्रकान्त—"वैसे माँ तो काफ़ी अच्छी हैं। मेरे बारे में उन्हें चिन्ता ज़रूर है। जब मैं घर पहुँचा तो मुझे दुबला-पतला देखकर बहुत दुखी हुई थीं। छः महीने का बीमार सा जो मालूम होता था।"

संध्या—"आप माँ को अपने साथ रखने की बात क्यों नहीं सोचते?"

चन्द्रकान्त—"ऐसा हो सकता तो कितना अच्छा होता।"

रंजनी—"क्यों नहीं हो सकता?"

चन्द्रकान्त—"एक हिन्दी प्रचारक का जीवन कैसा होता है, इसके बारे में ज़रा सोचो। आज यहाँ कल वहाँ। और दिन-रात की एक क्लास से दूसरे क्लास में भाग-दौड़। बेचारी माँ को परदेश में लाकर रख देना, जहाँ आचार-विचार, खान-पान सब भिन्न है, उन्हें एक दण्ड देना ही साबित होगा। फिर जो घर पर हैं उनको भी तो देखना है। माँ घर छोड़कर बाहर कहीं नहीं रह सकतीं।"

रंजनी—"लल्ला सुनन्दा के साथ चला जायेगा क्या?"

चन्द्रकान्त—"माँ की इच्छा तो लल्ला को अपने पास ही रखने की है। सुनन्दा भी अभी कुछ महीने रहेगी। इतनी जल्दी माँ विदा नहीं करेंगी।"

इतने में नौकर चाय और नाश्ता लाकर रख गया। संध्या ने कहा, "भावना, जब तक तुम चाय परसो, मैं माँ को दूध देकर आ जाती हूँ।"

भावना नाश्ता अलग-अलग प्लेट में परसकर चाय उँडेल ही रही थी कि संध्या लौट आई, और बैठती हुई बोली, "माँ का एक फ़ोटो क्यों नहीं लाये?"

चन्द्रकान्त—"मेरी माँ का फ़ोटो कभी लिया ही नहीं गया। जब तुम लोगों का ग्रुप फ़ोटो पहुँचा तब मेरे मन में ज़रूर यह बात उठी कि माँ के साथ एक ग्रुप फ़ोटो खिंचवाया जाय। पर

उस गाँव में यह सम्भव ही नहीं था।"

संध्या—"उस फ़ोटो से माँ हम लोगों को जानने लगी हैं क्या ?"

चन्द्रकान्त—"तुम में से हरएक को अलग-अलग नाम से पहचानने लगी हैं। सुनन्दा को भी पहचान हो गई है। फ़ोटो में भावना को दिखाकर माँ उससे कह रही थीं, इसी ने लल्ला के लिए स्वेटर बुनकर भेजा है। जब डाक से पत्र पहुँचता था तो तुम लोगों के बारे में पूछा करती थीं। तुम लोगों में वह बहुत दिल-चस्पी लेने लगी हैं।"

रंजनी—"सो कैसे ?"

चन्द्रकान्त—"पूछती थीं, इनकी जाति क्या है ? इनके कितने बाल-बच्चे हैं ? मैंने उनसे कहा कि सब कुँआरी हैं। ये ब्राह्मण नहीं हैं किन्तु ब्राह्मणों से इनका विवाह-सम्बन्ध होता है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। तुम लोगों की उम्र की लड़कियाँ अविवाहित रह सकती हैं, इसका उन्हें विश्वास ही नहीं होता था।"

संध्या—"तो आपने उनका कैसे समाधान किया ?"

चन्द्रकान्त—"कैसे समाधान करता ?"

भावना—"कुछ तो कहा ही होगा !"

चन्द्रकान्त—"कहा, केरल एक बड़ा विचित्र प्रदेश है। वहाँ स्त्रियों के सामने पुरुषों की नहीं चलती। स्त्रियाँ अपनी पसन्द से बड़ी उम्र में विवाह करती हैं। मन लायक वर नहीं मिले तो जीवन-भर अविवाहित ही रह जाती हैं। क्यों, मेरा जवाब ठीक था न ?"

संध्या—"आपका जवाब सोलहों आना ठीक था। पर यह कहिये, केरल को आप विचित्र क्यों कहते हैं ? उसे आदर्श क्यों नहीं कहते ? क्या स्त्रियों को अपनी पसन्द के अनुसार विवाह नहीं करना चाहिए ?"

चन्द्रकान्त—"इसके उत्तर में 'हाँ' भी कहा जा सकता है और 'ना' भी।

चन्द्रकान्त का उत्तर सुनकर तीनों हँस पड़ीं। चन्द्रकान्त ने मुस्कराहट के साथ आगे कहा, "हँसने की बात नहीं है। पहले तो अपनी पसन्द ठीक ही होती है, इसका कोई निश्चय नहीं है। दूसरे, माँ-बाप या अभिभावक सब दृष्टि से विचार करने के बाद ही वर या वधू का चुनाव करते हैं। इसलिए उनका निर्णय अनुभवहीन लड़के-लड़कियों के निर्णय से अधिक विचारपूर्ण होता है।"

संध्या—"तब आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया? क्या माँजी और चाचाजी आपके लायक कोई लड़की नहीं चुन सके हैं?"

चन्द्रकान्त—"यह तो बड़ा कठिन प्रश्न पूछा। माँ तो मेरा विवाह करा देने के लिए बहुत अधीर हैं। कहा करती हैं—'अब मैं थक गई। घर में जल्दी बहू आ जानी चाहिए। लेकिन विवाह करके घर पर बहू को छोड़कर परदेश में रहना मुझे कुछ ठीक नहीं जँचता।"

संध्या—"आप दक्षिण भारत में ही विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

चन्द्रकान्त—"दक्षिण भारत में मुझे कौन अपकी लड़की देगा? और कोई समझदार लड़की मुझ से शादी करने को तैयार हो जायगी, इसकी भी तो आशा नहीं है।"

संध्या (हँसते हुए)—"अब इस तरह भागने से काम नहीं चलेगा। भावना को और मुझ को सब कुछ मालूम है। रंजनी का आपके सम्बन्ध में क्या भाव है, यह हम से छिपा नहीं है। वास्तव में आजकल हम लोग प्रायः आप ही दोनों के बारे में बातें किया करती हैं।"

चन्द्रकान्त गम्भीर होकर संध्या की बातें सुनता रहा। एक क्षण के लिए रंजनी की तरफ़ आँख उठाकर देखा। दोनों की आँखें मिलीं और मिलते ही रंजनी की आँखें झुक गईं। मानों आँखों ने संध्या की बातों का समर्थन कर दिया।

भावना बोली—"दीदी को माँ और पिता के विरोध का डर है। लेकिन इतना मैं कह सकती हूँ कि आपके बिना उनका जीवन निरर्थक होगा।" भावना के मुँह से इन शब्दों के निकलते ही रंजनी की आँखों में अश्रु-कण ढुलक गये। संध्या ने कहा, "घर और समाज से विरोध उठे तो भी जो सत्य है, न्यायपूर्ण है उसके लिए प्रयत्न होना ही चाहिए।"

चन्द्रकान्त सिर झुकाये कुछ सोचता रहा। उसके हृदय और मस्तिष्क में भावों और विचारों की तरंगें उठ रही थीं। वह सोच रहा था कि क्या जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण घड़ी, सबसे अधिक आनन्दपूर्ण क्षण यही है। क्या सचमुच वह इतना भाग्यवान है? उसे अपनी माँ का भी ध्यान आया। क्या माँ यह सुनकर खुश नहीं होंगी? उसने सिर उठाया और भावना को लक्ष्य करके कहा—

"मैं अपने हृदय की बात क्या कहूँ? रंजनी को मैं भली भाँति जानता हूँ। मेरे हृदय में उनके लिए अगाध प्रेम और आदर का भाव है। रंजनी जैसी सहधर्मिणी पाने का मैं अधिकारी हो सकता हूँ, इसका मुझे विश्वास नहीं होता।" फिर उसने रंजनी की ओर देखकर कहा, "रंजनी, तुम्हीं कह दो, क्या मैं सचमुच इतना भाग्यवान हूँ?"

रंजनी ने गद्गद् स्वर में कहा, "अगर आपको स्वीकार हो और ईश्वर को भी स्वीकार हो तो आपकी जीवन-संगिनी होकर मैं अपना जीवन सार्थक बनाना चाहती हूँ।"

चन्द्रकान्त दो क्षण रंजनी की अमृतवाणी का सुखास्वादन करता रहा। उसके हृदय में एक नई आनन्द-धारा फूट पड़ी। वह बोला,

"भगवान को कोटिशः धन्यवाद है। अब कोई अनिश्चितता, कोई संकोच, कोई भय नहीं रह गया। आज इस पवित्र घड़ी में दो हृदय एक हो रहे हैं। पूर्णतः एक हो रहे हैं। भगवान की कृपा हो कि हम संसार की दृष्टि में भी एक हो जायें।" तत्पश्चात उसने अपनी कलाई की घड़ी खोलकर और रंजनी की कलाई में बाँधते हुए कहा, "आज के शुभ दिन की स्मृति में यह मेरी तुच्छ भेंट है, यह मेरे हृदय-समर्पण का प्रतीक है। आज का दिन हम दोनों के सुखी जीवन का मंगलमय प्रभात होवे।" उसके बाद उसने मेज़ पर से एक कागज़ लिया और उस पर निम्न वाक्य लिखकर रंजनी के हाथ में दे दिया—

"इस शुभ दिन की स्मृति में।
जबकि प्रेम के प्रकाश से बन्धन के तार टूट गये
और आत्म-समर्पण में सुख की सिद्धि हुई।"

उस सायंकाल की सन्धिवेला में चन्द्रकान्त और रंजनी एक नये बन्धन में आबद्ध हो गये। छोटी बहन भावना और अन्तरंग मित्र संध्या इतनी प्रसन्न मालूम हुईं मानो उन्हें कोई बड़ी सफलता प्राप्त हो गई हो।

उसके बाद सब उठकर संध्या की माँ को देखने गये। फिर चन्द्रकान्त रंजनी और भावना को उद्यान-वन पहुँचा देने के लिए उनके साथ चला। रास्ते में भावना ने कहा, "अम्मा और पिता जी से मिलकर जायेंगे न?"

"अवश्य, उनसे मिले बिना कैसे जा सकता हूँ?"—चन्द्रकान्त ने उत्तर दिया।

उद्यान-वन पहुँचने पर फाटकके अन्दर जाते ही माँ मिल गईं। माँ तुलसी के चबूतरे पर दीप जला रही थीं। चन्द्रकान्त ने प्रणाम करते हुए कहा, "माँ, कल भोर की गाड़ी से मंगलापुरम् के लिए रवाना होना है। आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।"

माँ ने आशीर्वाद दिया और कहा, "कुशल-मंगल लिखते रहना।"

"अवश्य लिखूंगा। ज़रा पिताजी से भी मिल लेना चाहता हूँ।" वह घर के अन्दर गया। पिताजी लक्ष्मी की सहायता से पूजा की तैयारी में लगे थे। चन्द्रकान्त ने प्रणाम करके उनसे बिदा ली। लक्ष्मी ने उसे प्रणाम किया और कहा, "मंगलापुरम् पहुँचकर पत्र लिखियेगा।" रंजनी बाहर ही फाटक के पास घूम रही थी। अँधेरा छा रहा था। चन्द्रकान्त जब पास आया तब दोनों एक अपूर्व निकटतम अनुभूति में एक क्षण के लिए खो गये। चन्द्रकान्त ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा, "माताजी और पिताजी का आज आशीर्वाद प्राप्त हो गया है। यह ईश्वर का अनुग्रह ही है। जुदाई के हमारे दिन बहुत जल्द खत्म हो जायँगे। एक मधुर मुस्कान के साथ मुझे जाने दो। उसके बल पर अगले मिलन तक धीरज धारण करूँगा।"

रंजनी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ मुस्कराने का प्रयत्न किया और धड़कते हुए हृदय के साथ चन्द्रकान्त को बिदा किया।"

चन्द्रकान्त रंजनी से बिदा लेकर जब उद्यान-वन से चला तो उसके हृदय में एक नई गरिमा का भाव था, मन में एक नई स्फूर्ति थी और क़दम में एक नई तेज़ी थी।

× × ×

मंगलापुरम् पहुँचकर चन्द्रकान्त ने रंजनी को निम्नलिखित पत्र भेजा—

मंगलापुरम्
१ जुलाई

रंजनी, मेरी जीवन-ज्योति,

तो तुम जीतीं और मैं हारा! या मैं जीता और तुम हारीं।

कौन सत्य है ? केरल-पुत्र स्वामी शंकराचार्य ने बिहार जाकर शास्त्रार्थ में वहाँ के उद्भट विद्वान कुमारिल भट्ट को हराया तो उनकी पत्नी से पराजित होकर वहाँ से लौटे। आज बिहार का एक युवक पराजित होकर केरल से लौटा—यह कोई कैसे कह सकता है ? उसने एक केरल-सुन्दरी का, एक विदुषी का, एक साध्वी नारी का, हृदय जीता है, पूर्ण रूप से जीता है, सदा के लिए जीता है। इस जीत पर उचित गर्व करने से उसे कौन रोक सकता है ? अब वह एक निर्बल और आशाहीन व्यक्ति नहीं रहा। तुम्हारे प्रेम ने उसका कायाकल्प कर दिया है।

सम्भव है, मुझ में तुम प्रेम की मादकता और चपलता नहीं पाओ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा प्रेम दान मुझ में एक नया प्रकाश उत्पन्न करेगा और जीवन के पथ पर आनन्दपूर्वक आगे बढ़ने की मुझे शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करेगा। मुझे मालूम नहीं कि मैं तुम्हें कुछ सुख दे सकूँगा कि नहीं और ना ही कहा जा सकता है कि अन्ततोगत्वा मेरी मनोकामना पूर्ण होगी कि नहीं। किन्तु उसकी आज मुझे कोई चिन्ता नहीं है। आज मैं इस विचार से पूर्ण तुष्टि और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ कि हम दोनों—तुम और मैं—ने परस्पर विवाह के पवित्र सूत्र में बँधकर जीवन की दो धाराओं को एक में मिला देने का निश्चय किया है।

तुम से विदा होते समय मैंने तुम्हारे मुख पर एक उदासी देखी थी। तुम्हारी आँखें आर्द्र हो आई थीं। मैं कहना चाहता था, 'प्रिये, प्रसन्नतापूर्वक रहना'। पर मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले। मैं तुम्हारी आँखों से तो ओझल हो गया पर तुम मेरी आँखों से, मेरे हृदय की आँखों से, ओझल नहीं हुई हो, न हो सकती हो। तुम शरीर से मेरे पास नहीं हो तो क्या ? तुम मेरे सम्पूर्ण मानस पर, हृदय पर, आत्मा पर, चाँदनी की तरह छाई हुई हो और प्रत्येक वस्तु तुम्हें प्रतिबिम्बित कर रही है।

अनन्त प्रेम और मंगल कामना सहित
सदैव सदैव तुम्हारा ही, चन्द्रकान्त

पुनश्च : पूज्य माता जी, पिता जी, मातामही, भाई माधवन, भवानी और छोटी बच्ची को मेरा प्रणाम और स्नेह कह देना। संध्या को मैं अलग लिख रहा हूँ।

× × ×

उद्यान-वन
३ जुलाई

मेरे ही कान्त, अनन्त प्रेम,

आपका पत्र पाने में एक-एक दिन का विलम्ब एक-एक युग जैसा लगा। आज आपका प्रथम प्रेम-पत्र मिला। सरसरी नज़र से पढ़ डाला। अभी डाक भेजने का समय हो गया है। आपके पत्र को फिर पढ़ूँगी। अभी उसकी सिर्फ़ पहुँच लिख रही हूँ। आपके जाने के बाद मेरे विरहाकुल हृदय से जो उद्गार निकले हैं, उन्हें इसके साथ भेज रही हूँ। कल की डाक से फिर पत्र भेजूँगी।

घनीभूत काले बादल फट रहे हैं
और उस पार का स्थान प्रतिक्षण उज्ज्वल होता जा रहा है।
चमकीली किरणें चतुर्दिक फैल रही हैं और
आकाशमण्डल प्रकाश से आलोकित हो रहा है।
किन्तु वह कौन अग्निशिखा है जिससे
यह अनुपम प्रकाश प्रसारित हो रहा है?
काले बादलों के बीच यत्रतत्र उठती
ज्वालायें दृष्टिगोचर हो रही हैं।
उन ज्वालाओं का क्या रहस्य है?
नभोमण्डल में छाई सप्तरंगी घटा की

कलात्मकता कितनी लुभावनी है ?
क्या यही सच्चिदानन्द का लिबास है ?

× × ×

गहन निशा की गोद में अनिद्रित पड़ी थी।
उषा की अगवानी में घनघोर वृष्टि हुई।
और बिजली चमकी।
तब एक शीतल मन्द बयार आई और
अपने कोमल स्पर्श से मेरे अंगों की क्लान्ति हर ले गई।

मेरा उद्वेलित मन शान्त हो गया और मैं मनोराज्य में विचरने लगी।

मैंने देखा, मेरे प्रियतम मेरे पार्श्व में विराजमान हैं और अति कोमलता से मेरे सिर को हिला रहे हैं।

मैंने उठने का प्रयत्न किया। किन्तु मेरे प्रियतम ने नहीं उठने का संकेत किया।

मैंने अपनी आँखें उठाईं और अपने प्रियतम के मुख को देखते हुए पूछा,

"मेरे प्रेम, इस अनोखे समय में आने का कारण ?"

"तुम्हें सुखद निद्रा के पालने में सुलाने आया हूँ।"

"आपने कैसे जाना कि मैं अनिद्रित थी ?"

"अपने हृदय की विकलता से। अब सो जाओ, प्राणाधिके, सो जाओ, शीघ्र ही स्वर्ण प्रभात का हम दर्शन करेंगे।"

विरहिनी रजनी

× × ×

प्राणाधिके,

८ जून के चिरस्मरणीय दिवस के बाद ही तुम्हारी लेखनी

से सुपरिचित मोती जैसे अक्षरों में लिखा तुम्हारा पत्र और उद्गार मिले। तुम्हारे उद्गारों को कई बार पढ़ा। एक ज़माना था जबकि मैं अपने को प्रमी समझता था, अपने को प्रेम-विद्या का विशेषज्ञ समझता था। किन्तु आज मैं अपने को तुम्हारे सामने एक शिष्य रूप में पा रहा हूँ। एक भक्त के रूप में पा रहा हूँ। मैं सोचा करता था कि प्रेम एक अमूर्त्त वस्तु है, एक कल्पना है, एक भाव है। मैं प्रेम का गीत गाता था, उस पर व्याख्यान देता था और उसकी महिमा बखानता था। लेकिन सच्चे प्रेम का साक्षात्कार तुम्हीं से हुआ है। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रेम को देखा जा सकता है और उसका स्पर्श किया जा सकता है। अब मैं कह सकता हूँ कि मुझे प्रेम का दर्शन हो गया है और उसे मैंने पा लिया है। और वह प्रेम तुम्हीं हो। तुम्हीं प्रेम का नाम हो, रूप हो और गुण हो। तुम्हीं प्रेम की ज्योति, शक्ति और सुरभि हो। तुम्हें पाकर ईश्वर पर मेरा विश्वास बढ़ गया है।

दुनिया शीघ्र ही हमें पति-पत्नी के रूप में पहचानेगी। 'पति-पत्नी' कैसे महान शब्द हैं। इसके पीछे सृष्टि की दो शक्तियों के मिलन की कैसी उदात्त और आनन्ददायिनी कल्पना है। पति-पत्नी का पद पाना जीवन का एक महान और गौरवपूर्ण सौभाग्य है। वह सौभाग्य हम दोनों को शीघ्र ही प्राप्त हो। इसी प्रार्थना के साथ इस पत्र को समाप्त करता हूँ।

कृतज्ञतापूर्ण हृदय के साथ,
तुम्हारा ही चन्द्रकान्त

× × ×

उद्यान-वन
४ जुलाई

मेरे ही कान्त, मेरे ही प्रेम,

कल का भेजा मेरा पत्र आपको मिला होगा। उसमें मैंने

अगले दिन फिर पत्र भेजने की बात लिखी थी। आपका १ जुलाई का पत्र पढ़ते समय मुझे लगा कि मैं उत्तर में एक लम्बा पत्र लिखूँगी, पर अब जबकि मैं लिखने बैठी हूँ मुझे मालूम नहीं पड़ता कि क्या लिखूँ, क्या नहीं लिखूँ ? मेरा हृदय एक नूतन आनन्द से इतना सरोबार है कि मैं उसको लेखनी द्वारा प्रकट नहीं कर सकती। मैंने आज तीन उद्‌गार लिखे हैं। उन्हें ही अपने पत्र के रूप में भेजती हूँ।

मेरी आँखें तेरे दर्शनों के लिए तरसती थीं और मेरे हाथ तेरे कोमल स्पर्श के लिए। मेरा उद्वेलित हृदय तेरे हृदय में स्थान चाहता था और मेरा पिपासित अधर तेरा चुम्बन।

तू आया मेरी प्यास बुझाने और मुझे अपने संग का सुख देने।

तू अपने बलिष्ठ पंखों से उड़ता हुआ आया और अपनी भुजाओं में मुझे परिवेष्टित करके आकाश में उड़ गया। वहाँ तेरे अति-अभिलषित आलिंगन में पड़ मुझे स्वर्ग की अनुभूति हुई। और अपने को तेरी आँखों में प्रतिबिम्बित होते पाकर मैं इस पार्थिव लोक को भूल गई।

तूने मुझे एक चुम्बन दिया और मेरी नाड़ियों में एक अभूत-पूर्व सुखद स्पन्दन हुआ।

हे मेरे आत्मन, तू बार-बार आ और अपने चुम्बनों से मुझे सुखी बना।

× × ×

पहाड़ी की उपत्यका के समीप एक सोते के किनारे खड़ी वह अपने हृदय-देवता की प्रतीक्षा कर रही थी।

आकाश में ऊँचाई पर बादल जमा हो गये। निःशब्द सोतों में लहरें उठने लगीं। बादलों के गर्जन से अन्तरिक्ष काँप उठा।

बिजली कड़कती आवाज़ के साथ चमक उठी। मूसलाधार जल-पात शुरू हो गया। फिर भी वह उस सोते के किनारे खड़ी रही।

पानी से भीगने और ठंडक से काँपने तथा बिजली की हृदय दहलाने वाली कड़क और चमक से वह भयातुर और क्लान्त होने लगी। फिर भी वह अपने हृदय-देवता की प्रतीक्षा में खड़ी रही।

अन्त में काले बादलों के पर्दे को चीरकर एक रश्मि प्रकट हुई और उसने उसके सूखे अधर का चुम्बन किया।

उसके अधर हिले और उन पर एक प्रसन्न मुस्कान खिल गई। उसने अपनी आँखें खोलीं और देखा, उसके सामने उसके हृदय-देवता अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ खड़े हैं।

× × ×

प्रेम-महल में कैसी शान्ति है, कैसा आनन्द है!
वहाँ डर-भय नहीं है, लोभ-मोह नहीं है, घृणा-द्वेष नहीं है।
कैसा आनन्द है!
प्रेम महल में कैसी नवीनता है, कैसी प्रसन्नता है?
वहाँ सर्दी-गर्मी नहीं है, धूप-छाँह नहीं है, भूख-प्यास नहीं है।
कैसा आनन्द है!

—रंजनी

× × ×

रंजनी और चन्द्रकान्त के हृदय में अगाध प्रेम की प्रेरणा से कवित्व, स्निग्धता और सौन्दर्य की अजस्र धारायें प्रवाहित होने लगीं। एक पत्र में उसने रंजनी को लिखा, "तुम एक अनन्त सत्य हो जो तुम्हारे बाह्य उपकरणों के द्वारा प्रकट होने के लिए तड़प रहा है। और मैं एक अनन्त तान हूँ जिसकी पुकार सुनकर

तुम्हारी आत्मा नृत्य-विभोर हो रही है। एक ही सत्य नर और नारी का रूप धारण करके जगत को आनन्द का क्रीड़ास्थल बना रहा है।"

कुछ दिनों तक दोनों में प्रेमपूर्ण पत्राचार होता रहा। उसमें उल्लास और आनन्द की अभिव्यक्ति की बहार रहती थी। किन्तु क्रमशः जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं की ओर उनका ध्यान जाने लगा और उन्हें अपना अलगाव असह्य मालूम होने लगा। कल्पना और विचार-जगत का आनन्द जीवन को सुखी बनाने के लिए अपर्याप्त था। एक दिन रजनी ने एक स्वप्न देखा—

"विवाह का भोज था। भोज का आनन्द लेने के लिए विशाल कक्ष में सब अतिथि एकत्र हो रहे थे। किन्तु उसका हृदय भयाक्रान्त हो मचल रहा था। सुखद भोज के बीच भी उसे चन्द्रकान्त की पुकार सुनाई पड़ी। वह भोज का आनन्द और मित्रों की संगति छोड़ भीड़ को चीरती हुई बाहर निकल आई और पास ही प्रवाहित नदी के कूल की ओर बढ़ी जहाँ से चन्द्रकान्त की पुकार की ध्वनि आ रही थी। उस द्रुतगामिनी नदी की संगीतमयी लहरों पर झूमती हुई चन्द्रकान्त की छोटी नौका पर उसकी दृष्टि पड़ी। और जब चन्द्रकान्त ने उसका नाम लेकर पुकारा तब वह एक उन्मादिनी की तरह उसकी नाव की तरफ दौड़ पड़ी। चन्द्रकान्त ने अपनी नाव किनारे लगा दी और उसे खींचकर अपनी नाव में बिठा लिया और अपनी सबल भुजाओं से उसे परिवेष्टित कर लिया।

पर हाय, दुर्भाग्य ने दोनों प्रेमियों का पीछा किया। उसी क्षण उनके सुख और आनन्द पर एक प्रहार हुआ। पश्चिम दिशा से एक प्रचण्ड आँधी उठी। नदी की लहरों ने विकराल रूप धारण किया। वह छोटी नौका अब डूबे तब डूबे जैसी होने लगी।

रंजनी ने आतंकित हो चन्द्रकान्त के कटिभाग को पकड़ लिया। उसे अपने कपोलों पर चन्द्रकान्त के उष्ण श्वासों का स्पर्श मालूम हुआ और उसमें एक नवचेतना आई। उसने कहा, 'हम दोनों मिलकर नौका को बचायेंगे।' उसकी बात सुनकर चन्द्रकान्त ने हर्षित हो उसे दुहराया, 'अवश्य बचायेंगे' और दोनों मिलकर नाव खेने लगे।''

उधर चन्द्रकान्त ने अपने एक पत्र में लिखा, "प्राणेश्वरी, एक बात पूछूँ? क्या अभी समय नहीं आया कि हम अगला क़दम उठावें? मैं, प्रेम का नारा लगानेवाला एक अर्धशिक्षित उपदेशक, अब एक बेचैनी और विकलता का अनुभव करने लगा हूँ। सामने भोजन और पानी देखकर कई दिनों के भूखे आदमी की जो स्थिति हो जाती है मेरी भी हालत कुछ-कुछ वैसी ही हो रही है। यद्यपि मैं हमेशा एकाकी जीवन बिताने का अभ्यासी रहा हूँ तो भी ऐसा जीवन अब असह्य मालूम पड़ने लगा है। तुम ने मुझे अधिकार दिया है कि मैं तुम को पूर्ण अर्थ में अपनी समझूँ। तुम्हारे दिये अधिकार ने मुझे अब बदल दिया है। अब मैं अपनी चीज़ चाहता हूँ। अब मेरी शान्ति, मेरे सुख और मेरे सहारे के लिए तुम्हारा मेरे साथ रहना आवश्यक है। इसलिए मैं पूछता हूँ, मेरी प्राणवल्लभे, क्या अभी समय नहीं आया है कि हम अगला क़दम उठावें?

'क्या करता है मन मेरा अब जब जग सुख से सोता है?
विरह-व्यथा उन्माद विभोरित तेरे पास विचरता है।'

विरहाकुल चन्द्र"

× × ×

उद्यान-वन
१६ जुलाई

मेरे ही कान्त,

आपका वेदनापूर्ण पत्र मिला। मैं जानती थी कि एक दिन आपसे ऐसा पत्र मुझे मिलेगा। किन्तु वह इतनी जल्दी मिलेगा यह मैं नहीं सोचती थी। मैं इसके लिए तैयार नहीं थी। मैं अपने को पर्वत से घिरी पा रही हूँ जिन्हें पार करने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। एक महानदी मेरे सामने का रास्ता रोके बह रही है। पार कराने वाला कोई नाविक नज़र नहीं आता। किन्तु मुझे आपका दिव्य प्रेम प्राप्त है और आपकी मंगल कामनायें प्राप्त हैं। उनसे मुझे बल मिला है जिसके आधार पर मैं जीवन की सब यातनायें सह लूँगी।

अनन्त नीलाकाश में सुशोभित चन्द्र का दर्शन कर कुमुदिनी जल के अन्तरतल से बाहर आकर प्रसन्नता से खिल उठती है। मानो चन्द्र के चरणों से लिपट जाना चाहती है, पर कुमुदिनी चन्द्र तक पहुँच नहीं पाती और श्रान्त-क्लान्त हो जलाशायी हो जाती है।

उधर आकाश के वक्षस्थल में घने काले मेघों को देखकर सागर का जल गरजने लगता है। मानो वह उनके चरण पखारना चाहता है। पर तरंगें मेघों को छू नहीं पातीं और निराश होकर जलाशायी हो जाती हैं।

पिंजरबद्ध पक्षी स्वच्छन्दतापूर्वक वन में चहकने वाले अपने साथियों को देखकर अपना पंख फड़फड़ाता है और पिंजरे के सींखचों को अपनी चोंच से मारता है। पर वह मुक्त हो अपने साथियों से मिल नहीं पाता और थककर पिंजरे में गिर जाता है।

यह सब क्यों होता है? कुमुदनी चन्द्र तक क्यों नहीं पहुँचती? तरंगें बादलों को क्यों नहीं छू पातीं? और पिंजरबद्ध पक्षी अपने साथी से क्यों नहीं मिल पाता? ऐसा क्यों होता है?

विरह-पीड़ित रंजनी

× × ×

चन्द्रकान्त को रंजनी का उक्त पत्र पाकर प्रसन्नता नहीं हुई। उससे उसकी विकलता और बढ़ गई। उसने रंजनी को लिखा—

"मैंने अपने को तुम्हारे प्रेम का अधिकारी नहीं समझा था। अपने को इतना भाग्यवान नहीं समझा था कि तुम्हें पाने की आकांक्षा करूँ। उस दिन तुमने मुझे रंक से राजा बना दिया। मेरे सिर पर अपने हाथों ही से मुकुट रख दिया। मैंने तुम्हारा विश्वास किया, तुम्हारी समझदारी, तुम्हारी दृढ़ता और तुम्हारे प्रेम का विश्वास किया। मैं हर्षित हुआ कि अब मेरे संघर्ष और निराशा के दिन समाप्त हो गये। अब तुम मेरी पत्नी, मेरी अर्धांगिनी, मेरी सहधर्मिणी होकर मेरे जीवन का भार हल्का करोगी। मुझे शुरू में ही सन्देह हो रहा था कि तुम्हारा प्रेम महज़ प्लेटोनिक (Platonic) प्रेम है। आज वह सच मालूम हो रहा है। मैं देखता हूँ, तुम आज भी कल्पना-जगत् में ही विचर रही हो। लेकिन उससे मेरी गति क्या होगी? मैं तो ठोस जीवन के धरातल पर खड़ा हूँ जहाँ मुझे जीवन-संगिनी चाहिए। मैं संदिग्ध स्थिति में अनिश्चित् काल तक अशान्ति से कैसे रह सकता हूँ? तुम कितना के प्रति वफ़ादारी निभाओगी? तुम मेरी हो तो मेरी ही होकर तुम्हें रहना होगा। मैं कोई बाधा स्वीकार नहीं कर सकता। अगर तुम इसके लिए तैयार न हो तो मुझे साफ़-साफ़ बतला दो। तब मैं सोचूँगा कि मुझे क्या करना चाहिए। यह अनिश्चित स्थिति मेरे लिए असह्य हो गई है।"

चन्द्रकान्त ने ऐसा पत्र रंजनी को भेज तो दिया। पर उसके बाद ही वह पछताने लगा कि उस तरह का पत्र उसने क्यों भेजा। उसे लगा कि उसने उस निरीह हिरणी पर एक तीर छोड़ दिया है। वह उसे पढ़कर कितनी मर्माहत हो उठेगी। अब चन्द्रकान्त मनाने लगा कि वह पत्र रंजनी को न मिले। वह रास्ते में ही खो जाय, जल जाय, नष्ट हो जाय और रंजनी को उसे

पढ़कर जो दुख होगा उससे वह बच जाय। लेकिन अब क्या हो सकता था? उसने सोचा कि तुरन्त एक दूसरा पत्र लिखकर उससे क्षमा माँगे। उसने काग़ज़-कलम लेकर लिखना भी शुरू किया। पर फिर सोचा, अच्छा, अब तो पत्र चला ही गया है। उत्तर आ जाने पर लिखूँगा। वह बड़ी व्यग्रता से रंजनी के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। उधर रंजनी को जब चन्द्रकान्त का वह पत्र मिला तब उसे लगा कि चन्द्रकान्त कितना निष्ठुर हो सकता है। वह उस पत्र के एक-एक वाक्य को पढ़ती और सोचती, कैसा विचित्र पत्र है। प्रेम और निष्ठुरता की धारा एक साथ बहा दी गई है। किन्तु उसने उसका कोई उत्तर नहीं भेजा।

चन्द्रकान्त को जब कई दिनों तक रंजनी का कोई पत्र नहीं मिला तब उसकी घबराहट और भी बढ़ गई। उसने रंजनी को लिखा—

रंजनी, मेरी आराधिके,

मेरा पिछला पत्र तुम्हें मिला होगा। उसे डाक में डाल चुकने के बाद मैं पछताने लगा कि आह वह पत्र मैंने क्यों लिखा, क्योंडाक में छोड़ दिया? मैं भगवान से मनाने लगा कि वह पत्र किसी तरह तुम्हारे पास न पहुँचे। अपने विरह-वियोग और विकलता के भार से आक्रान्त होकर और अपनी सुध-बुध खोकर मैंने वह पत्र लिखा और अपने हाथों डाक में डाला। तीर हाथ से निकल गया है। हिरणी का हृदय उससे बिंध गया होगा—उस हिरणी का जो मुझे अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है और जिसके लिए मैं अपने प्राण सहर्ष निछावर कर सकता हूँ। पर क्या करता? मेरे वश में कोई उपाय नहीं था जिससे उस पत्र को तुम्हारे हाथ में जाने से रोक सकता। मुझ से कितनी बड़ी नादानी हो गई है। कितना बड़ा अपराध हो गया है। उसे पढ़कर, इसमें सन्देह नहीं, तुम मर्माहत हो गई होगी। मैंने कापुरुषता का काम किया है। अब मैं लज्जा

और ग्लानि की आग में जल रहा हूँ। काश ! मैं उड़कर तुम्हारे पास पहुँच जाता। अब क्या करूँ ?

अत्यन्त लज्जित और दुखित
तुम्हारा ही कान्त

चन्द्रकान्त का 'तब मैं सोचूँगा कि क्या करना चाहिए' —वाला पत्र रंजनी को जिस दिन मिला उस रात को उसने निम्नलिखित उद्गार लिखा—

निश्चिन्तता की शान्ति भंग हो गई है।

मेरे उद्देश्य, कार्य और शब्दों के विपरीत अर्थ लगाये जाते हैं।

मेरा दुर्भाग्य नग्न रूप में मेरे सामने खड़ा है।

सफ़ाई देना व्यर्थ है। सफ़ाई देकर मैं कुछ पाना भी नहीं चाहती।

आह, क्यों उस दिन उसने वे बीज दिये ?

क्या होता अगर मेरी वाटिका वीरान ही बनी रहती !

उसने वे बीज दिये और मैंने बो दिये।

उन बीजों से छोटे-छोटे पौधे निकले और उन पौधों से छोटे-छोटे पुष्प।

मेरी वाटिका शोभायमान हो गई, और मैं हर्षित हो गई।

अब अचानक उस पर ऐसा वज्रपात क्यों ?

मेरी वाटिका की शोभा देखकर किसी ने व्यंग किया, तो किसी ने मुझे स्वार्थी कहा और किसी ने मूर्ख कहा, और अन्त में तूने भी मेरी भर्त्सना की।

मैंने उन बीजों को क्यों लिया ?

मैंने उन्हें अपनी वाटिका में क्यों बोया ?

मैंने उन्हें क्यों सींचा ?

और जब पौधे निकले तब उनकी क्यों रक्षा की ?
क्या सब केवल अपने स्वार्थ के लिए किया ?
क्या उसमें कोई पवित्र उद्देश्य नहीं था ?
क्या कोई पवित्र भाव नहीं था ?
किन्तु इसे कौन समझता है ?
आज मैं उपहास की चीज़ हो गई हूँ,
लांछित और तिरस्कृत ।
अब मेरे पास सिवा आँसू गिराने के और क्या है ?
सिवा मेरे आँसूओं के मुझे कौन शान्ति देगा ?

आ मेरे अश्रु, आ, नदी की धारा की तरह आ, समुद्र की लहर की तरह आ और मेरी व्यथा और विकलता को बहा ले जा।

× × ×

रंजनी चन्द्रकान्त के पत्र को बार-बार पढ़ती और विकल होती । हृदय के भार को कम करने के लिए उसके पास इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था कि वह कागज़ और लेखनी का सहारा लेकर अपने हृदय की आह शब्दों में व्यक्त करे । उसने अपना दूसरा उद्गार लिखा ।

उसे दूर करदे, मेरी प्यारी कलिके उसे दूर करदे ।

वह तेरे योग्य नहीं है । उसके गुनगुनाने की ओर तेरे इर्द-गिर्द मँड़राने की ओर ध्यान न दे ।

तेरे प्रति उसका उत्साह दिखाना, तेरे लिए उसका प्यार दिखाना, सब एक छल है । उससे मुग्ध न हो. मेरी कलिके, उसे दूर भगादे ।

वह अहर्निश तेरा गुणगान करके तुझे रिझाता है । वह एक लोभी भ्रमर है । उसने बहुतों को रुलाया है । वह तुझे भी रुलायेगा । मेरी प्यारी कलिके, उससे मुख मोड़ ले ।

× × ×

रंजनी ने मन में कई बार निश्चय किया कि चन्द्रकान्त के पत्र का उत्तर लिखे। लेकिन पत्र लिखना उसके लिए सरल नहीं था। पत्र लिखने बैठी तो फिर उद्गार ही लिखने लगी। उसने लिखा—

प्रिय पक्षी, जब तू मेरे घोंसले के पास आया और प्रेम और जीवन का दिव्य गान सुनाया तब मैंने तुझे अपने लिए प्राप्त करने की इच्छा की। तू विकल और व्यथित था और तुझे एक विश्राम की जगह की आवश्यकता थी। तू ने मेरे घोंसले का दरवाज़ा खुला पाया और धीरे-धीरे तू अन्दर आ गया। और मैंने तुझे अपने लिए पिंजरे में बन्द कर दिया।

लेकिन मेरा पिंजर स्वर्ण-निर्मित नहीं है। यह लोह या लकड़ी का भी नहीं है। न इसमें स्वर्ण-निर्मित पिंजर की मज़बूती है, न काठ के पिंजर का कड़ापन है।

यह एक विचित्र प्रकार का पिंजर है। इसे मैंने अपने हाथों से अपने ही ढंग से बनाया है। यह मेरे वक्ष की छोटी-छोटी पंखुड़ियों से बना है।

मेरे पिंजरे में जब तू आया, मैंने तेरे आराम के लिए अपने रोयों से एक नरम शय्या बनाई। मैंने अपने पिंजरे में तुझे बड़े प्रेम और स्नेह से बन्द कर दिया और तुझे अपने पंखों से ढक लिया।

किन्तु अब मेरे प्रिय पक्षी, मेरी आत्मा के चिरसंगी, अब तेरे मुंह से कैसे अनोखे स्वर निकल रहे हैं? तू नहीं जानता कि मैं मर जाना पसन्द करूँगी किन्तु तुझे तेरी इच्छा के विरुद्ध अपने पिंजरे में बन्द रखना नहीं चाहूँगी?

आह! कैसी दर्दनाक तान मेरी आत्मा को बेध रही है! मेरे प्यारे पक्षी, क्या तू इस पिंजरे के बन्धन से ऊब गया है? क्या तू मुक्त होना चाहता है? याद रख प्रिय पक्षी, मेरा पिंजर स्वर्ण-

निर्मित नहीं है, न लोहे का बना है, न काठ का बना है। इसे मैंने अपने वक्ष की कोमल पंखुड़ियों से बनाया है, तेरे विश्राम के लिए बनाया है। यह अपने दुर्लभ पक्षी को खोकर नष्ट हो जायगा।

मेरे पक्षी, तू क्यों इतना विकल है? क्या तू उस पार कोई स्वर्ण-निर्मित पिंजरा देख रहा है? क्या वहाँ कोई चमकीला चाँदी का पिंजर देख रहा है जिसमें हीरे और मोती जड़े हैं, जहाँ तू अधिक विश्राम पाने की आशा रखता है?

मेरे अत्यन्त प्रिय पक्षी, मैं तुझे बहुत प्यार करती हूँ। इतना प्यार करती हूँ कि तुझे तेरी इच्छा के विरुद्ध अपने पिंजर में बन्द नहीं रख सकती।

× × ×

जब रंजनी को चन्द्रकान्त का दूसरा पत्र मिला तब उसने लिखा,

उद्यान-वन
२६ जुलाई

मेरे जीवन-धन,

आपके अन्तिम दोनों पत्र यथासमय मिले। दोनों रुलाने वाले थे। पहला पत्र दुख की रुलाई पैदा करने वाला था तो दूसरा सुख की रुलाई। दोनों पत्रों को मैंने आँसुओं के बीच पढ़ा। मैं जानती थी कि आपका पहला पत्र आपके सच्चे भावों को व्यक्त करने वाला नहीं है। इसलिए उससे जो मुझे मानसिक कष्ट हुआ उसे मैंने धैर्यपूर्वक सहन करने का प्रयत्न किया। प्रिय कान्त, मैं आपको साफ़ बतला देना चाहती हूँ कि मैंने अपने पत्रों में अपने उद्देश्य-पूर्ति के मार्ग की कठिनाइयों की ओर संकेत किया था। मेरा अभिप्राय यह नहीं था कि मैं उन कठिनाइयों को

अजेय मानकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गई हूँ। मैं यही व्यक्त करना चाहती थी कि आपके प्रेम से मुझे कितना बल मिलता रहा है। कदाचित् आप समझते हैं कि मैं अपने को कल्पना-जगत में पाकर सर्वथा सन्तुष्ट हूँ। सच तो यह है कि आपको मेरी जितनी आवश्यकता है उससे अधिक मुझको आपकी आवश्यकता है। लेकिन मैं अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए कोई ऐसा काम करना नहीं चाहती जो आपकी मर्यादा के अनुकूल न हो। अगर मेरा प्रेम आपके लिए सच्चा है तो सब विघ्न-बाधाओं को पार कर मैं आपको प्राप्त करूँगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं स्वजनों को भी अनुकूल बनाऊँगी। सम्भव है, इसमें कुछ समय लगे। किन्तु मेरा अन्तःकरण गवाही दे रहा है कि मैं सबों का आशीर्वाद लेकर आपके पास आऊँगी।

क्या आप इसमें मेरी सहायता नहीं करेंगे? क्या मैं आपसे इतने धैर्य की आशा नहीं कर सकती? मैं जानती हूँ कि आपको बहुत कष्ट है। लेकिन मेरे कष्ट का भी तो विचार कीजिये, मेरे हृदयेश्वर! प्रिय और पूज्य माता-पिता को दुखी बनाकर वैवाहिक जीवन में प्रवेश करके हम क्या सुख उठा सकते हैं? पूज्य पिताजी की अस्वस्थता भी बढ़ती जा रही है। उससे परिवार के सब लोग काफ़ी चिन्तित रहते हैं। इस हालत में विवाह के बारे में किसी से कुछ कहना सम्भव नहीं है। लेकिन मैं एक बात कहूँगी। अगर आप कुछ तुरन्त करना ही चाहते हैं तो मेरे मामाजी को आप एक पत्र लिखें। वे मुझे बहुत मानते हैं। वे हमारे बारे में सहानुभूति से विचार करेंगे और हमारी सहायता करेंगे।

आपका पहला दुखदाई पत्र पाने पर मेरे मन की क्या स्थिति हो गई थी उसकी थोड़ी-बहुत कल्पना आपको साथ प्रेषित उद्गारों से हो जायेगी।

आपकी मानसिक शान्ति के लिए प्रार्थनासहित,

सदैव सदैव आपकी ही

पुनश्च : रंजनी

मेरा प्रेम कैसा है ?

मेरा प्रेम रबर की एक गेंद है और तू एक नटखट बालक है।

तू उस गेंद को अपने बलिष्ठ हाथों से ज़ोर-ज़ोर से नीचे मारता है,

और वह हर बार और भी उछलती है।

मेरा प्रेम उछलने वाली गेंद है और तू ?

तू एक नटखट बालक है।

× × ×

ऊपर के पत्र को हाल के लिखे अपने उद्गारों के साथ उसने चन्द्रकान्त के पास भेज दिया।

× × ×

रंजनी के मामा एक ऊँचे पद पर काम करते थे। इंगलैण्ड जाकर उन्होंने उच्च शिक्षा ली थी। बड़े सज्जन और उदार-हृदय थे। चन्द्रकान्त उन्हें पत्र भेजकर अत्यन्त उत्सुकता से उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन उसे दो लिफ़ाफ़े मिले। एक रंजनी का था और दूसरे पर नई लिखावट होने पर भी चन्द्रकान्त समझ गया कि वह मामा जी का ही है। हर्ष और आशंका के मिश्रित भावों से उसके हृदय में खलबली मच गई। उसने अपना सारा साहस बटोरकर पहले मामा जी का लिफ़ाफ़ा खोला और पत्र निकालकर पढ़ने लगा।

महाशय,

आपका पत्र मिला जिसमें आपने मेरी भांजी के साथ विवाह का प्रस्ताव किया है। मैं घुमा-फिराकर उत्तर देने के बदले आपको यह स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मैं इस विवाह के लिए अपनी सम्मति नहीं दे सकता। आपने लिखा है कि आपके मन में मेरे

परिवार वालों के प्रति सौहार्द भाव है और आप मेरी भांजी का आदर करते हैं। मैं परिवार और उस भांजी के हित में आपसे निवेदन करूँगा कि आप इस विवाह का विचार त्याग दें।

आपका,
एन. एम.

उसके बाद उसने रंजनी का लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें रंजनी का निम्नलिखित उद्गार था—

वे आश्चर्य से पूछते हैं, 'तू बीमार है जो इतनी दुबली-पतली हो गई है ?'

मैं प्रेमराज्य में रहने वाली, इसकी चिन्ता ही नहीं करती कि मैं किस प्रकार का जीवन बिता रही हूँ। तब मैं क्या उत्तर दे सकती हूँ ?

'प्रतिदिन का भारी काम ही तेरी क्षीणता का कारण है'; 'अल्पाहार के कारण तू दुबली हो गई है' वे कहते हैं। मैं उन्हें क्या उत्तर दे सकती हूँ ?

वे आश्चर्य से पूछते हैं—'क्या तू पागल हो गई है कि हमेशा खोई-खोई सी लगती है ?' मैं उन्हें क्या उत्तर दे सकती हूँ ?

वे पूछते हैं—'तू पहले की तरह सबों से मिलती क्यों नहीं, बोलती क्यों नहीं ? हँसती क्यों नहीं ?' मैं उन्हें क्या उत्तर दे सकती हूँ ?

क्या वे समझ सकते हैं कि मेरे भी कोई प्रियतम है। उन्हीं के ध्यान में मैं मग्न रहती हूँ। और प्रेम-राज्य में उन्हीं के संग मैं विहार करती हूँ। मैं उन्हें कैसे समझा सकती हूँ ?

९

देश-दर्शन

चन्द्रकान्त को मंगलापुरम् बहुत पसन्द आया। सारा शहर एक प्राकृतिक बाग की तरह रमणीय लगता है। कहीं ऊँचाई है तो कहीं पहाड़ी की उपत्यका की तरह निचाई है। पेड़-पौधों की भरमार है। नगर के नर-नारियों की बोली, रहन-सहन और पहनावे में एक विशेषता है जो उन्हें दक्षिण भारत के अन्य लोगों से भिन्न कर देती है। यह नगर ईसाइयों का एक गढ़ माना जाता है। यहाँ ईसाइयों के दो बड़े कालेज हैं। एक लड़कियों के लिए और दूसरा लड़कों के लिए। इसके अलावा एक और सरकारी कालेज और गर्ल्स हाई स्कूल तथा लड़कों के दो हाईस्कूल हैं। मुख्यतः तीन भाषायें या बोलियाँ बोलने वाले लोग यहाँ रहते हैं। कन्नड़, कोंकणी और तुलू। कोंकणीभाषी स्त्री-पुरुष शिक्षा, संस्कृति और कला की दृष्टि से समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

चन्द्रकान्त ने एरणाकुलम से नई उमंगें और नई भावनाएँ लेकर मंगलोर के कार्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। वह बहुत प्रसन्न और आशापूर्ण मानसिक स्थिति में था। उस अवस्था में मामाजी का पत्र जब मिला तब उसे ऐसा लगा कि मानों वह तीव्र गति से दौड़ते हुए मुँह के बल गिर गया हो। मामाजी की अस्वीकृति का असर रंजनी के ऊपर कैसा पड़ेगा, यह सोचकर उसके मन में एक क्षण के लिए यह आशंका उठी कि क्या इससे रंजनी का विचार बदल जायगा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह विचार विलीन भी हो गया। उसने मामाजी के पत्र की नकल अगले ही दिन रंजनी के पास रवाना कर दी। और उसे लिखा कि ज़रा भी नहीं

घबराना। उसे स्पष्ट मालूम होने लगा कि दिल्ली बहुत दूर है। फिर वह सोचने लगा कि क्या रंजनी भी उसके जीवन में एक सुन्दर झाँकीमात्र, एक नीहारिका ही सिद्ध होगी।

उधर रंजनी को जब चन्द्रकान्त का भेजा पत्र और मामाजी के पत्र की नकल मिली तो उसे लगा कि मानो वज्रपात हो गया। उसने दुख-सुख में हमेशा साथ देने वाली अपनी लेखनी उठाई और लिखा—

वे कहते हैं कि जग में सूर्योदय हो रहा है। किन्तु कैसा निविड़ अन्धकार और अवसाद मुझे आवृत्त कर रहा है। नहीं, यह ऊषाकाल नहीं हो सकता है। क्योंकि मैं सूर्य के बड़े गोले को पश्चिम में डूबते देख रही हूँ।

किन्तु कैसा विचित्र दृश्य है! उसके साथ ही पूर्वाकाश में स्वर्ण-रश्मियाँ फूटे पड़ रही हैं। पक्षी अपने घोंसले से बाहर निकलकर चहचहाने लगे हैं और किसानों का प्रभात गान शुरू हो गया है।

मैं अपनी धुँधली आँखों से वास्तविकता को देखने में असमर्थ हो रही हूँ। क्या सचमुच अन्धकार मुझे आवृत्त कर रहा है?

रंजित आकाश की अरुणिमा, ज्योति-विलोड़ित मेघमण्डल और चारों तरफ़ का कलरव सूचित कर रहा है कि यह प्रभात का ही आगमन है। किन्तु आश्चर्य, अन्धकार और अवसाद की गहनता मुझे आवृत्त कर रही है।

मैं पश्चिम में सूर्य के बड़े गोले को सागर के गर्त में जाते देख रही हूँ। किन्तु आश्चर्य, फिर भी वे कहते हैं कि जग में सूर्योदय हो रहा है।

× × ×

चन्द्रकान्त एक दिन घूमते हुए रेलवे स्टेशन की तरफ़ निकल

गया । वह प्लेटफार्म के बुकस्टाल की पुस्तकें देख-देख अपना मनबहलाव कर रहा था कि उसकी नज़र एक अंग्रेजी पुस्तक पर पड़ी जिसका नाम था 'हाऊ टू मेस्मेराइज़' (सम्मोहित कैसे किया जाता है) । उस पुस्तक के नाम ने उसे आकृष्ट किया और वह उसे लेकर उसके कुछ पृष्ठ इधर-उधर देख गया । तब उसकी एक प्रति खरीदकर घर लौटा । रातोंरात वह उस छोटी पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ गया । पुस्तक में किसी व्यक्ति को आकृष्ट करने, उसके विचार को प्रभावित करने, उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न करने आदि के लिए कई उपाय और क्रियाएँ लिखी थीं ।

चन्द्रकान्त ने सोचा कि अपने लिए रंजनी के हृदय में प्रेम बढ़ाने और उसके मन को अधिक दृढ़ और आकृष्ट करने के लिए उस पुस्तक में बताये कुछ उपायों को क्यों न काम में लाया जाय । मामाजी के पत्र ने उसके दिल में तरह-तरह की शंकाएँ उत्पन्न कर दी थीं, और रंजनी को प्राप्त करना उसके लिए बहुत कठिन मालूम होने लगा । उस निराशा की हालत में उस पुस्तक से उसे कुछ आश्वासन प्राप्त हुआ । वह पुस्तक में बताये तरीके के अनुसार अपने पत्रों में सम्मोहन-शक्ति भरने की क्रियाएँ करने के बाद उन्हें डाक में जाकर छोड़ने लगा । लेकिन वे उपाय अधिक दिन तक जारी नहीं रहे । क्योंकि उन पर उसका विश्वास जम नहीं सका ।

उधर रंजनी की मँझली बहन ने एक दिन अवसर पाकर माँ से रंजनी और चन्द्रकान्त की चर्चा करदी । माँ ने कहा, ' रंजनी तो मेरा पुत्र बनकर रहना चाहती थी । क्या अब उसे स्मरण नहीं रहा ? उसे कह देना कि अगर उसे अपने इच्छानुसार काम करना है तो उसे समझ लेना चाहिए कि मैं उसकी माँ नहीं हूँ ।" मामा की असम्मति के बाद माँ ने भी जब इन शब्दों में अपनी असम्मति प्रकट की तब रंजनी बहुत दुखी हो गई । चन्द्रकान्त

को इसके बारे में लिखते हुए उससे प्रार्थना की कि वह इस समय शान्ति और धैर्य से काम ले। भगवान को स्वीकार होगा तो सब बाधाएँ दूर हो जायँगी और वे सफल मनोरथ होंगे। चन्द्रकान्त ने भी रंजनी को आश्वासन देते हुए लिखा कि "मैं कमजोर हो सकता हूँ। पर जहाँ तुम्हारी इज्ज़त और तुम्हारे सुख का प्रश्न होगा वहाँ मैं कमज़ोर साबित नहीं होऊंगा। मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में तुम्हारा हूँ, सिर्फ़ तुम्हारा। मैं धैर्यपूर्वक अनन्त-काल तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

माँ रंजनी की बात को लेकर भीतर ही भीतर कुछ समय से चिन्तित तो थीं ही। अब बड़ी पुत्री के द्वारा पूरी बात सुन चुकने के बाद यह सोचने लगीं कि रंजनी का विवाह किसी उपयुक्त व्यक्ति के साथ करा देने में बिलम्ब नहीं होना चाहिए। उनकी दो मौसेरी बहनें ६०-७० मील दूर एक जमींदार के यहाँ ब्याही थीं। माँ ने उनके पास खबर भेज दी कि एक योग्य वर ढूँढ़कर रंजनी का विवाह जल्द करा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। वहाँ से उत्तर में एक अच्छे खानदान के शिक्षित और सम्पन्न व्यक्ति का नाम भी आगया। पत्र में लिखा था कि अगर रंजनी को पसन्द आ जाय तो विवाह जल्द हो सकता है। एक दिन माँ ने अपनी बहन के यहाँ से आये पत्र को रंजनी को पढ़ने को दे दिया और कहा कि इसे पढ़ना और विचार करके इसका उत्तर देना। रंजनी ने उस पत्र को लेकर उनके सामने ही पढ़ा। पढ़ते ही उसकी आँखों में आँसू आगये। माँ ने कहा, "तुम्हारा विवाह तो होना ही चाहिए। कौन ऐसी माँ होगी जो यह चाहेगी कि उसकी पुत्री आजीवन कुमारी बनी रहे। तुम्हारी मौसी ने जिस आदमी को चुना है वह एक सम्पन्न घराने का आदमी है। उसे तुम्हारी मौसी जानती हैं। वह एक नेक आदमी है।" रंजनी ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा, "माँ मैं तुम्हारी प्रसन्नता और

तुम्हारे सुख के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। आजीवन अविवाहित रहने के लिए भी तैयार हूँ। किन्तु मौसी का यह प्रस्ताव मुझे स्वीकार नहीं है। तुम्हारी सम्मति के बिना किसी से विवाह करके तुम्हें दुखी बनाने का मेरा इरादा नहीं है। लेकिन सिर्फ इतना चाहती हूँ कि तुम साफ़-साफ़ यह बात समझ लो कि मेरी अपनी इच्छा क्या है? मेरी इच्छा निश्चित हो चुकी है। वह अब बदल नहीं सकती। मेरी इच्छा जानकर मुझे आशीर्वाद दे सकती हो तो देकर मुझे कृतार्थ करो। अगर ऐसा नहीं कर सकती हो तो कम से कम मुझे ऐसी ही रहने दो। इस जीवन में मेरा विवाह दूसरे किसी से नहीं हो सकता। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि अगर मेरा विवाह होगा तो उन्हीं से होगा नहीं तो मैं अविवाहित ही रहूँगी।" पुत्री की बातों का सरल हृदय और वात्सल्यमय माँ पर असर पड़ा। उनकी भी आँखें सजल हो गईं। अन्त में उन्होंने कोमल स्वर में सिर्फ इतना कहा, "बेटी, रोओ मत। तुम्हारी इच्छा नहीं है तो इस प्रस्ताव को छोड़ देने को तुम्हारी मौसी को लिख दूँगी।"

माँ के साथ स्पष्ट बातें हो जाने पर रंजनी को बहुत शान्ति मिली। उसने चन्द्रकान्त को सब बातें लिखते हुए आगे लिखा—"मैं इस घटना को ईश्वर का अनुग्रह ही मानती हूँ। आज के दिन को मैं अपनी अन्तिम जीत के दिन का प्रारम्भ मानती हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि माँ दिल से आपके विरुद्ध नहीं हैं। आपके प्रति तो उनके मन में प्रारम्भ से ही एक स्नेह-भाव रहा है। मेरी समझ में असम्मति का एक मुख्य कारण यह हो सकता है कि आप दक्षिण के नहीं हैं, उत्तर भारत के हैं। किसी उत्तरीय से यहाँ की किसी लड़की का विवाह अभी तक नहीं हुआ है। इतनी दूर के किसी आदमी को कौन माता अपनी लड़की देना पसन्द करेगी? सचमुच माँ से मुझे सहानुभूति हो

रही है। उसकी जगह मैं रहती तो शायद मैं भी इतनी दूर के आदमी से अपनी लड़की के विवाह का समर्थन नहीं करती। माँ के मन में बहुत करके यही भय होगा कि आपके साथ विवाह हो जाने से उन्हें मुझे खो देना पड़ेगा।"

माँ के साथ थोड़ी बातचीत हो जाने के बाद रंजनी के हृदय पर से एक भारी बोझ उतर गया। माँ और बेटी के बीच एक खिंचाव पैदा हो गया था। अब वह दूर हो गया। रंजनी के हृदय में एक नया बल आगया। उसे लगा कि अब यह गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं है कि चन्द्रकान्त और वह विवाह के लिए वचनबद्ध हो गये हैं। यह विचार मन में उदय होने के बाद उसने पहला काम जो किया वह चन्द्रकान्त की भेंट की हुई घड़ी को हाथ में बाँधकर निकलना शुरू कर देना था। अब तक वह घड़ी उसकी पेटी में पड़ी रहती थी। रंजनी रोज़ उसमें चाबी दे दिया करती थी और वह हृदय की तन्त्री की तरह अपना काम करती जाती थी।

एक दिन रंजनी भोजन के बाद जब उठी तब माँ पानी डालकर उसका हाथ धुलाने लगीं। उसकी नज़र उस घड़ी पर पड़ गई। रंजनी स्कूल जाने के लिए तैयार होकर और घड़ी हाथ में बाँधकर भोजन करने बैठी थी। माँ ने घड़ी को देखकर पूछा, "यह कैसी घड़ी है?" रंजनी ने अस्फुट शब्दों में कुछ जवाब दिया जिसका तात्पर्य था कि 'उन्हीं' की दी हुई है। और इसके पहले कि माँ कुछ और कहें वह हाथ-मुँह धोना किसी तरह जल्दी ही खतम करके वहाँ से चल दी और स्कूल के लिए रवाना हो गई। उसके बाद उसके सम्बन्ध में माँ ने फिर कोई बात नहीं उठाई। रंजनी को वह घटना जीत के रास्ते पर एक क़दम आगे बढ़ने जैसी लगी। और तब से वह और भी प्रसन्न रहने लगी।

पिताजी रोग-शैय्या पर पड़े तो फिर उठे नहीं। उनकी

क्षीणता क्रमशः बढ़ने लगी और एक दिन शान्तिपूर्वक इस दुनिया से चल बसे। वे सज्जनता के अवतार माने जाते थे। रंजनी के प्रति उनका विशेष वात्सल्य-भाव था। मरने के पहले उन्होंने भावना से एक दिन कहा था कि उन्होंने एक स्वप्न देखा है कि रंजनी का विवाह हो रहा है। वर श्रीकृष्ण जैसा सुन्दर एक परिचित व्यक्ति है। ऐसे स्वप्न की बात सुनकर भावना को प्रसन्नता के साथ एक चिन्ता भी हुई। क्योंकि विवाह आदि का स्वप्न अच्छा नहीं माना जाता। वह किसी की मृत्यु का सूचक होता है।

× × ×

बड़ी मातामही ने (रंजनी की मातामही की बड़ी बहन), जो मामाजी की माँ थीं, काशी जाने की इच्छा प्रकट की। मामाजी उन्हें लेकर काशी-यात्रा के लिए निकले। रंजनी की मातामही भी उनके साथ गईं। काशी में जाकर प्राण त्यागने से स्वर्ग मिलता है यह विश्वास केरल के लोगों में भी है। और वृद्ध स्त्री-पुरुषों की इच्छा रहती है कि वे काशी में जाकर प्राण त्याग करें। बड़ी मातामही की भी इच्छा काशी में जाकर मरने की थी। उनकी वह इच्छा पूरी हुई। गंगा के तट पर एक मकान में उनका स्वर्गवास हो गया। मामाजी अपनी माँ का श्राद्ध-कर्म श्रद्धा-भक्ति से करके अपनी मौसी को लेकर ऐरणाकुलम लौट आये।

× × ×

कुछ महीनों के बाद अखबारों में यह खबर निकली कि बनारस में एक अखिल एशियाई अध्यापक सम्मेलन होने जा रहा है। जिसमें सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर सर राधाकृष्णन् अध्यक्षता करेंगे। रंजनी ने जब से यह खबर पढ़ी तब से उसके दिल में एक बेचैनी पैदा हो गई कि क्या उपाय किया जाय जिससे नानी और माँ से उस सम्मेलन में जाने की अनुमति मिल जाय। बनारस उत्तर भारत में है। बिहार के पास ही है। इस बात से

उसके दिल में एक गुदगुदी पैदा हो गई। लेकिन माँ या नानी से सम्मेलन में जाने के सम्बन्ध में कोई चर्चा करने का उसे साहस नहीं हुआ। पिता और बड़ी नानी की मृत्यु से परिवार में सब दुखी थे। उस हालत में इतनी दूर बिना किसी स्वजन को साथ लिये जाने की बात उठाना उसने ठीक नहीं समझा।

इस नये विचार की उधेड़-बुन में वह पड़ी ही थी कि एक दिन उसकी एक सहेली उसके घर आई। उसका नाम रम्भा था। उसके मन में भी सम्मेलन के अवसर पर काशी जाने का विचार उठा। रंजनी और रम्भा में यात्रा की सम्भावनाओं और बाधाओं के सम्बन्ध में काफ़ी देर तक बातें हुईं। दूसरे दिन रम्भा एक और सहेली को लेकर आई। उसका नाम सुमित्रा था। सुमित्रा को भी काशी जाने की इच्छा हुई। ये दोनों सहेलियाँ गर्ल्स हाई स्कूल में अध्यापिकायें थीं। अब एक से तीन काशी जाने की इच्छा रखने वाली हो गईं। एक दिन अनुकूल अवसर पाकर रंजनी ने नानीजी को सुनाया कि काशी में होने वाले सम्मेलन में चीन, जापान, बर्मा, सीलोन आदि अनेक देशों के अध्यापक लोग आयँगे। नानीजी के हृदय में काशी के बारे में श्रद्धा-भाव विद्यमान था ही। उन्होंने काशी के अपने कुछ अनुभवों की बातें सुनाना शुरू कर दीं। रंजनी उनकी बातें बड़ी दिलचस्पी से सुनने लगी। यद्यपि उनमें से अनेक बातें नानीजी पहले भी सुना चुकी थीं। जब नानीजी अपनी बातें सुना चुकीं तब रंजनी ने उनसे कहा, रम्भा और सुमित्रा ने काशी जाने का निश्चय कर लिया है। अगर मैं भी उनके साथ जा सकती तो सम्मेलन देखने के साथ-साथ स्वर्गीय पिताजी का भस्म गंगा में प्रवाहित करके श्राद्ध-कर्म काशी में करके आ जाती। धर्म-प्राण नानीजी को रंजनी की बात जँच गई। और उन्होंने यात्रा की कठिनाइयों की दृष्टि से क्या-क्या तैयारी पहले से कर लेनी चाहिए, यह सब भी

बतलाना शुरू किया। अब क्या था? रंजनी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि इतनी आसानी से वह नानीजी को सहमत कर लेने में सफल हो गई। नानीजी का परिवार में ऐसा स्थान और आदर-भाव था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता था। जब नानीजी ने ही रंजनी को काशी जाने की बात का विरोध नहीं किया तब और किसी के विरोध करने की बात नहीं उठ सकती थी। रंजनी को माँ की भी सम्मति प्राप्त हो गई।

रंजनी ने चन्द्रकान्त को लिखा—

"मेरे कान्त, आज मैं आपको एक खुशखबरी सुनाऊँगा। आप अनुमान नहीं कर सकते कि वह क्या हो सकती है? आपको अधिक देर तक संशय में रखे बिना मैं बता देना चाहती हूँ कि मैं उत्तर भारत जाने वाली हूँ। क्यों, यह जानकर आपको आश्चर्य नहीं हो रहा है? बनारस में जो अखिल भारतीय एशियायी अध्यापक सम्मेलन होने जा रहा है उसमें शामिल होने की मेरी इच्छा है। मुझे तो बिल्कुल आशा नहीं थी कि नानीजी से और माँ से बनारस जाने के लिए अनुमति मिलेगी। लेकिन मैंने नानीजी से ही पहले बातें कीं। जब उन्होंने सुना कि मैं रम्भा और सुमित्रा के साथ जाना चाहती हूँ और गंगा में स्व० पिताजी का भस्म प्रवाहित करके श्राद्ध-कर्म भी करना चाहती हूँ तो उन्होंने मेरे जाने की स्वीकृति दे दी। माँ से भी स्वीकृति मिल गई। मद्रास की राममोहन कम्पनी मद्रास से जाने वाले प्रतिनिधियों और यात्रियों के लिए एक स्पेशल ट्रेन चलाने की व्यवस्था कर रही है। वह ट्रेन पूना, बम्बई, आगरा, दिल्ली और इलाहाबाद होते हुए बनारस जायगी और गया तथा कलकत्ता होते हुए मद्रास लौटेगी। बड़े-बड़े शहरों में ट्रेन १-२ दिन के लिए ठहरा करेगी जिससे यात्री उन स्थानों को देख सकें। आप समझ

सकते हैं कि उत्तर भारत की यात्रा का अवसर पाकर मेरा मन कितना हर्षित हो रहा है। मैं इस यात्रा में आपका आशीर्वाद लेकर निकलना चाहती हूँ। आप मद्रास में मेरे रवाना होने के पहले मुझ से मिल सकते हैं। अगर बहुत असुविधा न हो तो अवश्य मिलने का कार्यक्रम बनाइये। मुझे बहुत आनन्द होगा।"

रंजनी का पत्र पाते ही चन्द्रकान्त ने अपने मन में कहा—'मैं तो तुम्हारे लिए उत्तर ध्रुव भी जा सकता हूँ।' रजनी के बनारस जाने की बात से चन्द्रकान्त को बहुत खुशी हुई। उसने रंजनी को लिख भेजा कि वह उससे अवश्य मिलेगा।

जिस दिन रंजनी रम्भा और सुमित्रा के साथ एरणाकुलम से मद्रास के लिए रवाना हुई, उस दिन चन्द्रकान्त भी मंगलापुरम् से रवाना हुआ। शोरनूर जंकशन पर रंजनी को गाड़ी बदलकर मंगलापुरम् से आने वाली गाड़ी में सवार होना था। एक्सप्रेस ट्रेन जैसे ही स्टेशन पर पहुँची कि चन्द्रकान्त ने डब्बे के दरवाजे पर खड़े-खड़े देख लिया कि रंजनी अपनी सहेलियों के साथ प्लेटफार्म पर खड़ी है। चन्द्रकान्त जिस डब्बे में था वह इंजन के पास था। इसलिए वह प्लेटफार्म के दूसरे सिरे पर पहुँच गया। अपने डब्बे से उतरकर पहले वह स्टेशन के जलपान-गृह में गया और वहाँ से नाश्ते की चीज़ें लेकर महिलाओं के डब्बे के पास पहुँचा। तब तक रंजनी और उसकी सहेलियाँ डब्बे में चढ़कर आराम से बैठ चुकी थीं। उन्होंने जब चन्द्रकान्त को अपने डब्बे के सामने देखा तो सब बहुत प्रसन्न हुईं।

चन्द्रकान्त ने रंजनी को नाश्ते का सामान देकर एक कॉफ़ी वाले को बुलाया और रंजनी से कूजा माँगकर उसमें कॉफ़ी भरकर दे दी। दो-चार मिनट तक रंजनी से बातें करके इंजिन के सीटी देते ही यह कहते हुए कि मैं भी मद्रास चल रहा हूँ वह दौड़कर अपने डब्बे में जा बैठा। पोलवकोड, पोदनूर, सेलम,

ईरोड और जलारपेट में भी वह अपने डब्बे से उतरकर रंजनी से मिला। दूसरे दिन जब गाड़ी मद्रास सेण्ट्रल स्टेशन पर पहुँची तब सब उतर गये। रंजनी और उसकी सहेलियों को लेने के लिए सेंट क्रिस्टोफ़र विमेन्स ट्रेनिंग कालेज में शिक्षा पानी वाली उनकी कुछ सहेलियाँ पहुँच गई थीं। चन्द्रकान्त रंजनी से कालेज होस्टल में बाद को आकर मिलने की बात कहकर हिन्दी प्रचार सभा में चला गया। बाद को जब वह रंजनी से मिला तब उसे लेकर ब्राडवे गया और यात्रा के लिए आवश्यक चीज़ें खरीदकर रंजनी को दे दीं। अगले दिन सवेरे ही स्पेशल ट्रेन रवाना होने वाली थी। जब चन्द्रकान्त स्टेशन पहुँचा तो देखा कि ट्रेन के सब डब्बे बनारस जाने वाले यात्रियों से भर गये हैं। अनेक लोग काफ़ी पहले आकर अपने लिए आराम की जगह बनाकर मौज से बैठे थे। चन्द्रकान्त सब डब्बों में झांकता हुआ एक छोर से दूसरे छोर तक चला गया। किन्तु रंजनी या उसकी कोई सहेली दिखाई नहीं पड़ी। वह घबराया कि कहीं रंजनी के आने के पहले ही गाड़ी न चल दे। लेकिन जब घड़ी देखी तब उसकी घबराहट दूर हुई। ट्रेन के छूटने में आध घण्टे की देर थी। वह प्रवेश-द्वार के पास चला गया। और वहाँ खड़े-खड़े रंजनी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसके तुरन्त बाद ही रंजनी अपनी सहेलियों के साथ पहुँच गई। तब तीनों सहेलियाँ एक डब्बे में ख़ाली जगह पाकर चढ़ गईं और अपना-अपना बिस्तरा खोलकर बिछा दिया।

चन्द्रकान्त और रंजनी गाड़ी छूटने तक बातें करते रहे। बीच-बीच में रंजनी की सहेलियाँ भी बातचीत में शामिल हो जाती थीं। सबों के दिल में प्रसन्नता का भाव था और मुख पर हँसी थी। सीटी बजने पर जब गाड़ी रवाना हुई तब जाने वाले अपने-अपने डब्बे की खिड़की से सिर निकालकर बिदा करने

आने वालों को देखने लगे। फिर दोनों पक्ष के लोगों ने अपना-अपना रुमाल निकालकर हिलाना शुरू किया। ऐसा लगता था कि दोनों एक दूसरे को अपनी तरफ़ बुला रहे हों। जब तक रंजनी नज़र आती रही चन्द्रकान्त प्लेटफ़ार्म पर खड़ा रहा और अपना रुमाल हिलाता रहा। ट्रेन के अदृश्य हो जाने पर वह सभा में चला गया, और उसी शाम को मंगलापुरम् के लिए रवाना हो गया। विदाई के अन्तिम समय में रंजनी की आँखें भर आईं।

× × ×

चन्द्रकान्त को बम्बई से भेजा रंजनी का निम्नलिखित पत्र मिला—

बम्बई

१८ दिसम्बर

मेरे कान्त,

आज सवेरे ४ बजे हमारी स्पेशल ट्रेन बम्बई पहुँची, जिसका शुद्ध नाम 'मुम्बई' मुझे यहाँ आने पर ही मालूम हुआ। आपको एक पत्र भेजने के लिए मन उतावला हो रहा था। अब भी शान्ति से बैठकर कुछ लिखने के लिए समय और सुविधा की नितान्त कमी है। फिर भी दो-चार पंक्तियाँ जल्दी में लिखने बैठी हूँ। एरणाकुलम में बन्धु-बान्धवों से विदा लेकर ट्रेन में बैठने पर भी मुझे ऐसा नहीं लग रहा था कि मैं सचमुच उत्तर भारत की यात्रा के लिए रवाना हो रही हूँ। शोरनूर जंक्शन पर अप्रत्याशित रूप से आपके मिलने और मद्रास शहर में मेरा उतना समय आपके साथ बिताने पर भी यात्रा की वास्तविकता मन में नहीं बैठ सकी थी। इस यात्रा के लिए मेरे मन में जितनी ज़बर्दस्त चाह पैदा हुई थी

उतनी ही वह अव्यावहारिक भी मालूम होती थी। और यह आशका मेरे उपचेतन मन में तब तक बनी रही जब तक मद्रास सेण्ट्रल स्टेशन पर बनारस स्पेशल ट्रेन में बैठने के बाद आपको खड़े-खड़े रुमाल हिलाते देखते-देखते आपकी आँखों से ओझल नहीं हो गई। मैं अपने जीवन की अब तक की मुख्य घटनाओं में इस घटना को दूसरी घटना मानती हूँ। पहली घटना आपके सम्पर्क में आना थी। यह दूसरी घटना, मुझे ऐसे लगता है कि उस पहली घटना का ही दूसरा पहलू है। आपने एक राष्ट्र, एक भाषा, एक राष्ट्रीयता का सन्देश सुनाया तो इस यात्रा से मुझे इस विशाल देश की झाँकी मिल जायगी और उसकी एक परिक्रमा भी हो जायगी।

मद्रास छोड़ने के बाद पहली ही शाम को हम लोगों को अपने गरम कपड़े निकालते देखकर एक अनुभवी सहयात्री ने कहा, "उत्तर भारत में आजकल जो ठण्ड पड़ती है उसकी तुलना में यह कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर मुझे डर लगा कि मेरे पास जो कपड़े हैं वह अपर्याप्त तो नहीं होंगे। सुमित्रा अपने एक रिश्तेदार का गरम मिलिटरी कोट लाई है। उसे बिस्तर से निकालकर जब वह पहनकर खड़ी हुई तब देखने वाले अपनी हँसी नहीं रोक सके।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैंने ट्रेन में हिन्दी प्रचार का थोड़ा काम शुरू कर दिया है। मलाबार की दो महिलायें हमारे डब्बे में हैं। वे मुझ से हिन्दी सीख रही हैं।

बम्बई पहुँचने के पहले हमारी गाड़ी पूना में ठहरी थी। वहाँ चार-पाँच घण्टे ठहरने का कार्यक्रम था, जिससे यात्री लोग गाड़ी से उतरकर पूना शहर देख लें। गाड़ी वहाँ चार घण्टे देर करके पहुँची। स्टेशन पर कुलियों का अभाव था, इसलिए स्टेशन से थोड़ी दूर पर जहाँ यात्रियों के ठहरने और भोजन आदि

का प्रबन्ध किया गया था, सामान ले जाने में बहुत कष्ट हुआ। प्रायः सबों को अपना सामान स्वयं ढो-ढोकर ले जाना पड़ा। एरणाकुलम के कुछ अध्यापक भी इस यात्रा में शामिल थे। उनमें से दो से हमें बड़ी सहायता मिल रही है। लेकिन सबसे अधिक असन्तोष पैदा करने वाली बात यह थी कि चार बजे शाम तक यात्रियों को भोजन नहीं मिला। सवेरे दस बजे ट्रेन में जो कॉफी पीने को मिली थी उसी के बल पर हम सब शाम तक भोजन की प्रतीक्षा करते रहे। राममोहन कम्पनी ने भोजन का प्रबन्ध करने का भार भी अपने ऊपर लिया है। और प्रत्येक यात्री से यात्रा भर के भोजन खर्च के लिए पेशगी में पैसे ले लिये हैं। आखिर पाँच बजे हमारे सामने खाना लाया गया। किन्तु वह इतना खराब निकला कि खाना मुश्किल था। भूख की प्रेरणा से दो-एक ग्रास खाने की कोशिश की पर खाया नहीं गया। ऐसा लगा कि भोजन की व्यवस्था कम्पनी को सौंपकर हमने गलती की। भूख और थकावट की कमजोरी के कारण घूमकर पूना शहर देखने का विचार हम लोगों ने छोड़ दिया। थोड़ी देर के बाद पूना में रहने वाले दो मलयाली सज्जन आये और हमारी सुविधा आदि के बारे में पूछताछ की। उनसे मिलकर हम लोगों को बड़ी खुशी हुई और उनके साथ हम बाहर निकल पड़े। सबसे पहले हम गोखले हॉल देखने गये। फिर एक पहाड़ी पर चढ़कर सारे शहर पर एक विहंगम दृष्टि डाली। उसके बाद फर्ग्यूसन कालेज और समीपस्थ एक विशाल लायब्रेरी देखने गये। जब हम लौट रहे थे तब रास्ते पर ही स्थित एक स्कूल में मराठी ड्रामा हो रहा था। थोड़ी देर तक उसे देखकर हम अपने निवास की जगह पहुँच गये। मराठी भाषा हिन्दी से मिलती-जुलती मालूम होती है।

रात को ग्यारह बजे पूना से हमारी ट्रेन रवाना होने वाली थी। हम सब ट्रेन में अपनी-अपनी जगह पर आ बैठे। पूना में

काफ़ी ठण्डक मालूम पड़ने लगी। इसलिए कम्बल वगैरह निकाल कर अपने को अच्छी तरह ढककर सो गये। पूना और बम्बई के बीच में जो सुरंग पड़ती है उसे रात होने की वजह से नहीं देख सके। कुछ लोगों ने टार्च जलाकर देखने की कोशिश की। बस, आज इतना ही। आशा है, आप मंगलापुरम् सकुशल लौट गये और अच्छे हैं।

मधुर स्मृति में
आपकी रंजनी

दिल्ली पहुँचकर रंजनी ने चन्द्रकान्त को अपना दूसरा पत्र भेजा।

दिल्ली
२३ दिसम्बर

मेरे प्रिय कान्त,

बम्बई से हम १६ की शाम को रवाना हुए। २० को सांची पहुँचे। २१ को आगरा, २२ को मथुरा और आज सवेरे दिल्ली। अब संक्षेप में अब तक की यात्रा का विवरण लिखती हूँ।

बम्बई विक्टोरिया स्टेशन से बाहर निकलते ही सब से पहले नई चीज़ जो हमें दिखाई पड़ी वह थी दो मंज़िला ट्रामगाड़ियाँ। मद्रास में तो एक मंजिला गाड़ियाँ ही चलती हैं। बम्बई में हम दो दिन ठहरे। खूब घूमे। हमारे देखे स्थानों में मुख्य स्थान थे—मलाबार हिल्स, पर्शियन टावर ऑफ़ साइलेन्स, ग्रेट इण्डियन गेटवे, ताजमहल होटल, अजायबघर, स्वदेशी स्टोरस् और खादी भण्डार। इस दौरान में हम एक ऐसे स्थल पर पहुँचे जहाँ काँग्रेस का एक स्वयंसेवक कुछ ही दिनों पहले मिलिटरी ट्रक से कुचलकर मर गया था। पास की ही एक दुकान में काँग्रेस की तरफ़ से पिकेटिंग चल रही थी। एक बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष शान्ति के

साथ कतार बाँधकर खड़े थे । आज़ादी के लिए बलिदान होने वाले उस स्वयंसेवक के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करने के लिए एक बड़ा जुलूस निकाला गया था । जुलूस जब उस स्थल पर पहुँचा जहाँ खून के दाग़ थे, तब जुलूस के सब स्त्री-पुरुष शान्तिपूर्वक खड़े हो गये । वहाँ फूलों और मालाओं का ढेर लगा था । अगर-बत्ती की सुगन्ध वायु में फैलकर उसे एक पवित्र देवस्थल का रूप दे रही थी और चतुर्दिक दिवंगत आत्मा की कीर्ति फैला रही थी । लोगों का हृदय देश-प्रेम की भावना से उमड़ रहा था । उस दिन से उस सड़क का नाम उस स्वयंसेवक के नाम पर बाबू कन्नू रोड पड़ गया । बम्बई में आकर हमें आधुनिक युग के वैभव की एक झाँकी मिली । साथ ही, देश की स्वतन्त्रता की एक बलिवेदी भी हमने देखी । मिश्रित भावनाओं के साथ हम बम्बई से विदा हुए ।

दूसरे दिन हमें नर्मदा के तट के मनोहर दृश्य देखने को मिले । विन्ध्य की पहाड़ियों से होकर गुजरते समय हमारी गाड़ी चन्द मिनिट के लिए ठहर गई और यात्रीगण अपने-अपने डब्बों से उतरकर वहाँ का दृश्य देखने को आनन्दित हुए । उसके बाद हम करीब डेढ़ बजे दिन में साँची पहुँचे । वहाँ भी बड़ी प्रतीक्षा के बाद कम्पनी वालों ने हमें खाना दिया । यात्रियों में इस बात को लेकर इतना असन्तोष बढ़ गया कि यह निश्चय किया गया कि कम्पनी के प्रबन्धकों से कहा जाय कि वे यात्रियों से भोजन के लिए पेशगी में लिये रुपये वापिस कर दें, जिससे यात्रीगण अपने-अपने भोजन का प्रबन्ध स्वयं कर लें । मैनेजर को इसकी सूचना भी दे दी गई ।

साँची में बौद्धकालीन खंडहर, स्तूप और बौद्धमन्दिर देखने को मिले । इस स्थान को आधुनिक दृष्टि से आकर्षक बनाने का कोई प्रयत्न नजर नहीं आया । सारा स्थान बिलकुल उजाड़-सा

लगता है।

दूसरे दिन हम आगरे पहुँचे। वह आगरा, जो दुनिया के सात अचम्भों में से एक अचम्भा—ताजमहल वाली, नगरी है। सबसे पहले हम किला देखने गये, लाल पत्थरों वाला यह किला जिसके चारों तरफ़ दोहरे प्रकोष्ठ बने हुए हैं और जिसका बाहरी प्रकोष्ठ ४० फीट और भीतरी प्रकोष्ठ ७० फीट ऊँचा है, वास्तव में एक महान किला है। बाहरी प्रकोष्ठ के चारों तरफ़ पक्की खाई बनी हुई है। जो ३० फीट चौड़ी और ३५ फीट गहरी है।

हम लोग अमरसिंह गेट से अन्दर प्रविष्ट हुए। पास में ही बाहर घोड़े पर सवार राजा मानसिंह राठौर की मूर्ति बनी है। किले के अन्दर का विस्तृत प्रांगण चारों तरफ़ से दो मंज़िले भवन से घिरा हुआ है। हम ने घूमकर भिन्न-भिन्न कक्ष देखे। सबसे पहले जहांगीर का महल देखा। कहा जाता है कि जहांगीर ने अपनी हिन्दू पत्नी की प्रसन्नता के लिए उसे हिन्दू शिल्प-कला के अनुसार बनवाया था। किले के पश्चिम तरफ़ जोधाबाई का मंदिर है जहाँ वह पूजा किया करती थी। उत्तर की तरफ़ जोधाबाई का ख़ास कक्ष है और दक्षिण में बैठक है। रानी के पूजागृह की दीवारों पर अब भी खाली जगहें दिखाई पड़ती हैं जिनमें पहले हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ जड़ी हुई थीं। जो बाद को औरंगजेब द्वारा निकलवा दी गईं। फिर हमने रानी के शाही कक्षों को देखा। हमें नीचे का वह तहख़ाना भी दिखाया गया जहाँ दासियों को रखा जाता था। फिर हमने अकबरी महल, शाहजहाँ महल, और ख़ास महल देखे। ख़ास महल संगमरमर के पत्थर से शाहजहाँ द्वारा बनाया हुआ है। प्रांगण के मध्य में एक तालाब है। गर्मियों में दिन का समय बादशाह और उनकी बेग़में जिस तहख़ाने में बिताती थीं वह भी हमें दिखाया गया। शाही महल की दीवारों

और ऊपरी छतों में शीशे जड़े हुए हैं। कमल के आकार का संगमरमर का बना एक हौज है जिसमें किसी कमरे में गुलाबजल बनाकर नालियों के द्वारा डाला जाता था और बेगम नूरजहाँ नहाया करती थी। किन्तु सबसे अधिक हृदय-स्पर्शी हमें वह स्थान लगा जहाँ से शाहजहाँ बैठे-बैठे जमुना के उस पार अपना बनाया ताजमहल देखा करता था। कहा जाता है कि उसने ताज को देखते-देखते अपनी प्यारी पुत्री जेबुन्निसा की गोद में सिर रखकर अंतिम साँस ली।

किला देखने के बाद हम ताजमहल देखने गईं। मुमताज-महल बादशाह शाहजहाँ के साथ युद्ध में गई थी और वहीं मर गई। शाहजहाँ ने उसकी याद में इसे १६३१ में बनवाना शुरू किया और १६४८ में पूरा किया। उसे बनवाने में २० हज़ार कारीगरों ने काम किया था। उसके बनने के ६ महीने बाद बेगम का शव मध्य भारत से जहाँ वह मरी थी लाकर उसमें रखा गया। ताजमहल के ऊँचे द्वार, विस्तृत प्रांगण और लम्बी कृत्रिम झील दर्शकों के मन में एक अद्भुत सौन्दर्य और गरिमा का भाव उत्पन्न करते हैं। सारी इमारत सफ़ेद संगमरमर से बनी है। ताज की सादगी, उसका विशाल भव्य रूप, उसकी कला और वह अमर भावना जिसकी प्रेरणा से वह निर्मित हुआ है, दुनिया के लोगों को एक रहस्यमय ढंग से अपनी ओर आकृष्ट करती है।

ताजमहल देख चुकने के बाद हम इतमादुद्दौला, जहाँ नूरजहाँ के पिता की कब्र है, देखने गईं। फिर सिकन्दरा गईं जहाँ बिना छत के अकबर की कब्र बनी है। बादशाह अकबर ने मरने के पहले यह हिदायत दे रखी थी कि उसकी कब्र के ऊपर छत नहीं होनी चाहिए और उसकी आँखें मक्का की तरफ़ नहीं बल्कि ऊपर स्वर्ग की तरफ़ रहनी चाहिएँ।

शाम को थके-माँदे हम अपने निवास-स्थान को लौटे और

चाय तथा बिस्कुट से अपनी क्षुधा शान्त की। राममोहन कम्पनी के मैनेजर से सूचना मिली थी कि जो लोग भोजन के लिए पेशगी में दी हुई अपनी रकम वापिस लेना चाहें वे एक निश्चित फॉर्म को भरकर उनके पास भेज दें। यह सूचना पाकर सब ख़ुश हुए। सिर्फ़ मैं ही उदास बनी रही। लेकिन उसका कारण कुछ दूसरा ही था। घूमते समय आज मेरे गले का हार कहीं गिर गया और उसके बाद मेरा प्यारा फाउण्टेन पेन भी खो गया।

आगरे से हम मथुरा गये। उसके बारे में अगले पत्र में।

सप्रेम आपकी ही
रंजनी

× × ×

इलाहाबाद
२५ दिसम्बर

मेरे प्रिय कान्त,

आगरे से हमारी गाड़ी मथुरा पहुँची। यह वही मथुरा है जहाँ के वृन्दावन, गोकुल और कालिन्दी के तट ने समस्त भारतीय साहित्य को एक महान रस से परिप्लुत कर दिया है। भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की एकता में कृष्ण की लीला-भूमि इस नगरी ने कितनी बड़ी प्रेरणा दी है। किन्तु आज के वृन्दावन की उस बालकृष्ण गोपाल के वृन्दावन से तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी भक्त-हृदय सहस्रों वर्षों से इस स्थान की महिमा का बखान करते आये हैं और आगे भी करते रहेंगे तथा परम्परा से प्राप्त वृन्दावन की मधुर कल्पना से विभोर होते रहेंगे। वास्तव में वे उस महिमा को स्थूल दृष्टि से नहीं बल्कि अन्तर्दृष्टि से देखते हैं। हमने ठण्ड की परवा न करके कालिन्दी

में स्नान किया और मन्दिरों में जाकर दर्शन किये।

दिल्ली पहुँचने पर पहला काम जो हमने किया वह अपने नाश्ते का प्रबन्ध करना था। क्योंकि राममोहन कम्पनी से नाश्ता और भोजन के सम्बन्ध में हमने अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। ऐसा करने से हमारा काम ज़रूर थोड़ा बढ़ गया है, पर अब कम्पनी वालों के भरोसे बैठकर भूख से तड़पना नहीं पड़ता।

दिल्ली—भारत की राजधानी दिल्ली, भारत के इतिहास का केन्द्र—जिसका नाम भारत के हर कोने का बच्चा-बच्चा जानता है, और जिसकी ओर तमाम भारतवासियों का ध्यान लगा रहता है, उस दिल्ली को अपने चर्म-चक्षुओं से देखने का अवसर पाकर हमें एक विशेष आनन्द का अनुभव हुआ। हमने पहले टैक्सी का सहारा लेकर कुछ स्थानों को देखा। फिर टाँगों का इस्तेमाल किया।

सबसे पहले महाराजा जयसिंह का बनाया हुआ जंतर-मंतर नाम का स्थान देखा। जहाँ समय मालूम करने के लिए धूप-घड़ी नक्षत्र-घड़ी आदि घड़ियाँ ज़मीन पर बनाई गई। फिर नई दिल्ली में नवनिर्मित सेक्रेटेरियट और कौंसिल भवन का विशाल गोलाकार भवन देखा। उसके बाद हम कुतुब मीनार देखने गये। यह २३८ फीट ऊंचा भारत में सबसे ऊँचा मीनार है। कहा जाता है कि इसकी पहली मंज़िल पृथ्वीराज ने बनवाई थी। जिस पर चढ़कर उसकी पुत्री ३ मील की दूरी पर बहने वाली जमुना का दर्शन करके पूजा किया करती थी। उसके ऊपर की मंज़िलें कुतुबुद्दीन और शमसुद्दीन ने बनवाईं। मीनार को बिजली के प्रकोप से बचाने के लिए सबसे ऊपर की मंज़िल को, जो सातवीं मंज़िल थी, लार्ड हार्डिंग ने उतरवा दिया। नीचे से ऊपर जाने के लिए ६०० सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। ऊपर चढ़ने पर सारा दिल्ली शहर नज़र आने लगता है। पास ही सम्राट चन्द्-

गुप्त का बनवाया एक लोहे का स्तम्भ खड़ा है। कहा जाता है कि वह ३५ फ़ीट ज़मीन के नीचे और २७ फीट जमीन के ऊपर है। सदियों पुराना होने पर भी उसमें कहीं जंग नहीं लगा है।

कुतुब मीनार देखकर लौटते-लौटते काफ़ी देर हो गई थी। होटलों में खाना नहीं मिला। भोजन के प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लेने के पहले ही दिन फ़ाकाकशी की नौबत आ गई। ख़ैर, चाय और बिस्कुट से भूख मिटाई गई। थोड़ा विश्राम करके हम लाल किला देखने गये।

लाल किले में आगरा के किले की अपेक्षा अधिक सफ़ाई और सुव्यवस्था है। इस किले को शाहजहाँ ने बनवाया है। तख़्तेताऊस वाला संगमरमर का चबूतरा और दीवार पर बना इन्साफ़ का तराज़ू देखा। बादशाह पास ही बने संगमरमर के तालाब में अपना हाथ-मुँह धोकर पहले ख़ुदा से आरज़ू कर लेता था कि उसे इन्साफ़ करने का विवेक प्राप्त हो और तब दीवाने-आम में जाकर बैठता था। लाल किला भी जमुना के किनारे बना है और दिल्ली की शान को प्रकट करता है। बाहर किले के पास ही जुम्मा मस्जिद है। उसे देखने के बाद हम आइवरी पैलेस में गये जहाँ हाथी-दाँत की बनी एक-से-एक सुन्दर चीज़ें बिकती हैं।

लौटकर रात हमने अपनी स्पेशल ट्रेन में ही बिताई। हमारी पार्टी के एक मित्र ने होटल से खाना मँगाने की व्यवस्था कर रखी थी। खाना आते ही हम उस पर टूट पड़े। दूसरे दिन सवेरे हम मद्रासी होटल में पहुँचे जिसके बारे में सुनकर पिछली रात से ही वहाँ जाने के लिए हम अधीर हो रहे थे। वहाँ जाकर कॉफ़ी पी, फिर आराम से स्नान और भोजन करके घूमने निकले। ठण्डक से बचने के लिए सबों ने अपने को ढक लिया था। पुरुष अपने को चादरों से ढककर स्त्री जैसे लगते थे और स्त्रियाँ कोट आदि पहनकर पुरुष होने का भ्रम पैदा करती थीं। अपने विचित्र

वेश के कारण हम में से कुछ लोग मज़ाक के पात्र बन गये। भीड़ में सुमित्रा को पुरुष समझकर एक आदमी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और हम सब हँस पड़ीं। लाल किला देखने हम दुबारा गये, क्योंकि पिछले दिन पूरा समय नहीं मिला था। चारों तरफ़ घूमकर बेग़मों के सुन्दर स्नानघर आदि देखे। उसी दिन रात को दिल्ली से रवाना होना था, इसलिए एक बार और हमने मद्रासी होटल मे जाकर अपनी-अपनी पसन्द की चीज़ें खाईं और रात के लिए भी ले लीं।

गाड़ी में आकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाने के बाद हम आगरा और दिल्ली के अपने अनुभवों पर चर्चा करने लगीं। एक बात पर सब सहमत थीं कि ऐतिहासिक इमारतों और खण्डहरों के अलावा इन शहरों में दर्शनीय कोई चीज़ नहीं है। गन्दगी और धूल से भरे शहर जिनमें एक प्रकार की पीली मिट्टी से बनाये मकान चारों तरफ़ नज़र आते हैं, बाहर से आये दर्शकों को बहुत खटकते हैं। चाँदनी चौक की भीड़ और गन्दगी का क्या कहना! वहाँ एक बार जाने के बाद फिर जाने की इच्छा नहीं करेगी।

आज हम इलाहाबाद पहुँचे। अब जल्द बनारस पहुँचने की अधीरता बढ़ रही है। इतने दिनों से आपका पत्र न पाकर एक उदासी-सी महसूस हो रही है। आशा है, बनारस पहुँचने पर आपके पत्र वहाँ मेरी प्रतीक्षा करते मिलेंगे। कभी-कभी ऐसा लगता है कि क्या ही अच्छा होता अगर जीवन वास्तव में एक स्वप्न होता। तब यथार्थ जीवन की बाधाओं और सीमाओं से मनुष्य मुक्त होकर आनन्दपूर्वक विचरता,

मधुर चिन्तन सहित

आपकी ही रंजनी

बनारस पहुँचने पर रंजनी को कई पत्र मिले जो सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के कार्यालय की मार्फ़त आये हुए थे। उन पत्रों में चन्द्रकान्त के तीन पत्र थे। रंजनी ने तुरन्त चन्द्रकान्त को बनारस पहुँचने और उसके सब पत्र मिलने की बात लिख दी। बनारस में वह व्यस्त रही। सवेरे से रात तक कार्यक्रम रहता था। बनारस से बिदा होने के पहले उसने चन्द्रकान्त को निम्न पत्र लिखा—

बनारस
३० दिसम्बर

मेरे हृदयेश्वर,

मेरा यहाँ से भेजा कार्ड आपको मिल गया होगा। यहाँ मैं इतनी व्यस्त रही कि बहुत इच्छा होने पर भी इसके पहले आपको पत्र नहीं लिख सकी। यहाँ इलाहाबाद से भेजे गये पत्र के बाद के अनुभव लिखती हूँ।

इलाहाबाद जंक्शन से एक फिटिन करके सामान के साथ हम त्रिवेणी गये। वहाँ एक नाव पर बैठकर उस स्थान पर गये जो गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम स्थान माना जाता है। वहाँ स्नान करके वापिस आते समय अपने साथ त्रिवेणी का पवित्र जल भी लेते आये। उसके लिए हमने पहले से ही टीन के डिब्बे अपने साथ ले लिये थे। उसके बाद किले के पास ज़मीन के भीतर बने मंदिर में जिसे अक्षयवट मंदिर कहते हैं, पूजा के लिए गये। लौटती बार कोई वाहन नहीं मिला। इसीलिए सब सामान आपस में बाँटकर उठाकर हम रवाना हुए। हमारी पार्टी में जो दो अध्यापक और उनमें से एक की पत्नी थी, उनसे हमें काफ़ी सहायता मिली। कुछ दूर आगे जाने पर एक इक्का आता दिखाई

पड़ा। तब जान में जान आई। सब सामान उस पर लादकर उसके पीछे सब आराम से चलने लगे। पण्डित मोतीलाल नेहरू का आनन्दभवन पास ही में है, यह सुनकर हम उसे देखने गये। माता स्वरूपरानी के दर्शन नहीं हो सके। वे वहाँ नहीं थीं। एक स्वयंसेवक ने घुमाकर हमें सारा भवन दिखाया। आनन्दभवन को नेहरू जी ने काँग्रेस को राष्ट्र के काम के लिए दान कर दिया है और वह अब स्वराजभवन कहलाता है। उसके बाद हम स्टेशन वापिस आ गये और रात को बनारस के लिए रवाना हो गये।

तारीख़ २६ को प्रातः २ बजे हम बनारस पहुँचे। स्टेशन पर स्वागत समिति के स्वयंसेवक चिल्ला-चिल्लाकर सम्मेलन के प्रतिनिधियों को उतर जाने को कह रहे थे। हम स्पेशल ट्रेन वाले यात्रियों ने उसे सुनकर भी अनसुनी कर दी और जाड़े से ठिठुरते हुए पाँच बजे तक अपने-अपने डब्बों में पड़े रहे जब तक कि उस लाइन से जिस पर हमारी गाड़ी खड़ी थी, हमारी स्पेशल को हटाकर दूसरी लाइन पर ले जाने का स्टेशनवालों से आदेश नहीं मिला। यात्रियों को तुरन्त ट्रेन से उतर जाने को कहा गया। अनिच्छापूर्वक सब प्लेटफ़ार्म पर उतर गये। हिन्दू यूनिवर्सिटी के कुछ मलयाली विद्यार्थी स्वयंसेवक का काम कर रहे थे। उनमें से कई, यात्रियों के बन्धु-बान्धव थे। उनमें से एक ने हमारे लिए एक टैक्सी का प्रबन्ध कर दिया और हम स्वागत-कारिणी समिति द्वारा निश्चित निवास-गृह चले गये। वहाँ रम्भा, सुमित्रा और मेरे लिए एक सुविधाजनक कमरा ले लिया गया। उसके बाद तुरन्त कॉफ़ी बनाई गई। कॉफ़ी के पेट में जाते ही कुछ गर्मी मालूम हुई और लगा कि जीवन इतना बुरा नहीं है। ज़रा धूप निकलने के बाद हम सबों ने गंगा में जाकर डुबकियाँ लगाईं और लौटने पर होटल से भोजन मँगाकर भोजन किया।

खाना-पीना खतम करते-करते सम्मेलन का समय हो गया।

सम्मेलन में अच्छी-खासी भीड़ थी। स्वागताध्यक्ष काशी-नरेश थे। उनके भाषण के बाद कई छोटे-मोटे भाषण हुए। वे सब महज़ रसमी थे। लेकिन जब सम्मेलन के अध्यक्ष डाक्टर राधाकृष्णन् भाषण देने उठे तब सारे मण्डप में सन्नाटा छा गया। राधाकृष्ण का लम्बा क़द, लम्बा पहनावा, मद्रासी पगड़ी, बुलन्द सुसंस्कृत आवाज़ और एक विशिष्ट शैली में अंग्रेज़ी भाषण, इन सबों से उनका व्यक्तित्व आकर्षण का केन्द्र बन गया। उन्होंने अपने भाषण में शिक्षा के आध्यात्मिक और धार्मिक पहलुओं पर ज़ोर डाला जिनका आधुनिक शिक्षा-पद्धति में सर्वथा अभाव है। उस एक भाषण को सुनकर सम्मेलन में आने का फल मिल गया, ऐसा मानकर हम सब अपने-अपने निवास को लौटे।

दूसरे दिन सूर्योदय के पहले ही गंगा स्नान हुआ और भोजन के बाद नौका-विहार और काशी के भिन्न-भिन्न घाटों का दर्शन हुआ। शाम को हम एक सार्वजनिक सभा में डॉक्टर बेसेण्ट का भाषण सुनने गये। बड़ी मुश्किल से बैठने को जगह मिली। पर भाषण इतनी धीमी आवाज़ में हो रहा था कि हम कई व्यक्ति थोड़ी देर बैठने के बाद उठकर बाहर चले गये। हम में से कइयों ने अगले दिन सवेरे मणिकर्णिका घाट जाकर श्राद्ध आदि कर्म करने का निश्चय किया। हमारे निवास के पड़ोस में एक स्वामी जी रहते थे। उनसे हमें शुरू से ही बहुत मदद मिली। उनके द्वारा श्राद्ध कराने वाले पण्डित और उसकी दक्षिणा के बारे में बातें तय करा ली गईं। अगले दिन मणिकर्णिका घाट पहुँचकर मैंने पिताजी को भस्म को गंगा में प्रवाहित किया और श्राद्ध किया। यह सब उसी पण्डे ने कराया जिसके अतिथि-गृह में एक साल पहले मामाजी अपनी माँ और मौसी को लेकर ठहरे थे और जिसमें उनकी माँ का स्वर्गवास हुआ था। उसकी स्मृति से मेरा

मन विह्वल हो गया।

वहाँ से लौटने पर हमने विश्वनाथ के मंदिर में जाकर दर्शन किये और पुष्पहार चढ़ाये। मंदिर में इतनी भीड़ थी कि अगर मंदिर के एक चपरासी की मदद नहीं मिलती तो हमें अन्दर घुसे बिना यों ही लौट आना पड़ता। आज हम सम्मेलन में जाने के पहले सारनाथ के पास की खुदाई और वहाँ का बौद्ध मंदिर देखने गये। रात को मद्रास से आये प्रतिनिधियों के लिए विद्यार्थियों द्वारा एक हिन्दी नाटक होने वाला था। जाने की इच्छा न होने पर भी हमारे दल में एक-दो को छोड़कर बाकी सब गये। वहाँ पहुँचने पर देखा कि हॉल में बड़ी गड़बड़ी है। सब तरह के स्थानीय लोग उसमें घुस गये थे। अभिनेताओं ने नाटक खेलने से इनकार कर दिया। सशस्त्र पुलिस पहुँच गई और हॉल को खाली करा दिया। लेकिन नाटक नहीं हो सका। यह सब स्वागतकारिणी समिति के अधिकारियों द्वारा अखबारों में गलत सूचना निकाल देने के कारण हुआ।

अगले दिन थोड़ा पानी पड़ने से ठण्डक ज्यादा मालूम हुई। दिन चढ़ने पर हम खरीदो-फरोख्त के लिए थोड़े समय के लिए बाहर निकले। बाकी समय हमने कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर पड़े रहने और कॉफ़ी पीने में बिताया।

आज ३० तारीख है। आज यहाँ से रवाना होने का दिन है। आज हमारा मुख्य कार्यक्रम बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी देखने का है। अब यहाँ इसे समाप्त करती हूँ। रम्भा कॉफ़ी पीने के लिए बुला रही है।

सप्रेम आपकी ही

रंजना

× × ×

कलकत्ता
१ जनवरी

प्रियतम,

नववर्ष का अभिनन्दन स्वीकार करें । नववर्ष का आगमन हमारे लिए कलकत्ता पहुँचने पर हुआ। परसों बनारस से रवाना होने के पहले हम दूसरी बार विश्वनाथ के मन्दिर में गये। अधिक भीड़ नहीं थी । इसलिए आराम से चारों तरफ़ घूमकर देखा। कल हम गया पहुँचे । एक पण्डे के यहाँ सामान आदि रखकर १५ रुपये पर तीन व्यक्तियों की तरफ़ से श्राद्ध-कर्म कराना तय करके उसे समाप्त किया गया । तब हम बुद्ध गया देखने गये। वहाँ प्रसिद्ध बोधि वृक्ष और बुद्ध मन्दिर देखा।

यहाँ कलकत्ता में हम एक मलयाली लॉज में ठहरे हैं । इतने दिन के बाद मन लायक भोजन पाकर बड़ी प्रसन्नता मालूम हो रही है। हमने सबके पहले काली मन्दिर जाकर देखा । वहाँ की भीड़ का क्या कहना! किसी तरह दूर से ही काली की बड़ी मूर्ति का दर्शन करके लौटे। सुनने में आया है कि मन्दिर के दूसरे भाग में बकरे और मुर्गे बलि चढ़ाये जाते हैं । आजकल भी कलकत्ता जैसे शहर में जानवरों की बलि चढ़ाने की प्रथा जारी है, यह जानकर हमें बड़ा विस्मय हुआ।

यह दुख के साथ कहना पड़ता है कि उत्तर भारत के पवित्र तीर्थ-स्थानों और मन्दिरों में शान्ति और स्वच्छता नाम की चीज़ का ज़रा भी अनुभव नहीं होता । एक तरफ़ पण्डे-पुजारियों का अधिक दक्षिणा पाने के लिए हठ करना और दूसरी तरफ़ भिखारियों का भिक्षा के लिए यात्रियों का पीछा करना ऐसा क्षुब्ध बनाने वाला अनुभव है कि इन तीर्थस्थानों में दुबारा जाने का विचार मन में उठ नहीं सकता। सब बाहर जाने के लिए तैयार हो गये हैं। समाप्त करती हूँ। सप्रेम रंजनी

× × ×

रंजनी ने एरणाकुलम पहुँचकर लिखा:

एरणाकुलम,
७ जनवरी

प्राणेश्वर,

पूरे एक सप्ताह के बाद आपको पत्र लिखने बैठी हूँ। मद्रास से एक छोटा पत्र भेजना चाहती थी। पर उसके लिए भी सुविधा नहीं मिली। फिर सोचा कि घर जाकर यात्रा का बाकी विवरण एक ही पत्र में आपके पास भेजूँगी।

कलकत्ता में काली-मन्दिर देखने के बाद हम शहर में खूब घूमे। नववर्ष की छुट्टी होने के कारण कलकत्ता का प्रसिद्ध चिड़िया-घर नहीं देख सके। पर अजायबघर, विक्टोरिया मेमोरियल और बालीगंज झील देखने गये। अन्त में दक्षिणेश्वर का मन्दिर देखने गये, जहाँ परमहंस स्वामी रामकृष्ण ने ईश्वराराधना में अपने दिन बिताये थे। हमें वह कमरा भी दिखाया गया जिसमें परमहंस की शैया और पुस्तकें आदि सामान रखे हैं। शैया पर परमहंस और उनकी पत्नी के चित्र थे, जिन पर मालायें और फूल डाले गये थे। कुछ भक्त लोग इधर-उधर ध्यानावस्था में बैठे थे। सारा वातावरण शान्त और आध्यात्मिक था। वहाँ जाने पर हठात् मन को एक शान्ति का अनुभव हुआ। परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जिस वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान किया करते थे उसकी दो-चार पत्तियाँ यादगार के लिए ले लीं। दक्षिणेश्वर मन्दिर से हम एक नई प्रसन्नता का भाव लेकर लौटे। उत्तर भारत की यात्रा एक दृष्टि से यहीं समाप्त हो गई। कलकत्ता से हमें दक्षिण को लौटना था। रात की गाड़ी से हम पुरी के लिए रवाना हो गये।

पुरी में जगन्नाथ का मन्दिर देखने गये। वहाँ भी भिखारियों

का ताँता देखकर मन घबड़ाने लगा। पुरी का समुद्र-स्नान अलबत्ता बड़ा आनन्ददायक मालूम हुआ। पुरी से रवाना होकर हम राजमहेन्द्री में उतरे। वहाँ गोदावरी में स्नान किया। ४ जनवरी को १६ दिन की यात्रा समाप्त करके हम मद्रास सेण्ट्रल स्टेशन पहुँचे। अगले दिन हम मद्रास से रवाना हुए और ६ जनवरी को एरणाकुलम पहुँच गये। इस तरह भगवान की कृपा से देश की यह प्रथम परिक्रमा सानन्द समाप्त हुई।

सकुशल घर लौटने पर स्वजनों से मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। नानीजी के हर्ष का क्या कहना! प्रत्येक तीर्थ-स्थान से मैं उनके लिए कुछ न कुछ लाई हूँ। उससे वे और भी प्रसन्न हैं। यहाँ कुछ सहेलियों ने मुझ से यह प्रश्न किया कि बिहार देख आई? कैसा है? मेरी मुस्कराहट ही उनके प्रश्न का उत्तर था।

मैंने आशा की थी कि यहाँ पहुँचने पर आपका पत्र मिलेगा। मैंने आते ही अपने पत्रों के बारे में प्रश्न किया। दो-तीन पत्र तो मेरे लिए डाक से आये थे, पर उनमें आपका पत्र न पाकर मुझे बहुत निराशा हुई। आप इस पत्र के पाने तक तो लिखेंगे नहीं। इसलिए आपका पत्र पाने के लिए बड़ी अधीरता रहेगी। आशा है, आप पूर्णतः स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

हृदय के सारे प्रेमसहित
आपकी ही रंजनी

१०

नये पथ पर

बनारस से रंजनी के लौटने के बाद उसकी माँ बीमार रहने लगीं। उनके इलाज के लिए बहुत दौड़धूप की गई। एक दिन चन्द्रकान्त मंगलापुरम् से जाकर उन्हें देख आया। उनकी हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई। और कई महीनों तक इलाज कराते रहने के बाद एक दिन वे अपनी बूढ़ी माँ, एक पुत्र, पाँच पुत्रियां और पौत्र-पौत्रियों को छोड़कर स्वर्ग सिधार गईं। रंजनी कार्यवश मद्रास गई थी। माँ की स्थिति बिगड़ने का तार पाकर एरणाकुलम लौट आई। किन्तु माँ उसके पहुँचने के चन्द घण्टे पहले ही उसके आने के बारे में पूछते-पूछते चल बसीं। पुत्री को एक बार और देख लेने की इच्छा पूरी नहीं हुई। गत तीन साल में घर में तीन मृत्यु हुईं। पहले बड़ी नानी गईं, फिर पिताजी गये और पिता की मृत्यु के एक साल के भीतर ही माँ गईं। परिवार में शोक छा गया। बूढ़ी नानीजी के दुख का पारावार नहीं रहा। उन्हें पहले दो नातियों की मृत्यु का दुख सहना पड़ा था। फिर जामाता का देहान्त हुआ और अन्त में एक मात्र पुत्री भी चल बसी। दुख के मारे उन्होंने अन्न ग्रहण करना छोड़ दिया। उनकी स्थिति शोचनीय हो गई। परिवार के सब लोग उन्हें सँभालने में लग गये।

रंजनी शोकावस्था में ही थी कि उसे ख़बर मिली कि चन्द्रकान्त मंगलापुरम् छोड़ने की तैयारी कर रहा है। इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई। चन्द्रकान्त का मंगलापुरम् की एक प्रमुख समाज कार्यकर्त्री मिसेज़ सुब्बाराव से मतभेद हो गया और

उसके कारण चन्द्रकान्त ने मंगलापुरम् से अपनी बदली करा लेने का निश्चय किया। मिसेज़ सुब्बाराव दीवान बहादुर सुब्बाराव की पत्नी थीं। अपनी उम्र, योग्यता, समाज में स्थान, सार्वजनिक सेवा-भाव आदि के कारण मंगलापुरम् के महिला समाज की वे अध्यक्षा थीं। चन्द्रकान्त जब मंगलापुरम् गया तब उन्होंने हिन्दी प्रचार के कार्य में उसकी बड़ी सहायता की। वहाँ जो हिन्दी विद्यार्थिनीमण्डल स्थापित किया गया उसकी वे अध्यक्ष चुनी गईं। चन्द्रकान्त शुरू में मंगलापुरम् के आर्य-समाज मन्दिर में रहता था। मिसेज़ सुब्बाराव का यह एक दैनिक कार्य हो गया था कि दो फर्लाङ्ग दूर अपने घर से सवेरे चलकर समाज मन्दिर पहुँच जाय और चन्द्रकान्त से एक घण्टे तक हिन्दी सीखकर चली जाय। चन्द्रकान्त के समयाभाव के कारण उन्होंने अपने वर्ग का ऐसा कार्यक्रम बनाया था। उनकी पुत्रवधू भी महिला समाज में चलने वाले वर्ग में हिन्दी सीखती थी। चन्द्रकान्त से उनके परिवार के सब लोग बहुत स्नेह-भाव रखते थे। मिस किनियर्ड (लार्ड किनियर्ड की बहन) जब क्रिश्चियन मिशन के काम के सिलसिले में मंगलापुरम् आकर मिसेज़ सुब्बाराव के यहाँ मेहमान के तौर पर ठहरी तब एक दिन उनके सम्मान में दिये गये भोज में शरीक होने के लिए मिसेज़ सुब्बाराव ने चन्द्रकान्त को भी निमन्त्रित किया था। चन्द्रकान्त मिसेज़ सुब्बाराव का आदर ही नहीं करता था, उन्हें माता के तौर पर मानता था। उन्हीं मिसेज़ सुब्बाराव के साथ जब उसका मतभेद हो गया तब उसने मंगलापुरम् छोड़ देना ही उचित समझा।

कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सम्मेलन का पहला जलसा बंगलौर में महात्माजी की अध्यक्षता में हुआ था। तीसरे अधि-वेशन के लिए चन्द्रकान्त ने मंगलापुरम् की तरफ़ से सम्मेलन को निमन्त्रित किया था। सम्मेलन के लिए मिसेज़ सुब्बाराव की

अध्यक्षता में एक स्वागत-समिति बनाई गई और तैयारियाँ शुरू हो गईं। चन्द्रकान्त सम्मेलन के अवसर पर एक हिन्दी नाटक का अभिनय कराने के लिए अपकी विद्यार्थिनियों को तैयार करने लगा। कुछ समय पहले हिन्दी विद्यार्थिनीमण्डल के प्रथम वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्यार्थिनियों ने द्विजेन्द्रलाल राय का नूरजहाँ ड्रामा खेला था। उसे सफल बनाने में मिसेज़ सुब्बाराव ने स्वयं बहुत परिश्रम किया था। हिन्दी पुस्तकालय के लिए धन-संग्रह करने के उद्देश्य से टिकट बेचे गये थे, जिससे एक अच्छी रकम इकट्ठी हो गई थी। ड्रामा बहुत सफल हुआ था। लेकिन इस बार मिसेज़ सुब्बाराव ने लड़कियों द्वारा ड्रामा खेले जाने का समर्थन नहीं किया। पिछली बार जो ड्रामा हुआ था उसमें मंगलापुरम की बड़ी उम्र वाली युवतियों ने भी भाग लिया था। इस पर नगर की कुछ मण्डलियों में टीका-टिप्पणी हुई थी। मिसेज़ सुब्बाराव स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त एक सुसंस्कृत महिला थीं। तो भी वे समाज की भावनाओं की उपेक्षा करके कुछ करने के पक्ष में नहीं थीं।

चन्द्रकान्त के सामने दो ही बातें थीं। एक तो यह कि वह बावजूद मिसेज़ सुब्बाराव की असम्मति के ड्रामा खेलने के कार्यक्रम को बनाये रखता अथवा स्वागत-समिति के मन्त्री पद से इस्तीफ़ा देकर सम्मेलन के कार्यक्रम से अलग हो जाता। अपने १० साल के हिन्दी प्रचार के जीवन में उसके लिए वह पहला अवसर था जब कि उसके सामने ऐसी स्थिति पैदा हुई हो। अपने विचार पर अगर वह दृढ़ रहता तो मिसेज़ सुब्बाराव का स्वागताध्यक्ष के पद से इस्तीफ़ा देना निश्चित था। नगर के नेता श्री कर्नाड सदाशिवराव ने मिसेज़ सुब्बाराव और चन्द्रकान्त से अलग-अलग मिलकर बातें कीं और समझौता कराने की कोशिश की। पर उसका कोई फल नहीं हुआ। चन्द्रकान्त ने मंगलापुरम् के

हिन्दी प्रचार के भविष्य के बारे में सोचा और मिसेज़ सुब्बाराव के साथ के अपने स्नेहयुक्त सम्बन्ध के बारे में भी सोचा और इस नतीजे पर पहुँचा कि उसे सम्मेलन की स्वागत-समिति से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए और मंगलापुरम् से अपना तबादला करा लेना चाहिए। उसने सभा को तमाम बातें लिख भेजीं और ट्रान्सफर आर्डर मँगा लिया। चन्द्रकान्त के मंगलापुरम् से जाने के निश्चय की ख़बर हिन्दी विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों में फैल गई। और उनकी तरफ़ से विदाई देने के कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

महिला समाज और गवर्नमेण्ट गर्ल्स हाईस्कूल में जो बिदाई सभाएँ हुईं वे बहुत हृदयस्पर्शी थीं। महिला समाज की सभा मिसेज़ सुब्बाराव की अध्यक्षता में हुई। उन्होंने चन्द्रकान्त की हिन्दी प्रचार के लिए की गई सेवाओं की प्रशंसा की और उसके लिए शुभ कामना प्रकट की। गर्ल्स हाई स्कूल में बिदाई सभा स्कूल की सुप्रिण्टेण्डेण्ट श्रीमती कल्याणी अम्मा की अध्यक्षता में हुई। उक्त स्कूल श्रीमती कल्याणी अम्मा के उत्साह और हिन्दी प्रेम के कारण हिन्दी का एक बड़ा केन्द्र बन गया था। उस सभा में चन्द्रकान्त को हिन्दी विद्यार्थिनियों की तरफ से जिनमें स्कूल की अध्यापिकायें भी शामिल थीं, एक मानपत्र दिया गया। श्रीमती कल्याणी अम्मा ने अपनी तरफ़ से कुछ पुस्तकें भेंट कीं। चन्द्रकान्त अन्त में जब जवाब देने उठा तब उसका गला भर आया। वह बड़ी मुश्किल से दो-चार शब्दों में अपनी कृतज्ञता प्रकट कर सका। अन्त में कई छात्राओं और शिक्षिकाओं ने मिल कर बाइबिल का एक भजन गाया, जिसकी पहली पंक्ति थी—"We shall meet again." (अर्थात् हम फिर मिलेंगे)। जब वह भजन गाया जा रहा था तब उस बड़े हॉल में सिसकियों की धीमी आवाज़ सुनाई पड़ रही थी और अनेक अपने रुमाल

निकालकर अपनी आँखें पोंछ रही थीं।

अनेकों का आग्रह था कि वह सम्मेलन के बाद जाय, पर उसने कहा कि मंगलापुरम् में उसका काम समाप्त हो गया है और उसे जाना ही होगा। वह मंगलापुरम् से बिदा हो गया और अपने साथ अनेक मधुर स्मृतियाँ लेता गया।

हिन्दी-प्रचार चन्द्रकान्त के लिए सिर्फ एक भाषा का प्रचार नहीं था। वह राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्र-सेवा के सन्देश का प्रचार था। हिन्दी-प्रचार का काम उसके लिए धर्म-प्रचार से कम महत्त्वपूर्ण नहीं था—एक ऐसे धर्म का प्रचार जिसमें धर्मान्धता और विरोध-भाव नहीं था। हिन्दी-प्रचार देश में एक नव-जीवन के संचार का काम था, स्वतन्त्रता की चेतना जागृत करने और एकता के सूत्र में बँधकर उठ खड़े होने का काम था। हिन्दी-प्रचार के कार्य से उसने जीवन की वृत्तियों को समन्वित करना और जीवन और समाज के बीच समन्वय स्थापित करना सीखा। उसने दूसरों को सिर्फ हिन्दी ही नहीं सिखाई, उनसे बहुत कुछ सीखा भी। मंगलापुरम् के ढाई वर्ष उसके अब तक के हिन्दी-प्रचार के जीवन में अत्यन्त सुखद और उज्ज्वल वर्ष रहे।

सभा ने चन्द्रकान्त को हिन्दी-प्रचार का संगठन बनाकर ट्रावनकोर भेजा। ट्रिवेण्ड्रम में हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में होने वाली कुछ अनियमितताओं की खबरें सभा के कार्यालय में पहुँची थीं। वासुदेवन नाम का एक हिन्दी प्रचारक जो कुछ दिन सभा के अधीन कोचीन में काम कर चुका था ट्रिवेण्ड्रम में जाकर स्वतन्त्र रूप से काम कर रहा था। उसकी कार्य-प्रणाली के विरुद्ध ट्रिवेण्ड्रम के कुछ हिन्दी प्रेमियों ने शिकायत भेजी थी।

चन्द्रकान्त ने सबसे पहले ट्रावनकोर के सब हिन्दी केन्द्रों का दौरा किया और प्रचारकों से मिला। हर केन्द्र में भाषण दिये। उसके बाद उसने ट्रिवेण्ड्रम के वाई. एम. सी. ए. हाल में ट्रिवेण्ड्रम के

एक प्रमुख नेता श्री पट्टम तानु पिल्ला की अध्यक्षता में प्रथम ट्रावनकोर हिन्दी प्रचारक सम्मेलन का आयोजन किया। उस अवसर पर सभा के प्रधानमन्त्री पण्डित हरिहर शर्मा ने सम्मेलन में हाज़िर होकर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सभा की ट्रावनकोर शाखा की स्थापना की घोषणा की और चन्द्रकान्त को ट्रावनकोर शाखा का मन्त्री नियुक्त किया। चन्द्रकान्त ने वासुदेवन से मित्रतापूर्ण व्यवहार करके उसे सभा के अधीन नियुक्त करा दिया। किन्तु वासुदेवन अधिक दिन सभा के अधीन रह नहीं सका। वह एक हिन्दी-प्रेमी मण्डली खोलकर उसमें वर्ग लिया करता था। उसकी नियुक्ति के बाद मण्डल सभा से सम्बद्ध हो गया। नगर में प्रचार कार्य बढ़ जाने के कारण बाहर से बुलाकर प्रचारक नियुक्त किये गये। मण्डल के कुछ वर्ग एक नये प्रचारक को सौंपकर वासुदेवन को नगर के भिन्न-भिन्न स्थानों में खुलने वाले महिलाओं के वर्ग लेने को कहा गया। पहले तो उसने स्वीकार कर लिया, किन्तु बाद को इस बात पर डट गया कि मण्डल में सिवा उसके और कोई प्रचारक आकर न पढ़ावे। चन्द्रकान्त ने उसकी बात स्वीकार नहीं की और वासुदेवन सभा से अलग हो गया, और उसका मण्डल सभा से भी सम्बन्ध विच्छेद हो गया। अब ट्रिवेण्ड्रम शहर में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ट्रावनकोर शाखा और वासुदेवन का हिन्दी प्रेमी मण्डल, इन दो संगठनों की तरफ़ से हिन्दी प्रचार का काम होने लगा। उसके साथ-साथ प्रतिद्वन्द्विता भी बढ़ी। हिन्दी प्रेमी मण्डल भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थी तैयार करता था। पर साथ-साथ वह सभा की ट्रावनकोर शाखा का विरोध भी करता था और सभा से स्वतन्त्र होकर अपनी अलग परीक्षाएँ चलाने का भी प्रचार करता था। उसका कहना था कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा बाहर की संस्था है जो

परीक्षा-शुल्क के रूप में ट्रावनकोर का धन चूस रही है। वासुदेवन ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए ट्रावनकोर हिन्दी प्रचार सभा नाम की एक सभा बनाली। वह नमक सत्याग्रह का समय था जब सारे देश में राष्ट्रीय चेतना चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। उस सुदूर राज्य के नर-नारी हिन्दी सीखना राष्ट्र-सेवा का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानकर हिन्दी सीखने में बहुत उत्साह दिखा रहे थे। वासुदेवन की कार्रवाइयों से हिन्दी का काम तो बढ़ा पर साथ-साथ ट्रिवेण्ड्रम का हिन्दी वातावरण दूषित हो गया। वासुदेवन को स्थानीय सरकारी हाई स्कूल में हिन्दी टीचर की जगह नहीं मिली और उस जगह पर दक्षिण भारत सभा के एक ट्रेण्ड प्रचारक की नियुक्ति हो गई। इस कारण वासुदेवन का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने सभा और चन्द्रकान्त के विरुद्ध अखबारों में लेख लिखे। सभा-सम्बद्ध प्रचारकों को अपने साथियों को लेकर सड़कों पर अपमानित किया। चन्द्रकान्त नगर के प्रमुख लोगों से परिचय भी नहीं कर पाया था कि उसके विरुद्ध एक प्रोपेगेण्डा चल पड़ा और उसे ट्रिवेण्ड्रम से भगाने की बात होने लगी। उधर चन्द्रकान्त दो-चार प्रचारकों को अपनी सभा के अधीन नियुक्त करके अपना संगठन बढ़ाने में लग गया। उसने पहले हिन्दी विद्यार्थिनियों का एक मण्डल बनाया और एक प्रचारिका की नियुक्ति करके उसे महिलाओं में कार्य बढ़ाने में लगा दिया। एक मण्डल हिन्दी विद्यार्थियों का भी बनाया गया। एक दिन दोनों मण्डलों का औपचारिक रूप से उद्घाटन करने के लिए स्थानीय वाई. एम. सी ए. हॉल में एक सभा की गई। उद्घाटन करने के लिए साइन्स कालेज के प्रिन्सिपल डाक्टर मौडगिल साहब निमन्त्रित होकर पधारे। वासुदेवन भी निमन्त्रित होकर अपने दल-बल के साथ सभा में आया। सभा में जब विद्यार्थीमण्डल का मन्त्री अपनी रिपोर्ट पढ़ रहा था तब

वासुदेवन के विद्यार्थियों ने उठकर प्रश्न किया कि रिपोर्ट में हिन्दी-प्रेमी मण्डल के कार्य का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है। चन्द्रकान्त ने उपयुक्त उत्तर देकर उसे शान्त किया। उसके बाद सभा शान्ति से समाप्त हो गई।

लेकिन जब चन्द्रकान्त वाई. एम. सी. ए. के गेट के बाहर आया तब वासुदेवन के विद्यार्थियों ने उसे घेर लिया और फिर वही प्रश्न किया कि हिन्दी-प्रेमी मण्डल के काम का ज़िक्र क्यों नहीं किया गया? यह स्पष्ट था कि वे सब कुछ शरारत करने के लिए तैयार होकर आये थे। चन्द्रकान्त कुछ उत्तर देने वाला ही था कि पचास गज़ के फ़ासले से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। सब उधर देखने लगे। पुकारने वाले उसके एक पुराने मित्र वकील श्री नारायण अय्यर थे जो मदुरा में उससे हिन्दी सीखते थे। चन्द्रकान्त उन विद्यार्थियों से यह कहता हुआ कि आप लोगों से मैं फिर बातें करूँगा उस मित्र के पास चला गया और उस समय बात बढ़ने नहीं पाई। उसके बाद दोनों पक्षों के बीच तनाव और भी बढ़ गया। ऐसा लगता था कि ट्रिवेण्ड्रम के सब हिन्दी-प्रेमी दो पक्षों में विभक्त हैं। एक पक्ष दक्षिण भारत सभा और चन्द्रकान्त का समर्थक था, तो दूसरा हिन्दी-प्रेमी मण्डल और वासुदेवन का। ट्रिवेण्ड्रम का महिला वर्ग दक्षिण भारत सभा का समर्थक था। अनेक घरों में पत्नियाँ और बहनें सभा के प्रचारक-प्रचारिकाओं से हिन्दी सीखती थीं तो पति और भाई मण्डल के प्रचारकों के पास जाकर सीखते थे। चन्द्रकान्त के सम्बन्ध में उस पक्ष वालों की तरफ़ से अशोभन बातें भी कही गईं। उसकी व्यक्तिगत चिट्ठियाँ उड़ाकर उसे बदनाम करने की भी कोशिश की गई।

चन्द्रकान्त सब तरह की बातों को सहन करते हुए अपने सहयोगियों के साथ अपना कार्य करता चला जाता था। उसने

जिसे अपना कर्तव्य समझा था, उस पर वह दृढ़ था। और झुकने के लिए तैयार नहीं था।

एक दिन वह अपने दफ्तर में, जो एक मकान के दो मंजिले पर था, बैठा था और ट्रिवेण्ड्रम हिन्दी प्रचार के वातावरण की परेशानियों और कलुषता के कारण बहुत चिन्ताकुल हो रहा था। उस अवस्था में मानो उसे किसी की सहायता की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। और वह सहायता उसे एक रहस्यपूर्ण ढंग से मिल गई।

उसे अपने कमरे की खिड़की के छड़ों से मुँह सटाये बाहर किसी के खड़े होने का आभास हुआ। वास्तव में वहाँ कोई था नहीं। वह महज़ एक ख़याल था जो उसके मन में पैदा होकर बिजली की तरह चला गया। किन्तु वह चेहरा कितना हँसमुख था। चित्रों में छपे युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन को उपदेश देते हुए कृष्ण से मिलता-जुलता वह चेहरा था। उस चेहरे की झलक पाकर चन्द्रकान्त एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसकी धमनियों में रक्त-संचार की गति बढ़ गई। हृदय में एक उत्साह और आनन्द की धारा फूट पड़ी। उसने अपनी सारी परेशानी, विकलता और निस्सहायता को भूलकर अपने में एक नये बल और साहस का अनुभव किया। एक क्षण पहले जो वह म्लानमुख था, अब खिल उठा। आज बहुत दिनों के बाद अपने हृदय में एक प्रसन्नता का भाव पाकर, एक लम्बे अर्से के बाद अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से ईश्वर को स्मरण किया। वह दिन उसके जीवन में एक नई अनुभूति का दिन था।

आर्यसमाज के सम्पर्क में आने के बाद से वह संध्या-वन्दन किया करता था। लेकिन एक बार एक प्रार्थनावादी सज्जन के घनिष्ट सम्पर्क में आकर उसे इतनी निराशा हुई थी कि उसने निश्चय किया कि वह आगे प्रार्थना नहीं करेगा। न अपने मामले

में ईश्वर को घसीटेगा। उसके बाद कभी संस्कारवश ईश्वर का नाम भी उसके मुंह से निकल जाता तो वह तुरन्त अपने को रोकता। प्रार्थना के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया को एक बार उसने निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया था—

धार्मिक जीवन की बुनियाद और ईश्वर भक्ति की कसौटी, प्रार्थना, मेरी धारणा के आदर्श जीवन का अंग नहीं है। मुझे अज्ञेयवादी या नास्तिक कहा जा सकता है। क्योंकि क्या महात्माओं ने जिनका दुनिया आदर करती है, प्रार्थना के महत्त्व और आवश्यकता पर जोर नहीं दिया है?

लोग मुझे एक पाखण्डी, दम्भी कह सकते हैं। किन्तु मैं प्रार्थना के लिए बैठे बिना ही सर्वथा सुखी और सन्तुष्ट हूँ।

हाँ, मेरे सम्मुख भी ऐसे क्षण आते हैं जब कि मैं अश्रुपात करता हूँ और मेरा हृदय भी शोक, सन्ताप, संवेदना से विदीर्ण होने लगता है। लेकिन तब मैं उन्हें धैर्य से सहन करता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि कि वे सब मेरे कर्मों के फल हैं।

इस तरह प्रार्थना की आवश्यकता अनुभव किये बिना मेरा एक-एक दिन कट रहा है।

स्वतन्त्र होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, वे कहते हैं; किन्तु मैं अपने को बन्धन में नहीं पाता। पाप-रहित होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, किन्तु मैं अपने पापी होने का अनुभव नहीं करता। विनम्र होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, किन्तु मैं गर्विष्ट होने का अनुभव नहीं करता। तब मैं क्यों प्रार्थना करूँ?

मैं कहता हूँ, प्रार्थना शब्द भ्रामक है। इससे प्रार्थना करने वाला व्यक्ति समझने लगता है कि वह दूसरों से अधिक पवित्र है और इसीलिए ईश्वर को अधिक प्रिय है। वह प्रार्थना के लिए आसन जमाकर बैठने को ही जीवन के पुरुषार्थ की सिद्धि का मार्ग समझने लगता है। उसकी दृष्टि संकुचित और एकांगी हो

जाती है।

इस प्रकार का जीवन मेरे लिए आकर्षक नहीं है। मैं अपने ईश्वर को प्यार करता हूँ और उसके नियम पर सबसे अधिक अवलम्बित रहता हूँ किन्तु मैं उसके पीछे दौड़ने की आवश्यकता नहीं समझता। मेरी दृष्टि में उसी को मेरे पीछे दौड़ना चाहिए, जैसे एक मानव पिता अपने बच्चे को ठीक रास्ते पर रखने के लिए उसके पीछे दौड़ता है।

मेरे लिए सरल हृदयों की निश्छल दृष्टि पर्याप्त है जो मुझे 'उसका' स्मरण दिलाती है। जब मैं दुखी आत्माओं से मन्द मुस्कान का आदान-प्रदान करता हूँ तब मुझे ऐसा लगता है मैं 'उसके' साथ सम्पर्क स्थापित कर रहा हूँ। मैं प्यार भरे हृदयों की कोमल आँखों में 'उसे' प्रतिबिम्बित होता हुआ पाता हूँ।

मेरा सम्बन्ध मेरे ईश्वर से इसलिए है कि मैं आनन्द की चाह रखता हूँ। आनन्द की अनुभूति की ही मैं आकांक्षा करता हूँ और उसी को अपने जीवन में व्यक्त करना चाहता हूँ।

एक मैं सौन्दर्य के द्वारा करता हूँ और दूसरा प्रेम के द्वारा। मेरे लिए सौन्दर्य सृष्टि में ईश्वर की अभिव्यक्ति है और प्रेम उसका प्रकाश है।

आनन्द आत्मीयता की चेतना का ही दूसरा नाम है, और आत्मीयता आसन लगाकर प्रार्थना करने से उपलब्ध नहीं होती, किन्तु प्यार करने से होती है। सबों को प्रेम से अपना हृदय दान करने से होती है।

× × ×

किन्तु ट्रिवेण्ड्रम की अनुभूति के बाद उसने प्रार्थना पर अपने नये विचार लिखे। वे इस प्रकार थे—

बहुत दिन हुए, प्रार्थना के विरुद्ध विचार मेरे मन में आविर्भूत हुए थे।

उसके बाद प्रातः और सायं प्रार्थना करने का मेरा क्रम टूट गया। संध्या के मन्त्र मैं भूल गया। ईश्वर का नाम लेना मैंने छोड़ दिया और अपने सुख-दुख में ईश्वर का स्मरण भी नहीं करने का मैंने निश्चय किया।

किन्तु प्रार्थना मेरे जीवन में फिर से अवतरित हुई। नवीन रूप में आई, नवीन सन्देश लेकर आई।

मैं पहले की तरह फिर प्रार्थना के लिए नहीं बैठा। लेकिन ईश्वर को स्मरण करना, उसका नाम लेना मेरा सबसे बड़ा काम हो गया।

अब 'उसकी' स्मृति मेरे उपचेतन मन में सदा जागृत रहती है। मैं 'उस' से कुछ माँगता नहीं, सिवाय इसके कि मैं 'उसको' कभी नहीं भुलाऊँ। मैं 'उस' से कुछ चाहता नहीं, सिवाय इसके कि मैं 'उसे' हमेशा याद रखूँ।

'उसका' नाम मेरे लिए विद्युत्-शक्ति का स्रोत हो गया है। 'उसका' उच्चारण करते ही मैं एक नई स्फूर्ति का अनुभव करता हूँ। उसके स्मरण मात्र से मेरी उत्साहहीनता दूर हो जाती है और अन्धकार में प्रकाश की झलक मिल जाती है।

मेरे लिए अब उसका स्मरण करना ही उसका नाम लेना है। और उसका नाम लेना ही प्रार्थना है।

मैं मानता हूँ कि जीवन की सार्थकता कर्म है, कर्म की सार्थकता कल्याण में है और प्रार्थना की सार्थकता जीवन को सशक्त और कर्म को आनन्ददायक बनाने में है।

× × ×

अब चन्द्रकान्त निश्चित भाव से अपना काम करने लगा। ऐसा लगा कि उसके बुरे दिन निकल गये। उसके बाद डाक्टर मौडगिल और नगर के कुछ प्रतिष्ठित महानुभावों की सहायता से हिन्दी क्षेत्र के वातावरण में थोड़ा सुधार हो गया। हिन्दी

प्रेमी मण्डली को पुनर्गठित करके सभा से फिर सम्बद्ध कर देने और वासुदेव को सभा के प्रमाणित प्रचारकों की सूची में शामिल कर लेने का निश्चय हुआ।

× × ×

उसके कुछ हफ़्तों के बाद चन्द्रकान्त को एक तार मिला।

"विवाह अगले महीने में करने का निश्चय हुआ है। पत्र जा रहा है।

—माधवन

चन्द्रकान्त ने तार को लेकर बार-बार पढ़ा। वह तार उसी के नाम का है या किसी दूसरे के नाम का, इस सम्बन्ध में कोई भूल न हो जाय इसका निश्चय करने के लिए उसने तार को बार-बार पढ़कर अपनी तसल्ली कर ली। उसने मन में कहा, तो आख़िर ईश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली।

तीसरे दिन माधवन और रंजनी का अलग-अलग पत्र मिला। माधवन ने अपनी दो-चार पंक्तियों में जो कुछ लिखा था, रंजनी ने उसे विस्तार से लिखा था। रंजनी का पत्र इस प्रकार था—

मेरे प्राणनाथ,

अन्त में भगवान् ने हमारी प्रार्थना सुन ली। नानाजी की सम्मति प्राप्त हो गई है। सबसे नज़दीक का शुभ मुहूर्त ३१ अक्टूबर का दिन है। भइया का तार आपको मिल गया होगा। इसके साथ अलग डाक से उनका पत्र भी आपको मिलेगा। सुनने में आया है कि किसी ने बड़े मामाजी से हम दोनों के बारे में चर्चा की। बड़े मामा ने सब बातें सुनकर कहा, अगर दोनों ने ख़ूब सोच-विचार के बाद निश्चय किया है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उसके बाद उन्होंने भइया को बुलाकर उनसे पूछताछ की। भइया ने उनसे कहा कि दोनों कई सालों से वचनबद्ध हैं। बड़ों की सम्मति की ही आवश्यकता है। बड़े मामाजी ने कहा

कि अपनी नानी को जाकर मेरी तरफ़ से कह देना कि रंजनी का विवाह चन्द्रकान्त से कर देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। और विवाह जल्द सम्पन्न हो जाय इसका प्रबन्ध जल्द हो जाना चाहिए। भैया ने आकर नानीजी को बड़े मामाजी का सन्देश सुनाया और नानीजी की स्वीकृति और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। नानीजी को कहीं दुख न पहुँचे इस विचार से इसके पहले उनसे किसी ने हमारे बारे में कुछ नहीं कहा था। नानीजी ने बड़े मामा का सन्देश सुनकर कहा कि जब तुम्हारे बड़े मामा की सम्मति है तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। रंजनी सुखी होवे यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है। उसके बाद भैया तुरन्त पोस्ट ऑफ़िस गये और आपको तार भेज दिया। दीदी, भावना और लक्ष्मी ने आपको उनकी तरफ़ से बधाइयाँ लिखने को कहा है।

मेरे हृदय के देवता, अब आप प्रसन्न हैं न ? मैं अपनी बात क्या कहूँ ? मिलन की ऊषा के आगमन की मधुर ध्वनि कानों में संगीत की तरह पड़ रही है। हृत्तन्त्री झंकरित हो रही है। और मन-मयूर उसकी तान पर नाच रहा है।

अब ३१ अक्टूबर कब आयेगा ? यह चालीस दिन कितनी विकलता से कटेंगे ? लेकिन वह विकलता कितनी मधुर होगी। ३१ अक्टूबर को हम दोनों सदा के लिए एक हो जायेंगे, अभिन्न हो जायेंगे। क्या उसके पहले आप एक दिन के लिए यहाँ नहीं आ सकते ? नहीं, अब ३१ अक्टूबर को ही आइये।

मेरे हृदय-धन, ३१ अक्टूबर हमारे जीवन का सबसे बड़ा और आनन्ददायक दिन होगा। उस दिन हमारी लम्बी जुदाई का अन्त हो जायगा। पिछले करीब पाँच साल की विरह-व्यथा का अन्त हो जायगा। हे ईश्वर ! ३१ अक्टूबर हम दोनों के जीवन में सबसे बड़े सौभाग्य, सुख और आनन्द का दिन होवे। ईश्वर

उन सबका भला करे जिन्होंने हमारे प्रति सौहार्द और सहानुभूति दिखाई, हमारी सफलता की कामना की और हमें सहायता पहुँचाई। काश! आज पिताजी और माताजी इस लोक में रहते। उन दोनों के मन में आपके प्रति कितना स्नेह-भाव था। माँ ने हमारे विवाह का शुरू में विरोध किया था पर उनका विचार धीरे-धीरे बदलने लगा था। उस लोक से भी हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा।

नानी जी ने आज प्रसन्न भाव से मुझसे आपके बारे में पूछा कि आजकल आप कहाँ हैं? जब मैंने उनसे कहा कि आप ट्रिवेण्ड्रम में हैं तब उनको बड़ी खुशी हुई कि आप केरल में ही हैं। दीदी, भावना और छोटी बच्ची की खुशी का क्या कहना? घर में सब खुश हैं। बहुत दिनों के बाद आज घर में इतनी प्रसन्नता और आनन्द का वातावरण मालूम हो रहा है। संध्या को भी मैंने सूचित कर दिया है। उसने मुझे हार्दिक बधाइयाँ भेजी हैं।

आपके पत्र की उत्सुक प्रतीक्षा में सदैव-सदैव आपकी ही,

—रंजनी

पुनश्चः नीचे एक उद्गार भेज रही हूँ।

तुम आगये मेरे प्रियतम! मेरा हृदय आनन्द विभोर हो नृत्य कर रहा है। मेरी उत्सुक आँखें जो दूर तक देख रही थीं अब तुम्हारे प्रेमालोकित मुखमण्डल पर अटक गई हैं। हाथ में हाथ डाले अब मैं अपनी सब वेदना और विषाद भूल गई हूँ और तुम्हारी आँखों में आँखें गड़ाये तुम्हारे हृदय के आनन्द का अनुभव कर रही हूँ।

तुम आगये मेरे प्रियतम! मेरा हृदय आनन्द-विभोर हो नृत्य कर रहा है। मेरा उद्वेलित हृदय तुम्हारा बलिष्ठ हृदय का स्पर्श पाकर अपना सब दुख-सन्ताप भूल गया है। तुम्हारी भुजाकी

माला गले में डाले मैं सोल्लास एक स्वर्गीय संगीत की तान पर थिरक रही हूँ।

तुम आगये मेरे प्रियतम ! मेरा हृदय आनन्द-विभोर हो नृत्य कर रहा है। मेरे पिपासित अधर तुम्हारा मधुर चुम्बन पाकर परम तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं और मैं तुम्हारे आलिंगन-पाश में बँधे एक अलौकिक सुख का अनुभव करते हुए अपने को तुम में विलीन पा रही हूँ।

× × ×

चन्द्रकान्त ने माधवन के नाम एक तार भेजा कि "कृतज्ञ हूँ। ईश्वर को धन्यवाद है।" उस रात को चन्द्रकान्त ने रंजनी के नाम निम्नलिखित पत्र लिखा—

रंजनी,

मेरी जन्म-जन्म की संगिनी, मेरी राधा ! मेरी मीरा ! रात्रि के इस प्रहर में संसार की सारी चिन्ताओं और चंचलताओं से मुक्त हो मैं तुझे अपने हृदय की प्रेमार्चना अर्पित करता हूँ। बीते हुए दिनों में एक रात ऐसे ही बैठकर मैंने हृदय के भाव ईश्वर को अर्पित किये थे। पर वे भाव शुष्क और आनन्द-रहित थे। वैसा करने में न उत्साह था, न उल्लास ! वह एक मात्र समय काटने के लिए था। आज इस कुटिया में पड़े-पड़े अर्ध-सुषुप्तावस्था में तेरे मंदस्मित सुकोमल मुसकान का दर्शन कर रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि क्या तुझ से बढ़कर मुझे ईश्वर प्राप्त हो सकता है।

तेरी आनन्ददायिनी स्मृति, तेरे हृदयहारी सौन्दर्य की मादकता, तेरे सुधामय प्रेम के आस्वादन एवं तेरे हृदय के वेदनापूर्ण मूक संगीत के सामने क्या मेरा लोक और परलोक और मेरे सहस्र जन्म निछावर कर देने योग्य नहीं हैं ?

तूने मेरे जीवन को एक नये रंग में रंग दिया है। मेरे हृदय

में प्रसन्नता भर दी है। मेरी आँखों में उल्लास उत्पन्न कर दिया है और मेरे शब्दों को प्रेममय बना दिया है।

क्या तुझे इस बात का अनुमान हो सकता है कि आज मेरे उठने और बैठने, मेरे चलने और फिरने, मेरे कार्यों और मेरे प्रयत्नों का क्या उद्देश्य हो गया है? आज मैं अपने को तुझ में विलीन पाकर हर घड़ी, हर जगह तेरे आनन्द का प्रसार कर रहा हूँ। तेरे सौन्दर्य का अभिनय कर रहा हूँ, और तेरे प्रेम का गीत गा रहा हूँ। भाई माधवन के तार और तेरे प्रेम-भरे पत्र पाकर आज मैं अपने को कितना भाग्यवान समझ रहा हूँ। हमारी जुदाई, विरह-व्यथा और प्रतीक्षा अब हमें एक सूत्र में हमेशा के लिए बाँधकर हम से विदा लेगी। ३१ अक्टूबर हमारे लिए धन्य होगा। उसके बाद हमारा अपना दिन होगा, अपनी रात होगी, तुम मेरी हो जाओगी और मैं तुम्हारा हो जाऊँगा। हम एक दूसरे को देखते हुए जगेंगे और एक दूसरे को देखते हुए सोयेंगे और दाम्पत्य-पाश में बँधे आनन्द-विभोर हो जायँगे।

प्रिय माधवन के पत्र का उत्तर मैंने भेज दिया है। तुम्हें मैं एक लम्बा पत्र लिखना चाहता था। पर हृदय के भाव अस्त-व्यस्त हैं। शब्द नहीं मिलते कि तुम को बता सकूँ कि आज मैं कितना आनन्दित हूँ। मैं तुम्हारे पास उड़कर पहुँच जाना चाहता हूँ। पर तुम्हारी इच्छा के अनुसार अपने को रोकूँगा और ३१ अक्टूबर को ही वहाँ हाजिर होऊँगा। लेकिन मैं एक बात चाहता हूँ। तुम अब प्रतिदिन एक पत्र भेजना। मैं भी भेजूँगा।

मंगलकामना सहित,

सदैव तुम्हारे ही ध्यान में —कान्त

× × ×

विवाह के निमन्त्रण-पत्र छापे गये और दोनों पक्षों के इष्ट-मित्रों के पास भेज दिये गये। चन्द्रकान्त ने सूर्यकान्त के पास

रंजनी के साथ विवाह निश्चित हो जाने की सूचना भेज दी, और माँ से आशीर्वाद माँगने को लिखा।

चन्द्रकान्त की माँ पुराने विचार की स्त्री थीं, वे चन्द्रकान्त से कई बार विवाह कर लेने का तकाज़ा कर चुकी थीं। चन्द्रकान्त जब कहता कि मेरा विवाह अपनी जाति में होगा और बहू तुम्हारे पास रहेगी, इसका निश्चय थोड़े ही है। तब माँ कहतीं, तुम किसी भी जाति में विवाह करो और बहू को अपने ही पास रखो, लेकिन मेरी ज़िन्दगी में विवाह करलो, मैं इतना ही चाहती हूँ। चन्द्रकान्त को चाचाजी से भी विरोध की आशंका नहीं थी क्योंकि वे चन्द्रकान्त के सुधार सम्बन्धी विचारों से काफ़ी परिचित हो चुके थे।

चन्द्रकान्त विवाह के एक दिन पूर्व ही एरणाकुलम पहुँच गया। और अपने मित्र चन्द्रहासन के यहाँ ठहरा। चन्द्रहासन और उसके घरवालों ने उसकी तरफ़ से वर-पक्ष की रस्में पूरी कीं। दूसरे दिन सायँकाल चन्द्रकान्त, चन्द्रहास और अपने अन्य मित्रों के साथ वर के रूप में वधु के घर गया। अहाते के द्वार पर वधु-पक्ष के लोगों ने वर और वर-पक्ष के लोगों का स्वागत किया। रीति के अनुसार वधु की छोटी बहन लक्ष्मी ने वर का पाद-प्रक्षालन किया। उसके बाद वर ने गृह में प्रवेश किया। निमन्त्रित स्त्री-पुरुष मण्डप में पहले ही से विराजमान थे। कुछ क्षण विश्राम के बाद वर को मण्डप में विवाह-वेदी के पास लाया गया जहाँ विलक्क (पीतल का बड़ा दीप) जल रहा था। ठीक मुहूर्त के समय स्त्रियाँ वधु को लेकर मण्डप में आईं। वर ने वधु को साड़ी भेंट की। माला और अँगूठी का आदान-प्रदान हुआ। और वाकिला (मंगल) ध्वनि हुई। दोनों ने तीन बार दीप की प्रदक्षिणा की और उसके बाद विवाह-कृत्य समाप्त होगया। पान-सुपारी और इत्र के वितरण के बाद भोज का कार्यक्रम था। किन्तु उसके पहले ही चन्द्रकान्त के

एक मित्र नारायण उठे और एक छपे कागज़ की प्रतियाँ उपस्थित स्त्री-पुरुषों में बाँटकर एक प्रति लेकर पढ़ने लगे। वह निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र था—

"प्रिय सुहृदवर !

आज आप जीवन के मंगल मंदिर में पदार्पण कर रहे हैं और पुरुषार्थ को साधने के लिए अपनी सहधर्मिणी को लेकर विश्व-रंग में उपस्थित हो रहे हैं। इस शुभ अवसर पर हम आपको बधाइयाँ देते हैं और हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करते हैं। आपने अपनी जीवन-नौका चलाने के लिए जिस स्त्री-रत्न का पाणिग्रहण किया है उससे हमारा दृढ़ विश्वास होगया है कि आप दोनों का सम्बन्ध प्रकृति व पुरुष जैसा सम्मिश्रित तथा प्रकाश व छाया जैसा अभेद्य रहेगा।

प्रिय बन्धु !

आप दोनों की विकसित शक्तियाँ देश व समाज के लिए आदर्श रहेंगी। हमें आप दोनों के सौजन्य व सौभाग्य का अभिमान है। आप दोनों का यह विवाह-संस्कार अनेक दृष्टियों से हिन्दू सम्प्रदाय के इतिहास में नया अध्याय खोल देता है और विवाह के उद्देश्य को पुष्ट व पूर्ण रूप में चरितार्थ कर देता है।

आप दोनों दम्पति चिरंजीवी हों, प्रेम, सुख व शान्ति आपकी सहचरी हो: यही प्रभु से हमारी प्रार्थना है।

इस अभिनन्दन पत्र को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मन्त्री और अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ताओं ने छपाकर मद्रास से भेजा था। चन्द्रकान्त और रंजनी के नाम जो बधाइयों और शुभकामनाओं के पत्र व तार आये थे, जिनमें सूर्यकान्त का भेजा माँ के आशीर्वाद का तार भी था, सब पढ़कर सुनाये गये। इस प्रकार चन्द्रकान्त और रंजनी पति-पत्नी के मधुर बन्धन में आबद्ध हो गये।

एरणाकुलम के हिन्दी-प्रेमियों और चन्द्रकान्त के पुराने विद्यार्थियों ने नव-दम्पति को चाय-पार्टी दी। उसके बाद चन्द्रकान्त रंजनी को लेकर ट्रिवेण्ड्रम चला गया। ट्रिवेड्रम के मित्रों ने भी नव-दम्पति का अभिनन्दन किया। दिसम्बर महीने में जब मद्रास में सभा का वार्षिक जलसा हुआ तब चन्द्रकान्त रंजनी के साथ उसमें शामिल होने मद्रास गया, और सब मित्रों से मिलकर उनकी शुभकामनाओं के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। कुछ ही महीने बाद दक्षिण भारत सभा ने अपनी ट्रावनकोर और कोचीन शाखाओं को मिलाकर केरलप्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा के रूप में पुनर्गठित किया और चन्द्रकान्त को प्रान्तीय मन्त्री के पद पर नियुक्त किया। चन्द्रकान्त ने केरलप्रान्तीय सभा का दफ्तर एरणाकुलम में, जो केरल के मध्य भाग में स्थित है, रखने का निश्चय किया, और अपना सदर मुकाम एरणाकुलम को बनाया।

माँ सुबोधपुर से मोतीहारी चली गई थीं। मोतीहारी में माँ के सामने पड़ोस की कुछ स्त्रियों ने ग्रेजुएट पुत्र-वधू के बारे में ऐसे विचार प्रकट किये कि उनके मन में तरह-तरह की आशंकायें पैदा हो गईं। स्त्रियों ने उनसे कहा कि "पढ़ी-लिखी लड़कियों का सिर आसमान पर चढ़ जाता है। वे बड़ी घमण्डी होती हैं। अपने हाथ से कोई काम नहीं करना चाहतीं। घर में किसी का आदर नहीं करतीं। सास की सेवा नहीं करतीं और हमेशा बनाव-ठनाव में लगी रहती हैं। आपकी पुत्र-वधू तो बी० ए० पास है। वह तो आपकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखेगी। माँ ने जवाब तो दे दिया कि मेरा बेटा ऐसी बहू घर में कभी नहीं लायेगा। फिर भी उनके मन में एक चिन्ता समा गई।

विवाह के अगले साल चन्द्रकान्त अकेले मोतीहारी गया। माँ को निराशा हुई कि वह बहू को लेकर नहीं आया।

वे बहू के स्वभाव और रहन-सहन के बारे में चन्द्रकान्त से बातें करतीं और उसे जल्दी देखने की इच्छा प्रकट करतीं। चन्द्रकान्त ने रंजनी के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए कहा कि वह स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हारा आशीर्वाद लेने के लिए बहुत आतुर है। अगली बार मैं उसे ज़रूर लाऊँगा।

× × ×

रंजनी जब पहले-पहल मोतीहारी गई तब घर पहुँचते ही चाचाजी के चरणों में सिर नवाया और माँ के चरण छूए। माँ और पुत्र-वधू की आँखें जब एक हुईं तब माँ के दिल का सारा खटका दूर हो गया। उन्होंने प्रेम से बहू को छाती से लगा लिया और घर में आनन्द छा गया। सूर्यकान्त स्टेशन पर ही जहाँ वह चन्द्रकान्त के पुराने मित्रों को लेकर स्वागतार्थ पहुँचा था, भाभी के चरण छूकर प्रणाम कर चुका था और बड़े उत्साह और सम्मान-पूर्वक उनका गृह-प्रवेश कराया था। घर में माँ और चाचाजी के अतिरिक्त स्वर्गीय सुनन्दा का छोटा लल्ला था। सुनन्दा और उसके पति एक साल का अन्तर देकर एक के बाद एक अकाल ही स्वर्ग सिधार चुके थे। लल्ला ने मामी के साथ तुरन्त आत्मीयता स्थापित कर ली।

रंजनी के घर में प्रवेश करने के बाद माँ ने पहला काम जो किया वह रंजनी के सिर को उसके आँचल से ढक देना था। जब बाहर की स्त्रियाँ बहू को देखने आने लगीं तब माँ ने रंजनी का मुँह भी घूँघट से ढक दिया, और रीति के अनुसार एक-एक को अपनी बहू का मुँह घूंघट उठाकर दिखाने लगीं और देखने वाली मुँह-दिखाई के तौर पर बहू को रुपये देती गईं।

देखने के लिए आनेवालियों में एक बूढ़ी भी थीं। उन्होंने यह कहते हुए कि नई बहू को इस तरह टीका जाता है, सिन्दूर लेकर माँग से नाक की छोर तक टीका दिया! केरलपुत्री रंजनी, पर्देवाले

रीति के अनुसार एक-एक को अपनी बहू का मुँह घूँघट उठाकर दिखाने लगी।

प्रान्त में आकर वहाँ के रस्मो-रिवाज का आनन्द लेने लगी। माँजी और चाचाजी को प्रसन्न रखने के लिए उसने सब कुछ करने का निश्चय कर लिया था। छुट्टियाँ खतम होने के बाद दोनों कोचीन चले गये।

× × ×

कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से श्री राजेन्द्र बाबू दक्षिण में भ्रमण करते समय जब कोचीन गये तब चन्द्रकान्त और रंजनी ने उनसे भेंट की। बाबू ने उन्हें बिहार जाकर स्त्री-शिक्षा का कुछ काम करने की सलाह दी। चन्द्रकान्त को वह सलाह बहुत पसन्द आई पर यह समझकर कि उस सलाहरूपी बीज का अंकुरित होना और पल्लवित-पुष्पित होना निकट भविष्य की बात नहीं है, उसने उसके बारे में विशेष कुछ नहीं सोचा। फिर भी उसके अन्तर्मन में यह विचार बराबर बना रहा।

अपना कार्यालय ट्रिवेण्ड्रम से उठाकर एरणाकुलम लाने के बाद उसके मन में उसे त्रिपूणितुरा में रखने का विचार उठा। त्रिपुणितुरा में कोचीन राज-परिवार के स्त्री-पुरुष और बच्चे एक बड़ी संख्या में रहते हैं। राज-परिवार के एक वयोवृद्ध तंपुरान (राजकुमार) से उसका पहले से ही परिचय था। श्रीमती लक्ष्मी कुट्टी नेतियारम्माजी हिन्दी प्रचार के काम में बड़ी दिलचस्पी लेती थीं। वे वहीं एक राजमहल में अपने तम्पुरान पति के साथ रहती थीं। चन्द्रकान्त ने राज-परिवार के लोगों में हिन्दी का प्रचार करने के लिए त्रिपूणितुरा में कार्यालय रखना उपयोगी समझा। रंजनी जिस स्कूल में अध्यापिका थी वह भी त्रिपूणितुरा में ही था। उस दृष्टि से भी त्रिपूणितुरा में रहना उसे अधिक सुविधाजनक मालूम हुआ। लेकिन त्रिपूणितुरा में उपयुक्त घर मिलना मुश्किल था। त्रिपूणितुरा एरणाकुलम से छः मील दूर एक छोटा-सा कस्बा है। राज-परिवार के लोगों के अलावा वहाँ

जो लोग रहते हैं वे सब वहाँ के स्थायी निवासी हैं। अतः किराये के लिए खाली मकान जल्दी नहीं मिलता। एक मित्र की सहायता से आखिर एक पुराना बेमरम्मत मकान मिला जिसे ठीक कराने पर चन्द्रकान्त और रंजनी जाकर उसमें रहने लगे।

कोचीन के राजपुरुष टीपू सुल्तान के ज़माने से उर्दू सीखा करते थे। उन्हें उर्दू सिखाने के लिए एक मुसलमान उर्दू मुंशी सपरिवार त्रिपूणितुरा में आकर बस गया था। पर अंग्रेज़ी का प्रभाव बढ़ जाने से नई पीढ़ी के लोगों ने उर्दू सीखना छोड़ दिया। किन्तु राज-परिवार की व्यवस्था में उर्दू मुंशी का जो पद था, वह हटाया नहीं गया था। चन्द्रकान्त ने त्रिपूणितुरा में राजकुमारों, राजकुमारियों, राजकुमारों की पत्नियों और उनके बच्चों के लिए हिन्दी वर्ग खोलकर स्वयं चलाना शुरू कर दिया। बाद में उर्दू मुंशी का पद हिन्दी पण्डित के पद में परिणत कराकर उस पर एक हिन्दी प्रचारक की नियुक्ति करा दी। उसके बाद राज-परिवार में हिन्दी का प्रचार तेज़ी से बढ़ने लगा। राजकुमारियों को कितने ही बन्धनों में रहना पड़ता था। उनकी दिलचस्पी का क्षेत्र बहुत संकुचित था। हिन्दी ने उनके क्षेत्र को कुछ व्यापक बना दिया और राजघराने की लड़कियों ने हिन्दी की ऊँची परीक्षाएँ पास करके बाद में केरलप्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा परिचालित हिन्दी विद्यालयों में, जिसमें सर्वसाधारण नवयुवक और नवयुवतियाँ दोनों आते थे, हिन्दी की शिक्षा देने लगीं।

× × ×

दक्षिण के हिन्दी प्रचार के इतिहास में दूसरा नया अध्याय तब शुरू हुआ जबकि पूज्य बापू के सान्निध्य में मद्रास शहर में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ। काकिनाड़ा सम्मेलन के १५ साल के बाद सम्मेलन का यह अधिवेशन हिन्दी प्रचार के परम् सहायक सेठ जमनालाल बजाज की अध्यक्षता

में हुआ। उस अधिवेशन में पहले-पहल यह प्रस्ताव पास हुआ कि हिन्दी के व्याकरण में ऐसे परिवर्तन कर देना वांछनीय है जिससे अहिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी सीखना सरल हो जाय। उस प्रस्ताव के प्रस्तावक हिन्दी के प्राण स्वयं बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। लेकिन सब को आश्चर्य हुआ जब श्री राजगोपालाचार्य उठकर उस प्रस्ताव के विरोध में बोले। उन्होंने कहा कि भाषा और व्याकरण में कोई परिवर्तन करने के लिए विद्वानों की मण्डली में प्रस्ताव पास करना गलत है।

उस सम्मेलन में चन्द्रकान्त की एक नये युवक से पहले-पहल भेंट हुई। वह भी बिहार का था। उसे देखते ही वह उसे एक छोटे भाई के तौर पर मानने लगा। सम्मेलन समाप्त होने के बाद अपने केन्द्र में पहुँचकर उस युवक ने चन्द्रकान्त को एक पत्र लिखा जो चन्द्रकान्त के बहुमूल्य पत्रों में एक पत्र बन गया। वह पत्र इस प्रकार था—

तेनाली

श्रद्धेयवर,

सादर नमस्ते। हृदय में एक अदृश्य शक्ति है, जो कभी-कभी मनुष्य के विवेक और अन्य बाधाओं की परवा न कर उसे कहीं का कहीं खींच ले जाती है। कभी-कभी इसका परिणाम बुरा भी होता है। उस समय हम उसे भावुकता कहकर बुरा कहते हैं। पर कभी-कभी उसका शुभ परिणाम भी होता है। मद्रास से चला तो सूना-सूना-सा लग रहा था या कुछ कमी-सी खटक रही थी। मालूम पड़ता था, मैं कुछ भूल आया हूँ जो मुझे बहुत प्रिय था। मैंने इस पर ध्यान नहीं दिया कि वह वस्तु क्या थी। दो-चार दिन बीत गये। फिर भी मैं नहीं सोच पाया कि वह क्या था। इतने में विद्या उधर से घूमकर पहुँची। मैंने समझा कि अब वह अभाव पूरा हो जायगा। पर वह स्थान

रिक्त-सा ही रहा। मैं सोच नहीं पाता था। एकाएक एक दिन मद्रास और सम्मेलन सम्बन्धी चर्चा शुरू हुई और विद्या कह उठी, "मुझे तो चन्द्रकान्त बहुत अच्छे लगे। पहली ही नज़र में उन्हें प्यार करने लगी।" मैंने उस प्यार शब्द पर परिहास भी किया। मगर वह बात एकाएक भूली स्मृति की तरह मेरे हृदय में लग गई। उस घाव पर उँगली पड़ गई जिसका पता मैं नहीं पा रहा था।

इस बार का मद्रास आना मैं इतने मात्र-से ही सफल मानता हूँ कि हमारा विशेष परिचय हो गया। परिचय नहीं, यह हल्का शब्द है, हम एक-दूसरे के बहुत नज़दीक आ गये। यह वाक्य कुछ-कुछ मेरे भाव को स्पष्ट करता है। मेरे मन में एक मधुर-स्मृति और आनन्द का एक द्वार और खुल गया। मैं पहले आपका वर्णन दूसरों के मुँह से सुनकर सोचता था कि आप विशुद्ध मद्रासी बन गये हैं। अर्थात् हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। पर इस बार मुझे ज्ञात हो गया कि नहीं, आप पूरे बिहारी अर्थात् सहृदय, सरस और सीधे-सादे हैं। मुझे असीम आनन्द हुआ। बाहर से मद्रासी होते हुए भी आप भीतर से बिहारी हैं। मेरा हृदय भर आया। मलाल रह गया कि कुछ दिन तक सम्मेलन और क्यों नहीं हुआ।

खैर, विद्या समयाभाव के कारण आपके यहाँ न जा सकीं, इसलिए उन्हें भी दुख है। उम्मीद है कि अगली बार हम और भी मिठास लेकर आयेंगे।

भावज से हम दोनों के मीठे नमस्कार कहेंगे।

आपका निकटतम,

ब्रजनन्दन

पुनश्च,

प्रिय भाई जी, एक साप्ताहिक में दक्षिण भारत के हिन्दी

प्रचार पर एक लेख निकला है। उसमें से कुछ पंक्तियों की नकल नीचे देता हूँ—

"चन्द्रकान्त

लेकिन हम जुगनुओं में अगर किसी को चमकते सितारे का पद मिला है तो वह चन्द्रकान्त को ही। मद्रास प्रदेश के कई प्रान्तों में बड़ी प्रतिष्ठा और प्रगति के साथ उन्होंने हिन्दी का प्रचार किया। वह युवक जहाँ गया, वहीं अपनी संस्कृति, साहित्यिकता और विचारोत्कृष्टता से शिष्ट समाज को मुग्ध करता गया। अध्यापन-कार्य में भी वह सफल रहा। आज कई वर्षों से वह केरल प्रान्त की हिन्दी प्रचार सभा का कर्णधार (मन्त्री) है। केन्द्रीय सभा के प्रधान मन्त्री पण्डित हरिहर शर्मा का इस व्यक्ति पर गम्भीर विश्वास एवं ममत्व का भाव रहा करता है।"

—साप्ताहिक 'विश्वमित्र'

× × ×

एक बार स्वामी सत्यदेव परिव्राजक दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार कार्य के निरीक्षणार्थ दक्षिण भारत गये। उन्होंने हिन्दी प्रचार सभा की तरफ से सब प्रान्तों का भ्रमण किया और सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दिये। केरल में उनके भ्रमण का कार्य-क्रम चन्द्रकान्त के जिम्मे था। चन्द्रकान्त कन्याकुमारी से लेकर कलिकट तक उनके साथ रहा। चन्द्रकान्त सभाओं में स्वामीजी का परिचय यह कहकर दिया करता था कि "स्वामीजी मेरे प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं, जिनका भाषण सुनकर मेरे मन में देश-सेवा की इच्छा पैदा हुई थी।" जब दक्षिण भारत में पहले-पहल हिन्दी प्रचार का काम शुरू हुआ तब देवदास गांधी की मदद के लिये महात्माजी ने स्वामी जी को भेजा था। और स्वामी जी ने अपने पवित्र हाथों से हिन्दी प्रचार का बीज बोया था। अब उस बीज को एक विशाल वृक्ष के रूप में समस्त दक्षिण

भारत में फैला देखकर स्वामीजी फूले नहीं समाये।

एरणाकुलम में स्वामी जी का शानदार स्वागत हुआ। स्वामी जी को चन्द्रकान्त के सुसराल वालों ने चाय-पार्टी दी। उस अवसर पर स्वामी जी ने चन्द्रकान्त और रंजनी से उनके घर-द्वार के बारे में पूछताछ की। जब उन्हें मालूम हुआ कि वे किराये का घर लेकर त्रिपूणितुरा में रहते हैं तब उन्होंने यह सम्मति दी कि दोनों को अपने लिए एक घर बनवा लेना चाहिए। और अपने बाग में पेड़-पौधे लगाने चाहिएँ। उन्होंने ज्वालापुर में स्थापित अपने आश्रम और अपने लगाये पौधों का प्रेम से ज़िक्र करते हुए कहा कि घर बना लेने में देर नहीं करनी चाहिए। रंजनी और चन्द्रकान्त ने त्रिपूणितुरा में एक ज़मीन कुछ समय पहले ही ले ली थी। स्वामी जी से प्रोत्साहित होकर उन्हें उस ज़मीन में एक छोटा मकान भी खड़ा कर देने की इच्छा हुई। पर उसके लिए काफ़ी पैसों की आवश्यकता थी, जिनका अभाव था।

चन्द्रकान्त रंजनी को लेकर दुबारा जब बिहार गया तब माँ ने यह इच्छा प्रकट की कि वे रामेश्वर आदि तीर्थ-स्थानों में जाना चाहती हैं। और कुछ दिन चन्द्रकान्त और रंजनी के साथ कोचीन में रहना चाहती हैं। चन्द्रकान्त ने कहा, "माँ, हमने ज़मीन तो ले ही ली है। अब जल्दी उसमें घर बनाने का उपाय करेंगे, तब तुम्हें लेजाने में हमें बड़ी खुशी होगी।" छुट्टी खतम हो जाने पर दोनों कोचीन चले गये। और मकान बनाने की तदबीर सोचने लगे। लेकिन मकान का नक्शा भी तैयार नहीं हुआ था कि मोतीहारी से चन्द्रकान्त के नाम सूर्यकान्त का भेजा तार मिला कि 'जल्दी आओ, माँ सख्त बीमार हैं।' चन्द्रकान्त अगले दिन ही ट्रेन से जाने को तैयार हो गया। लेकिन अगले दिन रवाना होने से पहले ही दूसरा तार मिला कि 'कल रात को माँ का स्वर्गवास हो गया!' चन्द्रकान्त और रंजनी शोकसागर

में डूब गये। पर बिहार तो जाना ही था। चन्द्रकान्त रंजनी को ढारस बँधाकर अकेले रवाना हो गया। पाँचवें दिन मोतीहारी पहुँचा। पिछले साल जब माँ के कोचीन जाने की बात उठी थी तब सूर्यकान्त ने कहा था कि माँ के दो टुकड़े करने होंगे। एक भइया के लिए और दूसरा मेरे लिए। माँ का वह दुलारा बेटा अब माँ को सदा के लिए खोकर अनाथ-सा हो गया था। जब चन्द्रकान्त ने घर में प्रवेश किया और सूर्यकान्त जहाँ पड़ा था वहाँ पहुँचा तब सूर्यकान्त रोते-रोते उसके पैरों पर पड़ गया और दुख और शोक के आवेग से मूर्छित हो गया। जब वह होश में लाया गया तब उसने रोते-रोते माँ के अन्तिम समय की एक-एक बात सुनाई। उसने कहा कि "माँ आखिर तक कहती रहीं कि बहू और बबुआ को नहीं देख सकूँगी।" सामने दीवार पर श्रीकृष्ण भगवान् का जो चित्र टँगा था बराबर उसी पर उसका ध्यान जमा रहा। आप लोगों को आशीर्वाद देते हुए वे शान्ति से सिधार गईं। यहाँ के सब बड़े डाक्टरों को दिखाया पर कोई उन्हें बचा न सका।"—कहते-कहते सूर्यकान्त फिर फूट-फूट कर रोने लगा। चन्द्रकान्त अपना सारा बल संग्रह कर अपने आँसुओं को रोके रहा, और सूर्यकान्त को शान्त करता रहा। किन्तु जैसे ही उसने अपने को ज़रा एकान्त में पाया कि बच्चों की तरह सिसक-सिसक कर रोया। पिछले बीस साल में छुट्टियों के दिनों में मोतीहारी जाकर मुश्किल से उसने ८-१० माह माँ के साथ बिताये थे। वह उन्हें दक्षिण भारत ले जाकर कुछ दिन अपने साथ रखने की बात सोच रहा था। माँ को भी कुछ दिन उसके साथ रहने की इच्छा थी। पर दोनों की वह इच्छा पूरी नहीं हुई। चन्द्रकान्त अपनी माँ को भगवान् का ही रूप मानता था जिसका ध्यान और स्मरण करने से उसे शान्ति और शक्ति मिलती थी, जिनको अपने पास न पाकर उसने अनेकों बार विह्वल हो आँसू बहाये थे। उस माँ को

एकाएक खो देने से उसके दिल को गहरा धक्का लगा। अन्तिम समय में भी वह माँ के पास नहीं रहा, यह बात उसे और भी दुखी बनाने वाली थी।

आर्यसमाजी विचार का होने के कारण वह स्वयं श्राद्ध आदि में विश्वास नहीं रखता था। तथापि चाचाजी ने जो जो कहा, वह करता गया। अन्तिम दिन पण्डित के कहने से वह श्राद्ध और पिण्डदान के लिए सूर्यकान्त के साथ बैठ गया। पण्डित जब मन्त्रों का पाठ करते हुए पितरों के नाम पर आहुतियाँ दिलवाने लगे तो चन्द्रकान्त को ऐसा लगा मानो पितरों की आत्माएँ स्वर्ग से आकर उस स्थल पर मँडरा रही हों।

कुछ सप्ताह मोतीहारी में ठहरकर चन्द्रकान्त कोचीन चला गया। वहाँ जाने पर मकान बनाने की बात पर फिर विचार होने लगा। चन्द्रकान्त के एक मित्र ने उसमें इतनी दिलचस्पी ली कि उसने मकान बनवाने का स्वयं प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। कुछ रुपये भी उधार के तौर पर लगा दिये। फिर एक 'कुरी' में शामिल होकर १० साल में चुकाने की शर्त पर एक बैंक से रुपये लिये गये और मकान बनाने का काम शुरू होने लगा। एक पैसा भी पहले से पास में जमा न रहने पर भी मकान बनकर तैयार हो गया। बड़े प्रेम से हमने उसका नाम 'बिहार-बाग़' रखा। अहाते में पहले ही से कुछ नारियल के पेड़ थे। 'बिहार-बाग़' में गृह-प्रवेश हो जाने के बाद आम, कटहल आदि फलों के पेड़ लगाये गये। क्रोटन के गमले रखे गये। फूलों की क्यारियाँ बनाकर उनमें फूल लगाये गये। और 'बिहार-बाग़' बिहार का उद्यान बन गया। गुलाब और बेले की सुन्दरता और सुगन्ध ने 'बिहार-बाग़' को एक मनोरम स्थान बना दिया।

गृह-प्रवेश के बाद चन्द्रकान्त और रंजनी मुश्किल से चार-पाँच महीने अपने नये मकान में रहे होंगे कि सभा के प्रधान मन्त्री

से सूचना मिली कि सभा की कार्यकारिणी समिति ने उसे सभा के प्रचार-मन्त्री के पद पर नियुक्त करने का प्रस्ताव पास किया है। केरल के कार्य-भार से निवृत्त होकर उसे मद्रास को अपना सुन्दर मुक़ाम बनाना होगा। पहले चन्द्रकान्त के मन में यह विचार उठा कि वह अपनी पारिवारिक कठिनाइयाँ बताकर उस नियुक्ति से मुक्त किये जाने के लिए प्रार्थना-पत्र लिखकर प्रधान मन्त्री के पास भेज दे। क्योंकि उसके मद्रास जाने से रंजनी को त्रिपूणितुरा में अकेले रहना पड़ता। फिर उसने सोचा कि सभा उसे नया कार्य-भार ग्रहण करने के लिए बुलाती है तब व्यक्तिगत असुविधाओं के कारण उससे मुक्त किये जाने के लिए उसका लिखना कहाँ तक उचित होगा? विशेषकर जब कि उस प्रस्ताव का सम्बन्ध एक दूसरे प्रस्ताव से है जिसके अनुसार किसी कार्यकर्ता को एक पद पर पाँच साल से अधिक लगातार नहीं रहना चाहिए। उसने रंजनी के साथ परामर्श करके निश्चय किया कि कर्तव्य की पुकार के सामने वह व्यक्तिगत सुविधा-असुविधा की बात नहीं उठायेगा और मद्रास को लिख दिया कि वह मद्रास आने को तैयार है। उसे ऐसा लगा कि उसके मद्रास जाने का कार्यक्रम रद्द नहीं होना चाहिए। इसलिए उसने तार भेजकर निश्चय करा लिया कि क्या यह निर्णय अन्तिम है? मद्रास से उत्तर आ जाने पर वह केरल के एक सीनियर प्रचारक को चार्ज देकर मद्रास चला गया।

प्रचार मन्त्री के तौर पर उसने तमिलनाड, कर्नाटक और आन्ध्र में भ्रमण किया और मुख्य-मुख्य हिन्दी केन्द्रों में जाकर हिन्दी प्रचारकों के कार्य का निरीक्षण किया, सभाओं में भाषण दिये और हिन्दी प्रचार कार्य के लिए धन-संग्रह का काम किया। तमिलनाड और कर्नाटक के उन केन्द्रों में जहाँ वह स्वयं वर्षों पहले एक प्रचारक के तौर पर काम कर चुका था उसके कुछ पुराने विद्यार्थी और मित्र मिले। प्रत्येक केन्द्र में हिन्दी प्रचार का

काम काफी बढ़ गया था और हिन्दी सीखने वालों की संख्या कई गुनी हो गई थी। उस भ्रमण में उसे केरल के बाद आन्ध्र प्रदेश ही उसे ऐसा प्रदेश मालूम हुआ जहाँ गाँव-गाँव मे हिन्दी प्रचार का काम हो रहा था। आन्ध्र के गाँव के लोगां में, विशेषकर नवयुवकों में और प्रदेशों की अपेक्षा अधिक जागृति थी।

आन्ध्र प्रदेश के भ्रमण में जब वह मछलीपट्टम पहुँचा तब सब से पहले वह डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या से भेंट करने उनके घर गया। डाक्टर साहब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के एक उपप्रधान थे। जब चन्द्रकान्त उनके यहाँ पहुँचा तब वह बम्बई जाने के लिए तैयार हो रहे थे। फिर भी दस-पन्द्रह मिनट उन्होंने चन्द्रकान्त को दिये। उनसे मालूम हुआ किबम्बई में अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी की जो बैठक होने जा रही है वह बहुत महत्त्वपूर्ण होगी। क्रिप्स-मिशन फेल हो चुका था। महात्माजी 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' की माँग बुलन्द कर चुके थे। देश के राजनीतिक पत्रों में चारों तरफ बड़ी सनसनी फैली हुई थी। चन्द्रकान्त के भ्रमण का कार्यक्रम पूरा करके मद्रास लौटने के चार दिन बाद अखबारों में निकला कि अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी ने महात्मा गांधी का 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास कर दिया है। प्रस्ताव में कहा गया था—"भारत में ब्रिटिश शासन का भारत और साथी राष्ट्रों की आदर्श-पूर्ति के लिए तुरन्त अन्त हो जाना चाहिए।" इस हुकूमत का कायम रहना भारत की प्रतिष्ठा घटाता है और उसे क़मजोर बनाता है, और अपने बचाव करने तथा दुनिया की आज़ादी के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी ताकत में क्रमशः कमी पैदा करता है।—इसलिए यह कमिटी पूरे आग्रह के साथ हिन्दुस्तान से अंग्रेज़ी सत्ता हटा लेने की माँग दुहराती है।"

उन दिनों द्वितीय महायुद्ध ज़ोरों पर था। काँग्रेस और सरकार

के बीच समझौते की सब कोशिशें विफल हो चुकी थीं। ऐसे समय में कॉंग्रेस ने उस प्रस्ताव को पास करके महात्माजी की माँग को समस्त देश का माँग बना लिया। प्रस्ताव पास होने के बाद गांधीजी और तमाम बड़े-बड़े नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। सरकार पहले से ही अपनी पूरी तैयारी कर चुकी थी। देश में हर जगह गिरफ़्तारियाँ हुईं। नेताओं की गिरफ़्तारी के साथ सारे देश में एक क्रान्ति की-सी स्थिति पैदा हो गई। "करेंगे या मरेंगे" की आवाज़ चारों तरफ़ सुनाई देने लगी। जिसने जैसा उचित समझा उसी तरीके से भारत में ब्रिटिश सल्तनत का अन्त कर देने का काम किया। सरकारी दफ़्तरों को जलाना, रेलवे पुल तोड़ना, तार काटना, ट्रेन जलाना आदि तोड़-फोड़ के काम सारे देश में होने लगे जिससे सरकार का सारा काम ठप्प हो जाय। सरकार तो तैयार थी ही। आज़ादी की माँग करने वाली जनता को भय, दमन और जुर्म से कुचल देने में उसने अपनी पूरी ताकत लगा दी।

१९२० में असहयोग-आन्दोलन शुरू होने के समय देश में जैसी जागृति पैदा हो गई थी या नमक-सत्याग्रह के समय देश को आज़ाद करने की भावना से देश का वायुमण्डल जैसा अनुप्राणित हो गया था उसी से मिलती-जुलती, नहीं—उससे भी अधिक उत्तेजनापूर्ण हालत १९४२ में पैदा हो गई। फ़र्क इतना था कि १९४२ में सब नेतागण पहले ही जेलों में डाल दिये गये। चन्द्रकान्त राजनीतिक कार्यों से अलग रहकर सिर्फ़ रचनात्मक कार्य करने में शुरू से लगा था। उसने पिछले बीस सालों में सिर्फ़ दो राजनीतिक सभाओं में भाषण दिये थे। पहली बार १९२२ में जब महात्माजी को सरकार ने गिरफ़्तार किया और दूसरी बार १९३० में जब महात्माजी नमक-सत्याग्रह के सिलसिले में दुबारा गिरफ़्तार किये गये। हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ताओं

में जोश उमड़ आया। कई कार्यकर्ता आन्दोलन में पड़ने की बात करने लगे। राजा जी को जब इसकी खबर लगी तब उन्होंने सभा के उपाध्यक्ष और डायरेक्टर की हैसियत से आदेश निकाला कि सभा का कोई कार्यकर्ता अगर आन्दोलन में भाग लेना चाहता है तो उसे पहले सभा से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए।

बहुत हृदय-मंथन के पश्चात् चन्द्रकान्त ने सभा से इस्तीफ़ा देकर आन्दोलन में भाग लेने का विचार किया। वह अपना विचार लेकर एक अन्य सहयोगी के साथ राजा जी के पास गया और उनसे आशीर्वाद माँगा। दोनों में निम्न बातें हुईं। राजा जी ने कहा—

"मैं तो इस आन्दोलन को ग़लत मानता हूँ, और इसके विरुद्ध हूँ। तब आशीर्वाद कैसे दे सकता हूँ?"

"यह देश का दुर्भाग्य है कि इस बार आपका मार्ग-दर्शन देश को नहीं मिल रहा है। पर आप हिन्दी प्रचार परिवार के मुखिया हैं। उसी के नाते आपके आशीर्वाद के लिए मैं आपके पास आया हूँ। आजतक मैं क्रियात्मक राजनीति से अलग रहा हूँ। पर यह आज़ादी का अन्तिम युद्ध है। इसमें शामिल हुए बग़ैर मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।"

राजा जी ने कहा, "मुसलमानों को साथ लिये बिना सरकार से युद्ध छेड़ देना विवेकशून्य कार्य है।"

"लेकिन मुस्लिम लीग तो ऐसी शर्तें रख रही है जिन्हें काँग्रेस के लिए मानना नामुमकिन है," चन्द्रकान्त ने कहा।

"मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग मान लेनी चाहिए। पाकिस्तान महज़ एक भूत है। उसे मान लेने से यह आपसे आप काफ़ूर हो जायगा," उन्होंने जवाब दिया।

चन्द्रकान्त ने कहा, "आपका तर्क शायद सोलहों आना ठीक हो। किन्तु जीवन सिर्फ़ तर्क से परिचालित नहीं होता। इस

सम्बन्ध में उत्तर भारत के हिन्दुओं की भावनाओं की आप ठीक-ठीक कल्पना नहीं कर सकते। वे पाकिस्तान की मांग को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते।

"मैं जानता हूँ। इसलिए मैं कॉंग्रेस से अलग हो गया हूँ," उन्होंने जवाब दिया।

"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं कर्तव्य-बुद्धि से इस आन्दोलन में अपनी तुच्छ सेवाएँ अर्पित करना चाहता हूँ।"

राजाजी ने अन्त में कहा "तुम्हारी तन्दुरुस्ती और कुशलता के लिए मैं आशीर्वाद देता हूँ और यह सलाह भी देता हूँ कि 'अण्डर ग्राउण्ड' काम से अपने को अलग रखना।"

चन्द्रकान्त उनसे विदा लेकर उनके एक-एक शब्द पर विचार करता हुआ चला आया और इस्तीफ़ा लिखकर सभा के प्रधान मन्त्री को दे दिया। सहयोगियों ने एक छोटी सभा करके चन्द्रकान्त को विदाई दी। उसके बाद चन्द्रकान्त अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के एक कार्यकर्त्ता श्री नन्दकियोलियर जी से मिला जो मद्रास से गुप्त रूप में दक्षिण भारत के आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। चन्द्रकान्त केरल में कुछ संगठनात्मक काम करना चाहता था। नन्दकियोलियर जी से सलाह-मशविरा करके वह मद्रास से केरल के लिए रवाना हो गया। सबसे पहले वह त्रिपुणितुरा गया और सारी बातें रंजनी को कह सुनाई। रंजनी ने कोई विरोध प्रकट नहीं किया। चन्द्रकान्त रंजनी से विदा लेकर प्रसन्न भाव से जीवन की नई पगडण्डी पर चल पड़ा।

उसने सबसे पहले केरल के मुख्य-मुख्य शहरों में जाकर राजनीतिक नेताओं से भेंट की और नन्दकियोलियर जी का सन्देश उन्हें दिया। उसके बाद कलिकट को अपना केन्द्र बनाकर वहाँ विद्यार्थियों का जो आन्दोलन चल रहा था उसे मज़बूत बनाने के काम में लग गया। विद्यार्थियों के संगठन के साथ-साथ वह मज़दूरों

के संगठन में भी भाग लेने लगा । एक बार रात के दस बजे उसने एक मज़दूर सभा में भाषण दिया । उसके हिन्दी भाषण का अनुवाद मलयालम में वहाँ के एक हिन्दी प्रचारक ने किया। दूसरे दिन कलिकट के कई परिचित सज्जनों ने उसे पूछा, "कलिकट में अच्युत पटवर्धन आये हुए हैं । कल रात उनका भाषण हुआ। आपको कुछ ख़बर है ?" उसने जवाब दिया, "मैं तो आप ही से यह बात सुन रहा हूँ।"

केरल में समाजवादी कार्यकर्ताओं में अधिक उत्साह था। वे हमेशा तोड़-फोड़ की योजनाएँ बनाया करते थे। किन्तु उस दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी। चन्द्रकान्त को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दो ही महीनों के भीतर आन्दोलन ठण्डा पड़ने लगा। आन्दोलन में कुछ नई जान डालने के लिए उसने सार्वजनिक रूप से १४४ धारा का जो हर बड़े शहर में लगाई गई थी, उल्लंघन करके गिरफ़्तार हो जाने का निश्चय किया । इस कार्य के लिए उसने पालघाट चुना। वहाँ जाकर वहाँ के प्रचारक केशव नायर के यहाँ ठहरा और आगे के कार्यक्रम के बारे में विचार-विनिमय होने लगा।

उन्हीं दिनों उसे सूर्यकान्त का एक पत्र मिला। रंजनी ने उसे त्रिपूणितुरा से उसके पास पुनर्चालित कर दिया था। उस पत्र को पढ़कर चन्द्रकान्त बहुत उद्विग्न हो गया। सूर्यकान्त का मोतीहारी में एक पड़ोसी के साथ मुंसिफ़ी और फ़ौजदारी झगड़ा चल रहा था। उसका रूप दिनों-दिन बहुत विकृत होता जा रहा था। ख़ून-ख़राबी हो जाने की नौबत आ गई । चन्द्रकान्त बड़े पशोपेश में पड़ गया कि उसे क्या करना चाहिए । एक तरफ़ सभा से इस्तीफ़ा देकर आज़ादी की अन्तिम लड़ाई में भाग लेने का संकल्प, दूसरी तरफ़ मोतीहारी में भाई पर संकट । उसने केशव नायर से परामर्श किया। केशव नायर ने उसे मोतीहारी

पहुँचकर स्थिति सुधारने की सलाह दी। चन्द्रकान्त ने उनसे कुछ रुपये उधार लिये और बिहार के लिए रवाना हो गया। जब वह मद्रास के सेण्ट्रल स्टेशन पर पहुँचा तब अचानक प्लेटफार्म पर राजा जी से भेंट हो गई। वे बड़ी जल्दी में थे तब भी उससे दो मिनिट तक बातें कीं। उन्होंने कहा, "बिहार से लौटने पर फिर सभा के काम में लग जाना।" राजा जी के उस बुलावे में कितना कृपा-भाव था। उससे हर्षित होकर चन्द्रकान्त ने आगे की अपनी यात्रा शुरू की। उसके मोतीहारी पहुँचते ही कुछ ऐसी हवा बदली कि मुंसिफ़ी और फौजदारी के मुकदमे में एक के बाद एक सूर्यकान्त जीत गया। दो-तीन महीने तक चन्द्रकान्त मोतीहारी में रुका रहा। उसके बाद वह निश्चिन्त हो दक्षिण भारत को लौट गया, और फिर केरलप्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा के मन्त्री के स्थान पर नियुक्त होकर काम करने लगा। लेकिन वह बहुत प्रसन्न नहीं था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह लड़ाई के मैदान से भागा हुआ एक सिपाही है। वह अपने मन में एक खीझ का भाव लिये पूर्ववत् काम करने लगा।

१९४२ का आन्दोलन तुरन्त सफल तो नहीं हुआ पर उससे ब्रिटिश सल्तनत का पाया हिल गया। माता कस्तूरबा गान्धी का आगाखाँ महल में, जहाँ वे महात्माजी के साथ क़ैद थीं, देहान्त हो गया। कस्तूरबा का स्मारक बनाने के लिए सारे देश में बड़े उत्साह से धन-संग्रह का काम किया गया। और जब महात्मा गान्धी रिहा हुए तब संग्रहीत निधि उन्हें भेंट की गई, और गान्धीजी से उस निधि के उपयोग के लिए एक योजना बनाने की प्रार्थना की गई।

चन्द्रकान्त हिन्दी प्रचार सभा की कार्यकारिणी समिति की एक बैठक के लिए मद्रास गया हुआ था। एक दिन उसने मद्रास के 'हिन्दू' पत्र में कस्तूरबा-गान्धी स्मारक निधि के कार्य के

सम्बन्ध में महात्माजी का एक वक्तव्य पढ़ा । उसमें कहा गया था कि कस्तूरबा का सच्चा स्मारक भारत के गाँवों की स्त्रियों और बच्चों को स्वस्थ, स्वावलम्बी और शिक्षित बनाने वाला काम ही हो सकता है। चन्द्रकान्त ने उस वक्तव्य को बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा। वह रात भर उसके बारे में सोचता रहा । उसे बाबू राजेन्द्रप्रसाद की वह सलाह याद आई जो उन्होंने उसे और रंजनी को कई साल पहले दी थी कि तुम लोगों को बिहार में स्त्रीशिक्षा का काम करना चाहिए। चन्द्रकान्त के मन में यह प्रश्न बार-बार उठने लगा कि क्या वह समय आ गया है जब उसे अपनी पत्नी के साथ अपने प्रान्त में जाकर एक नये सेवा-क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर उसने महात्माजी को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें उनसे आज्ञा माँगी कि उसे अपनी पत्नी के साथ बिहार में कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट के अधीन काम करने का अवसर दिया जाय । पत्र डाक में छोड़ देने के बाद उसने उसके बारे में अपने मित्रों से बातें कीं।

अपने नये विचारों में डूबता-उतराता त्रिपूणितुरा वापिस जाकर रंजनी को उसने अपने नये विचार सुनाये। रंजनी उसकी बातें सुनकर हक्का-बक्का हो गई। उसके चेहरे पर विस्मय और निराशा के बादल छा गये । चन्द्रकान्त बिहार जाकर कुछ काम करने के सुन्दर विचारों में इतना तन्मय हो गया था कि उसने रंजनी की दृष्टि से कुछ सोचा ही नहीं । रजनी अपना प्रदेश, बन्धु-बान्धव, स्कूल का काम और सुन्दर 'बिहार-बाग' छोड़ना पसन्द करेगी कि नहीं, इसका उसने कुछ विचार ही नहीं किया। केरल की तुलना में बिहार का जीवन और गर्ल्स हाई स्कूल की अंग्रेजी अध्यापिका के काम के बदले बिहार के गाँव की स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा का काम रंजनी के लिए अनुकूल होगा कि नहीं यह सब विचार उसके मन में उठे ही नहीं। अब

वह रंजनी के सामने अपनी नई योजना रखकर उसका जवाब क्या होगा, यह जानने के लिए व्यग्र हो गया। वह रंजनी के मुँह से जल्दी कुछ सुनने के लिए आतुर हो उठा। वह रंजनी से कुछ अनुकूल उत्तर पाने के लिए कुछ तर्क प्रस्तुत करने लगा। रंजनी बिना कुछ बोले चुपचाप सुनती रही। उसके दिमाग़ में एक ज़बरदस्त संघर्ष हो रहा था। रंजनी की आँखें सजल हो गई थीं। और उसके मुँह से सिर्फ़ एक वाक्य निकला "जैसी आपकी इच्छा"। रंजनी ने एक तरह से स्वीकृति दे तो दी पर यह स्पष्ट था कि वह वाक्य उसके हृदय से स्वेच्छापूर्वक नहीं निकला था। चन्द्रकान्त बहुत उदास हो गया।

दो-चार दिन के बाद वर्धा से बापू के प्राइवेट सेक्रेटरी का लिखा चन्द्रकान्त को अपने पत्र का उत्तर मिला। उसमें सिर्फ़ इतना लिखा था कि "हिन्दी प्रचार का कार्य बहुत आवश्यक है। आप जो काम कर रहे हैं उसे न छोड़िये। बापू की यही इच्छा है।" चन्द्रकान्त बहुत असमंजस में पड़ गया। लेकिन वह अपने निश्चय में बहुत आगे बढ़ चुका था। वह अब पश्चातपद नहीं हो सकता था। उसने महात्माजी को लिखा—ऐसा लगता है कि बिहार मुझे बुला रहा है। अब रुकना बहुत मुश्किल हो गया है। सिर्फ़ आशीर्वाद के लिए प्रार्थना है।"

एक दिन लक्ष्मी बाबू का एक पत्र चन्द्रकान्त को मिला जिसमें लिखा था कि राजा जी के द्वारा बापू के नाम भेजा आपका पत्र देखा। अगर आपने बिहार आने का निश्चय कर लिया है तो जल्दी चले आइये। लक्ष्मी बाबू बिहार में रचनात्मक कार्यों के नेता थे। उनके निमन्त्रण के बाद बिहार जाने के बारे में चन्द्रकान्त के मन में किसी तरह का संशय नहीं रह गया। रंजनी ने भी अपने मन को तैयार कर लिया और पति-पत्नी बिहार जाकर वहाँ काम के लिए प्रस्थान करने की तैयारी में लग गये।

चन्द्रकान्त दक्षिण भारत में दक्षिणी होकर रहा था। उसके जीवन के अधिकांश भाग को दक्षिण भारत की मिट्टी, हवा और अन्न से परवरिश मिली। और उसके हृदय और मस्तिष्क पर दक्षिणी संस्कृति और विचारों की गहरी छाप पड़ी। उस लम्बी अवधि में वह सहस्रों के सम्पर्क में आया और अनेकों को अपना विद्यार्थी और मित्र बनाया। अब दक्षिण भारत से बिदा होते समय अन्तिम समय में उसे जो-जो बातें स्मरण हो रही थीं उनमें एक थी कल्डैकुरिया के कैलासम की याद। और दूसरी थी श्याम (जमुनाप्रसाद) की याद। ये दोनों उम्र में उससे कुछ छोटे थे। उसके जीवन में उन दोनों को बालसखा के जैसा स्थान प्राप्त हो गया था। कैलासम के साथ बीच-बीच में भेंट होती रही थी। पर श्याम से उसके दक्षिण छोड़ने के बाद दुबारा भेंट नहीं हुई। वह दक्षिण से विदा होकर आसाम में हिन्दी प्रचार कार्य के लिए चला गया था। और आगे भी भेंट होने वाली थी। क्योंकि कुछ समय पहले वह अकाल ही काल का ग्रास हो गया।

किन्तु उसके प्रेम और स्नेह की स्मृति चन्द्रकान्त के हृदय में सदा के लिए अंकित हो गई थी। चन्द्रकान्त जब उसके बारे में सोचता तब विह्वल हो जाता था। मरने के कुछ ही समय पहले श्याम ने उसे एक पत्र भेजा था। उसमें उसने अपने दूसरे लोक में मिलने की बात लिखी थी। वह बात इतनी जल्द फलीभूत होगी यह कौन कह सकता था। चन्द्रकान्त ने उस होनहार, निष्कपट और स्नेहपूर्ण हृदय वाले बन्धु के अन्तिम पत्र को एक धरोहर के तौर पर अपने पास रखा। जिसे उसने गौहाटी से भेजा था। वह यों था—

भाई साहिब, गौहाटी

न जाने शिथिलता किस ओर है! जिस के सहारे जीवन-

पथ पर चलना सीखा, दौड़ना सीखा, गिर-गिर कर सँभलना सीखा, वह मेरी याद भले ही न करे, किन्तु मैं उसे भुला नहीं सकता। उसे भूल जाना अपने को भूल जाना होगा। एक के बाद एक, न जाने कितने वर्ष व्यतीत हो गये, न जाने कितने संसार बने और बिगड़े। बसे और उजड़े। किन्तु मेरी कुटिया में वह स्मृति-दीप आज भी अपने पूरे वैभव के साथ जल रहा है। जीवन का सम्बल लेकर उसी के प्रकाश के सहारे क़दम-क़दम पर बढ़ता जा रहा हूँ। उसके स्नेहमय दिव्यतम प्यार का आलोक मेरे लोक को आलोकित करता रहता है। अमा की उस भयावनी अँधियारी में जब मैं इधर-उधर अपना मार्ग टटोल रहा था तब उसी के स्निग्ध-प्रकाश में रास्ते लगा था। वह दीप, प्यारा दीप बुझ नहीं सकता। उसके बुझने पर मैं कहीं का नहीं रहूँगा। अतः वह जलेगा, मेरे जीवन के साथ जलेगा, और जलेगा मेरे जीवन के अवसान तक।

आपको लिखने की बात न जाने कब से सोच रहा था। आज-कल करते ढेरों दिन लद गये। मद्रास के पदवी-दान सभारम्भ में और प्रचारक सम्मेलन का आमन्त्रण पाकर तबीयत फड़क उठी। मद्रास के वे सभी नाटकीय दृश्य जो आज होने जा रहे हैं चलचित्र की भाँति आँखों के सामने चलने लगे। सोचा आप आयेंगे ही। बचे-खुचे परिचित प्रचारकों में से सभी एकत्र होंगे ही। मैं भी ऐसे अवसर पर क्यों न पहुँचूँ? सशरीर न सही सूक्ष्म रूप से ही सही। और न सही कुछ क्षण के लिए ही सही, उस नटखट श्याम को याद तो कर लेंगे। कौन जाने हम कभी फिर मिल सकेंगे या नहीं। मिलेंगे ज़रूर। यहाँ न सही तो फिर वहाँ।

कहिये, और सब अच्छे हैं न! भाभी अच्छी हैं न! आनन्द से जीवन व्यतीत हो रहा होगा। मेरी आप क्या पूछते हैं?

स्वस्थ हूँ, प्रसन्न हूँ, जंगलों और पहाड़ों की सैर कर रहा हूँ। अभी एक महीने की छुट्टी मनाकर घर से लौटा हूँ। बीबी-बच्चे सही-सलामत हैं। घर-बाहर सब सुमंगल ही है।······अच्छा अब मुलाकत हो गई, अब आपकी मर्ज़ी।

—श्याम

× × ×

दक्षिण से बिदा होने के पहले केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा के कुछ कार्यकर्ताओं के कारण चन्द्रकान्त को एक अप्रिय कार्य करने पर बाध्य होना पड़ा। हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ने के कारण स्कूल-कालेजों में हिन्दी पण्डितों की नियुक्तियाँ होने लगी थीं। प्रान्तीय सभा के कुछ प्रमुख कार्यकर्ताओं ने सभा से अनुमति लिये बिना ही सभा की सेवा में रहते हुए अन्य संस्थाओं में नौकरियाँ स्वीकार कर लीं। चन्द्रकान्त ने मन्त्री की हैसियत से ऐसे कार्यकर्ताओं से स्पष्टीकरण माँगा और उसे सन्तोषजनक न पाकर उनको कार्यकारिणी समिति के निर्णय होने तक कार्य से निवृत कर दिया। उधर उन कार्यकर्ताओं ने सभा के अध्यक्ष के पास मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भेज दिया। 'ससपेनशन' और 'अविश्वास' प्रस्ताव, दोनों पर विचार करने के लिये कार्यकारिणी की बैठक बुबाई गयी। पहले 'ससपेनशन' का प्रस्ताव लिया गया। गरमागरम बहस होने के बाद यह प्रस्ताव पास हुआ है कि जिन कार्यकर्ताओं ने अन्यत्र नौकरी स्वीकार कर ली है वे १५ दिन के भीतर अपना निर्णय भेज दें कि वे सभा की नौकरी में रहना चाहते हैं या नहीं। सभा की नौकरी में रहने की हालत में उन्हें अपनी नई नियुक्ति से तुरन्त इस्तीफ़ा दे देना होगा। अन्यथा वे सभा की नौकरी से अन्यत्र नियुक्ति स्वीकार करने की तारीख से निवृत माने जायँगे। उक्त

प्रस्ताव पास हो जाने पर मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव गिर गया। लेकिन चन्द्रकान्त को बहुत दुख हुआ कि केरल के हिन्दी प्रचार कार्य से अलग होने के अवसर पर अप्रत्याशित रूप से ऐसा एक अप्रिय काण्ड हो गया और पुराने सहयोगियों का उसे कोप-भाजन बनना पड़ा।

× × ×

चन्द्रकान्त और रंजनी की विदाई के सम्बन्ध में जो कार्यक्रम रखे गये उनमें त्रिपूणितुरा गर्ल्स हाई स्कूल का कार्यक्रम बड़ा हृदयस्पर्शी था। रंजनी ने प्रथम नियुक्ति के दिन से लगातार १८ वर्ष उस स्कूल में काम किया था। स्कूल की हेडमिस्ट्रेस की वह अत्यन्त विश्वासपात्र और स्कूल के अनेक तरह के कार्यकलाप की सूत्रधार थी। स्कूल की छात्राओं ने अपनी प्रिय अध्यापिका के प्रति अपना प्रेम और श्रद्धा प्रकट करने के लिए उनके नाम पर अखिल कोचीन अन्तर स्कूलीय बैडमिण्टन टूर्नामेण्ट के सम्बन्ध में एक 'ल्फोटिंग कप" भेंट किया जो हर साल टूर्नामेण्ट में विजयी स्कूल में जाया करेगा।

ऐरणाकुलम से विदा लेकर चन्द्रकान्त और रंजनी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मन्त्री के आग्रह पर एक दिन मद्रास सभा में ठहरे। सभा के कार्यकर्ताओं और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों ने एक सभा करके दोनों को विदाई दी।

× × ×

मद्रास से रवाना होकर दोनों पहले महात्मा गांधी के सेवाग्राम आश्रम (वर्धा) में गये। उनकी इच्छा सेवाग्राम में कुछ दिन ठहरकर बुनियादी तालीम और अन्य रचनात्मक कार्यों का प्रत्यक्ष अनुभव ले लेने तथा बापू का आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद बिहार जाने की थी। सेवाग्राम में दोनों तालीमी संघ के अतिथि के तौर पर ठहरे और तालीमी संघ के

सब कार्यक्रम में भाग लेने लगे थे। सबेरे-शाम बापू की प्रार्थना में जाते थे। सेवाग्राम पहुँचने के एक सप्ताह के बाद कस्तूरबा ट्रस्ट की संयोजक मन्त्री श्री मृदुला साराभाई वहाँ आईं। उन्होंने कस्तूरबा ट्रस्ट सम्बन्धी कुछ काग़ज़ देकर चन्द्रकान्त को पटना भेज दिया जहाँ ट्रस्ट की बिहार शाखा की एक मीटिंग होने वाली थी और रंजनी को अपने साथ बम्बई ले गईं। बम्बई में उन्होंने रंजनी को वहाँ के बालमन्दिर और समाज-सेवा के केन्द्र दिखलाये। उसके बाद उसे अहमदाबाद की संस्थाएँ देख आने के लिए भेजा। चन्द्रकान्त और रंजनी क़रीब-करीब एक ही समय सेवा-ग्राम लौटे। उसके दो-तीन दिन बाद ही कस्तूरबा ट्रस्ट का एक बड़ा सम्मेलन महात्माजी की अध्यक्षता में हुआ। देश के हर प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ता और नेता उसमें उपस्थित थे। महात्माजी ने ट्रस्ट की तरफ़ से भविष्य में जो कार्य करना था उसकी रूप-रेखा बतलाई। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव भी पास हुए। एक प्रस्ताव यह था कि बम्बई के पास एक अखिल भारतीय शिक्षण-शिविर चलाया जाय जिसमें हर प्रान्त ने चुनी हुई कार्यकर्त्रियों को एक महीने की ट्रेनिंग दी जाय।

उन्हीं दिनों बिहार के नेता बाबू अनुग्रहनारायणसिंह और डाक्टर सैयद महमूद सेवाग्राम में आये। चन्द्रकान्त ने उनके सान्निध्य में सेवाग्राम के सब बिहारी विद्यार्थियों और कार्यकर्त्ताओं को एकत्रित करके एक परिचय सम्मेलन किया और सबों का परिचय कराया। तालीमी संघ के विद्यार्थी अपने-अपने प्रान्त के जीवन और संस्कृति की एक झाँकी प्रस्तुत करने का बारी-बारी से कार्यक्रम रख रहे थे। तालीमी संघ में बिहार का एक भी विद्यार्थी नहीं था। यद्यपि दो शिक्षक संघ में काम करते थे। कुछ बिहारी युवक चरखा संघ के विद्यालय में शिक्षा पा रहे थे। कुछ लड़कियाँ महिला-विद्यालय में पढ़ रही थीं। चन्द्रकान्त नेसबों

को इकट्ठा करके बिहार की संस्कृति की भी एक झांकी प्रस्तुत करने का आयोजन किया। उस अवसर पर हिन्दी गीत गाये गये और लड़कियों द्वारा बिहार में प्रचलित नृत्य का प्रदर्शन किया गया। तथा बिहार के सामाजिक और ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखने वाले भिन्न-भिन्न तरह के लोक-गीत गाये जिन्हें लोगों ने बहुत पसन्द किया।

जब वर्धा से रवाना होने का दिन आगया तब उसने अन्त में बापू से खास तौर पर मिलने की अनुमति माँगी। आश्रम के भोजनालय में, बापू के साथ भोजन करने का निमन्त्रण पाकर चन्द्रकान्त और रंजनी ने भोजन किया। और शाम के समय जब बापू वायु-सेवन के लिए निकले तब उनके साथ जाने की सूचना मिली। बापू से इसके पहले भी चन्द्रकान्त कई बार मिल चुका था पर आश्रम के भोजनालय में उनके पास बैठकर भोजन करने का वह पहला अवसर था। चन्द्रकान्त और रंजनी ने उसे जीवन का एक दुर्लभ अवसर ही माना।

सायँकाल चन्द्रकान्त और रंजनो ठीक समय पर बापू को कुटी में पहुँचे और जब बापू निकले तब दोनों उनके साथ हो लिये। सुशीला नैयर भी आगई। कुछ दूर जाने पर सुशीला नैयर ने कहा कि आज बापू का मौन दिन है। इसलिए बापू बोलेंगे नहीं। लेकिन आप लोग जो कुछ कहना चाहते हैं कह सकते हैं। चन्द्रकान्त को इसका ध्यान नहीं था कि वह दिन बापू के मौन का दिन था। खैर, कुछ विशेष बातें तो करनी थीं नहीं। उसने बापू को अपने और रंजनी के कस्तूरबा ट्रस्ट के काम में लगने की बात बतलाई और बापू का आशीर्वाद माँगा। उसने रंजनी की भोजन सम्बन्धी कठिनाइयों का भी जिक्र किया। बापू मुस्कराये और इशारे से बतलाया कि आस्वाद व्रत का पालन करना होगा। बापू के संकेतों का तात्पर्य सुशीला नैयर बतलाती जाती थीं। चलते-

चलते रास्ते में एक जगह पानी और कीचड़ मिला। चन्द्रकान्त ने सहारे के लिए हाथ बढ़ाया पर बापू उसके पहले ही छलाँग लगा कर उसे पार कर चुके थे। थोड़ी दूर और आगे जाने पर जब सब पक्की सड़क पर पहुँचे तब एकाएक बापू का हाथ रंजनी के कन्धे पर पड़ा। बापू गिर तो नहीं रहे हैं, ऐसा सोचकर रंजनी घबड़ाई। इतने में सुशीला नैयर ने जो बापू की दूसरी बगल में थीं, बताया कि, बापू यहाँ से आँखें मूँदे आश्रम तक जायँगे। इसलिए थोड़ा सहारा देना होगा। बापू दोनों का सहारा लिये ध्यानावस्थित भाव से आश्रम लौटे और चन्द्रकान्त और रंजनी बापू के चरण छूकर उनसे विदा हुए।

अगले दिन दोनों बिहार के लिए रवाना हो गये। रास्ते में वे इलाहाबाद उतरे और त्रिवेणी गये जहाँ रंजनी की स्वर्गीय माँ का भस्म प्रभावित करना था। नाव पर मध्यधार में पहुँचने पर पण्डा अधिक दक्षिणा लिये बिना आगे का कृत्य सम्पादित करने से इनकार करने लगा। वह एक नवयुवक पण्डा था। चन्द्रकान्त ने उसे हिन्दू धर्म का रक्षक आदि कहकर उसे अच्छा व्यवहार करने को समझाया। परिणामस्वरूप उसने यह कहकर कि 'आपकी जो इच्छा हो दे दीजियेगा' प्रसन्न-भाव से सब कृत्य कराया। उसके बाद पीछा करनेवाले भिखारियों से छुटकारा पाते हुए दोनों एक इक्का लेकर प्रयाग स्टेशन पहुँचे और प्रयाग फास्ट पैसेंजर से बिहार के लिए रवाना होगये। बनारस के बाद रास्ते में बलिया स्टेशन आया। चन्द्रकान्त ने रंजनी को बचपन में उस स्टेशन पर अपने बक्स के चोरी हो जाने की कहानी सुनाई।

चन्द्रकान्त और रंजनी तीसरी बार एक साथ बिहार जा रहे थे। इसके पहले दो बार वे मोतीहारी जा चुके थे। पर दोनों बार वे मेहमानों की तरह चन्द रोज़ के लिए गये थे। इसबार बिहार में स्थायी रूप से रहकर काम करने के लिए जा रहे थे।

गाड़ी अपनी मंद रफ्तार से चली जा रही थी। चन्द्रकान्त के मन में बहुत पुरानी बातें उठ रही थीं। कैसे वह २६ साल पहले अपनी माँ से एक सप्ताह में लौट आने की बात कहकर घर से निकला था। उसके बाद उसकी जीवन-नौका कहाँ-कहाँ गई। आज फिर वह अपनी जगह पर पहुँच रही है। उस दिन वह अपने घर से अकेला निकला था, विद्या की खोज में निकला था। आज वह अपनी जीवन-संगिनी को लेकर लौट रहा है। कर्म की खोज में लौट रहा है। उधर रंजनी भी अपने विचारों में तल्लीन थी। कभी पीछे छूटने वालों के विषय में तो कभी आगे के अज्ञात जीवन-क्रम के विषय में सोचती हुई सफर पूरा कर रही थी।

मातीहारी स्टेशन आगया। सूर्यकान्त चन्द्रकान्त के बाल-मित्र महेश के साथ स्वागत के लिए पहले ही से स्टेशन पर हाज़िर था। गाड़ी के प्लेटफॉर्म पर पहुँचते ही चन्द्रकान्त ने डिब्बे के दरवाज़े पर खड़े-खड़े रुमाल हिलाया! सूर्यकान्त दौड़कर डिब्बे के पास पहुँच गया और भैया और भाभी के चरण छुए। महेश से चन्द्रकान्त गले मिला। रंजनी और महेश में प्रणाम का आदान-प्रदान हुआ। उसके बाद सब घर पहुँचे। घर के द्वार पर आम के पल्लव सहित जल से भरे कलश रखे थे। ऐसा लगा मानो चन्द्रकान्त और रंजनी का गृह-प्रवेश हो रहा हो।......काश, माँ जिन्दा होतीं!